* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

(संक्षेप)

श्रीहरिनामामृतव्याकरणम्

श्रील श्रीजीवगोस्वामि प्रभुपादेन प्रणीतम्

श्रीहरिदासशास्त्री

प्रकाशक :—

श्रीचैतन्य संस्कृति संस्था

अध्यक्ष—

श्रीहरिदास शास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह
वृन्दावन, मथुरा (उ० प्र०) पिन—२८११२१

प्रकाशन तिथि—

श्रीराधाष्टमी— ८-९-८९

प्रथम संस्करण— १०००

प्रकाशन सहायता— २५.००

मुद्रक—

श्रीहरिदास शास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
वृन्दावन, मथुरा (उ० प्र०) २८११२१

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

(संक्षेप)

श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्

श्रील श्रीजीवगोस्वामि प्रभुपादेन प्रणीतम्

श्रीधाम-वृन्दावन-वास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्र-नव्यन्यायाचार्य काव्य व्याकरण सांख्य मीमांसा वेदान्त तर्क तर्क तर्क वैष्णवदर्शन तीर्थाद्युपाधिसमलङ्कृतेन **श्रीहरिदासशास्त्रिणा** सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :

श्रीहरिदास शास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास ▪ कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) २८११२१

विज्ञप्तिः

संक्षेप (लघु) श्रीहरिनामामृत-व्याकरण प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ अतीव उपादेय है। मानव को मानवोचित गुण-मण्डित करने के लिए संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थावली ही अवलम्बनीय है। संस्कृत भाषा में प्रवेश लाभ करना भी इस लिए विशेष आवश्यक है। संस्कृत भाषा-बोध हेतु अनेक व्याकरण विद्यमान होने पर भी श्रीहरिनामामृत व्याकरण से ही स्वल्प समयमें परिपूर्ण निर्दुष्ट पद-पदार्थ का ज्ञान लाभ होता है। विशेषतः अवरोह भूमिका क्रम से यह व्याकरण प्रणीत होने से इसके अध्ययन से श्रीहरिनाम के साथ परिचय प्राप्त कर मानव-मन आस्तिक होता है। जगत् में शान्ति स्थापन के लिए इसकी विशेष आवश्यकता है।

उच्छृङ्खल मानव जीवन को सुश्रृङ्खलित करने के लिए भगवन्नाम ग्रहण की विशेष आवश्यकता है। श्रीहरिनामामृत व्याकरण अध्ययन से भगवन्नाम ग्रहण प्रतिपदमें तो होता ही है, अपरन्तु पद-पदार्थ का अनवद्य ज्ञान से भी मानव मण्डित होता है। कारण यह व्याकरण श्रीभगवन्नाम महिम वर्णनमय श्रीमद्भागवत के तुल्य है। श्रीहरिनामामृत ग्रन्थ के उपसंहार में कहा गया है—

कृष्णत्राकृतमेतत्, तस्माद्विफला न चात्र मात्रापि।
अपि तु महाफलयुक्ता, तल्लीला-काव्यवज्जयति ॥

श्रीहरिनाम-मण्डित होने के कारण इसके अध्ययन में मानव मात्र अधिकारी हैं। इसकी प्रक्रिया अति सरल है। सूत्र एवं सूत्रमें प्रयुक्त शब्दावलि भी अति सरल एवं निर्दुष्ट अर्थ सम्बलित हैं। सूत्र का अध्ययन से अर्थबोध आशु होता है। व्याख्या

ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं है। सूत्र प्रणयन कौशल ही इस प्रकार है।

'नारायणादुद्‌भूतोऽयं वर्णक्रमः'। श्रीनारायण से ही मातृका वर्ण क्रम से क्रमयुक्त वर्णों का आविर्भाव हुआ। इससे वर्णमाला को जानने के लिए अधिक समय एवं कठोर परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं होती है। अतः संस्कृत भाषा प्रचार एवं प्रसार के लिए श्रीहरिनामामृत व्याकरण एक अनुपम ग्रन्थ है। देवनागरी अक्षरों में प्रथम प्रकाशित यह ग्रन्थ संस्कृत अध्ययन अध्यापन के अतीव उपयोगी होगा। वङ्गाक्षर में प्रकाशित (लघु) श्रीहरिनामामृत व्याकरण विरचयिता का विवरण इस प्रकार है—

"श्रीश्रीलघु-हरिनामामृत-व्याकरणमित्यपरनाम्ना ख्यातं श्रीश्रीसंक्षेपहरिनामामृत-व्याकरणमादावप्राकृत-कविकुल-तिलकैः श्री श्रील-रूपगोस्वामि-प्रभुपादैरथवा तदग्रजैरशेषशास्त्रसिन्धुपारीणैः श्रील-सनातनगोस्वामिप्रभुचरणैरपि रचितमिति कैश्चित् पण्डित-जनैरभिमन्यते। तद्धि प्रथमं महामहोपाध्यायनिकरैः परमभागवत-कुलैश्च निषेवितपादपङ्कजैः श्रीश्रील-श्रीजीवगोस्वामिपादैः संक्षेपतया रचयित्वा पश्चाद् विशदीकृत्याधुना-बहुलप्रचारित-श्रीश्रीहरिनामामृतं नाम वैष्णव-व्याकरणं विरचितमित्यपरैरपि कैश्चनानुसन्धानपरै-र्गीयते। एतद्ग्रन्थप्रणेतृ-निर्णयविषये पूज्यपाद-श्रीश्रीहरेकृष्णाचार्य्य-विरचितायाः श्रीबालतोषण्याख्यटीकायाः प्रारम्भे यदुक्तम्—

'श्रीमच्छ्रील-सनातनगोस्वामिनां सूत्रानुसारेण श्रीश्रीजीव-गोस्वामि नामा ....श्रीहरिनामामृताख्य-वैष्णवव्याकरण-मारभमाणः' इति तदपि विवेचनीयम्॥"

यह व्याकरण सात प्रकरणों में पूर्ण है। संज्ञा-सन्धि-प्रकरणम्, विष्णुपद-प्रकरणम्, आख्यात-प्रकरणम्, कारक-प्रकरणम्,

कृदन्त-प्रकरणम्, समास-प्रकरणम्, तद्धित-प्रकरणम् । (प्रथम) संज्ञा प्रकरण में ३९ सूत्र, सन्धि प्रकरण में—सर्व्वेश्वर सन्धि में २१, विष्णुजन सन्धिमें १८, विष्णुसर्ग सन्धिमें ८,--समष्टि में ८६ सूत्र हैं। (द्वितीय) विष्णुपदप्रकरण में १५४ सूत्र हैं। (तृतीय) आख्यात प्रकरण में ३०९ सूत्र हैं। (चतुर्थ) कारक प्रकरण में ४१ सूत्र हैं। (पञ्चम) कृदन्त प्रकरण में ९८ सूत्र हैं। (षष्ठ) समास प्रकरण में ४५ एवं सप्तम तद्धित प्रकरण में २४ सूत्र हैं। अतएव सम्पूर्ण व्याकरण में सूत्र–७५७ हैं।

हरिदास शास्त्री

❋ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ❋

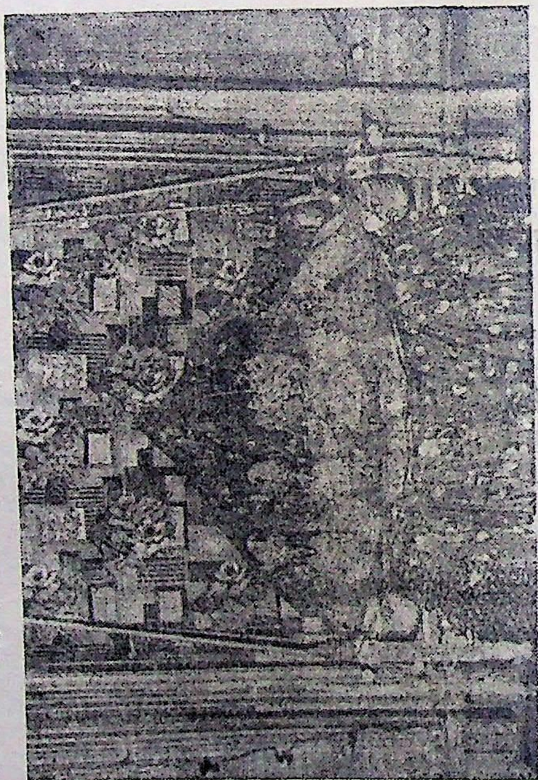
(संक्षेप) श्रीहरिनामामृत-व्याकरणे

श्लोकसूत्रसमष्टि-निर्णयः ।

		श्लोक संख्या	सूत्र संख्या
मङ्गलाचरणम्		५	
संज्ञा-सन्धिप्रकरणम्	(१)	२	८६
विष्णुपदप्रकरणम्	(२)	१	१५४
आख्यातप्रकरणम्	(३)	१	३०९
कारकप्रकरणम्	(४)	१	४१
कृदन्तप्रकरणम्	(५)	१	९८
समासप्रकरणम्	(६)	१	४५
तद्धितप्रकरणम्	(७)	१	२४
		श्लोकसमष्टिः—१३	सूत्रसमष्टिः—७५७

❊ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ❊

संक्षेप श्रीहरिनामामृत-व्याकरणस्य विषयसूची



※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

(संक्षेप)
श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्

※ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ※

कृष्णमुपासितुमस्य, स्रजमिव नामावलिं तनवै ।
त्वरितं वितरेदेषा, तत्साहित्यादिजामोदम् ॥१॥

श्रीकृष्ण की उपासना के निमित्त तदीय नामावलि का विस्तार माला के समान कर रहा हूँ । यह नामावलि आशु तदीय साहित्यादि के अनुशीलन से उत्पन्न आनन्द प्रदान करेगी ॥१॥

आहृत-जल्पित-जटितं, दृष्ट्वा शब्दानुशासनस्तोमम् ।
हरिनामावलि-वलितं, व्याकरणं वैष्णवार्थमाचिन्मः ॥२॥

व्याकरण समूह को असम्पूर्ण, निरर्थक कल्पनायुक्त, एवं क्लिष्ट देखकर वैष्णववृन्द के निमित्त श्रीहरिनामावलिसम्बलित व्याकरण का प्रणयन कर रहा हूँ ॥२॥

व्याकरणे मरुनीवृति, जीवनलुब्धाः सदाघ संविघ्नाः ।
हरिनामामृतमेतत्, पिबन्तु शतधावगाहन्ताम् ॥३॥

मरुभूमि तुल्य अन्यान्य व्याकरण समूह में जीवन लुब्ध-पानीयलुब्ध व्यक्तिवृन्द निरन्तर तापक्लिष्ट होते हैं, वे सब हरिनामामृत पान करें, एवं शत-शत प्रकार से इसमें अवगाहन करें ॥३॥

श्रीहरिं मधुरं नत्वा हरिनामामृतं रसम् ।

व्याकरञ्च तद् भक्त्या पिबन्तु व्रजवासिनः ॥४॥

व्रजवासिवृन्द, मधुर श्रीहरि को प्रणामकर श्रीहरिनामामृत रसपूर्ण व्याकरण भक्ति पूर्वक पान करें ॥४॥

"साङ्केत्यं पारिहास्य वा स्तोभं हेलनमेव वा ।

वैकुण्ठ-नाम-ग्रहणमशेषाघ हरं विदुः" ॥५॥

सङ्केत, परिहास, गीतालाप पूरणार्थ, अथवा अवहेलन से भी श्रीकृष्ण नाम उच्चारण करने से अशेष पाप विदूरित होते हैं, विज्ञ व्यक्तिवृन्द का यह अनुभव है ॥५॥

[प्रथमम्]

संज्ञा-सन्धि-प्रकरणम्

संज्ञा-प्रकरणम्

नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः ॥१॥

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व श ष स ह क्ष । एते 'वर्णाः', 'अक्षराणि' 'अलः' च । एषामुद्भव स्थानानि-अ आ क वर्ग-ह-विसर्गाणां कण्ठः, इ ई च वर्ग य शानां तालु, उ ऊ पवर्गाणामोष्ठः, ऋ ॠ ट वर्ग र-षाणांमूर्द्धा, लृ ॡ-त वर्ग-लसानां दन्ताः, एदैतोः कण्ठ तालू, ओदौतोः कण्ठोष्ठम्, व कारस्य दन्तोष्ठम्, अनुस्वारस्य शिरोनासिका वा इत्यादीनि ॥१॥

यह वर्णक्रम श्रीनारायण से उत्पन्न हुआ है। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व श ष स ह क्ष। ये सब वर्ण अक्षर एवं अल् नाम से अभिहित होते हैं।

इन सबके उच्चारण स्थान इस प्रकार हैं—

अ आ क ख ग घ ङ–ह विसर्ग का उद्‌भव स्थान कण्ठ है। इ ई च छ ज झ ञ य श, का उच्चारण स्थान तालु है। उ ऊ प फ ब भ म, का उद्‌भव स्थान ओष्ठ है। ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र ष, का उद्‌भव स्थान मूर्द्धा है, ऌ ॡ त थ द ध न ल स, का उद्‌भव स्थान दन्त है। ए ऐ कण्ठ तालु से उच्चारित होते हैं, ओ औ कण्ठ ओष्ठ से उच्चारित होते हैं। व कार दन्त एवं ओष्ठ से उत्पन्न होता है। अनुस्वार का उच्चारण स्थान मस्तक एवं नासिका है, किन्तु नासिका से उच्चारित होने से अनुनासिक कहते हैं ॥१॥

अथ संज्ञा

तत्रादौ चतुर्द्दश सर्वेश्वराः ॥२॥

'स्वराः' 'अचः' च।

उक्त वर्णक्रम के मध्य में प्रथम चतुर्द्दश वर्ण का नाम सर्वेश्वर है। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। प्राचीन व्याकरण के मत में इसकी संज्ञा स्वर एवं अच् है ॥२॥

दश-दशावताराः ॥३॥

'समानाः' 'अकः' च।

उक्त वर्णक्रम के प्रथम दशवर्ण का नाम दशावतार है। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ। प्राचीन के मत में दश वर्ण का नाम 'समान' एवं अक् है ॥३॥

तेषां द्वौ द्वावेकात्मकौ ॥४॥

'सवर्ण' संज्ञा च ।

उक्त दशावतार वर्ण के मध्य में क्रमशः दो-दो वर्ण को परस्पर एकात्मक जानना चाहिए। अ आ परस्पर एकात्मक है, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ परस्पर एकात्मक हैं। प्राचीन के मत में एकात्मक की संज्ञा **सवर्ण** है ॥४॥

पूर्वो वामनः ॥५॥

'ह्रस्वाः' 'निह्र्स्वाः' च ।

एकात्मक संज्ञक वर्ण समूह के पूर्व-पूर्व वर्ण की संज्ञा 'वामन' है। अ इ उ ऋ ऌ। प्राचीन के मत में पञ्च वर्ण का नाम 'ह्रस्व' एवं **निह्र्स्व** है ॥५॥

परस्त्रिविक्रमः ॥६॥

'दीर्घाः' च ।

एकात्मक संज्ञक वर्ण समूह के परस्पर वर्ण का नाम त्रिविक्रम है। प्राचीन के मत में **दीर्घ** संज्ञा है ॥६॥

त्रिमात्रो महापुरुषः ॥७॥

'प्लुत संज्ञश्च'।

उक्त वामन एवं त्रिविक्रम वर्ण तीन मात्रा से उच्चारित होने पर 'महापुरुष' संज्ञा होती है। प्राचीनगण इनको प्लुत कहते हैं ॥७॥

अ आ वर्जिताः सर्वेश्वरा ईश्वराः ।

'नामिनः' 'इचः' च ।

अ आ भिन्न सर्वेश्वर समूह का नाम ईश्वर है। इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। प्राचीन के मत में इनका नाम 'नामिन्' एवं **इच्** है ॥८॥

दशावताराः ईशाः ॥९॥

'अकः' च ।

अ आ भिन्न दशावतार वर्ण समूह का नाम ईश है । प्राचीनगण अक् कहते हैं ॥९॥

अ आ इ ई उ ऊ अनन्ताः ॥१०॥

'अण:' च ।

अ आ इ ई उ ऊ, का नाम 'अनन्त' है। प्राचीनगण अण् कहते हैं ॥१०॥

इ ई उ ऊ चतु:सनाः ॥११॥

'इण:' च ।

अ आ इ ई उ ऊ, का नाम 'चतु:सन' है । प्राचीनगण इसको इण् कहते हैं ॥११॥

उ ऊ ॠ ॠ चतुर्भुजाः ॥१२॥

'उक:' च ।

उ ऊ ॠ ऋ वर्णों का नाम 'चतुर्भुज' है। प्राचीन के मत में इसकी 'उक्' संज्ञा है ॥१२॥

ए ऐ ओ औ चतुर्व्यूहाः ॥१३॥

'सन्ध्यक्षराणि' 'एच:' च । एते सर्वे त्रिविक्रमाः ।

ए ऐ ओ औ; का नाम 'चतुर्व्यूह' है। प्राचीन के मत में 'सन्ध्यक्षर' एवं एच् संज्ञा है। ये सब त्रिविक्रम हैं ॥१३॥

अं इति विष्णु चक्रम् ॥१४॥

'अनुस्वार:' 'बिन्दु:' एवं 'लव:' च ।

बिन्दु स्वरूप वर्ण का नाम विष्णु चक्र है। प्राचीन के मत में इसकी संज्ञा 'अनुस्वार' 'बिन्दु' एवं 'लव' है ॥१४॥

अं इति विष्णुचापः ।।१५।।

'अनुनासिकः' च ।

अर्द्ध चन्द्राकृति वर्ण का नाम विष्णुचाप है। प्राचीन के मत में इसकी संज्ञा 'अनुनासिक' है ।।१५।।

अः इति विष्णुसर्गः ।।१६।।

'विसर्गः' 'विसर्जनीयः' 'विसृष्टः' 'अभिनिष्ठानः च ।

बिन्दु द्वयाकार वर्ण का नाम विष्णु सर्ग है। प्राचीन के मत में इसका नाम 'विसर्ग' 'विसर्जनीय' 'विसृष्ट' एवं 'अभिनिष्ठान' है।।१६।।

कादयो विष्णुजनाः ।।१७।।

'व्यञ्जनानि' 'हलः' च । क-ष संयोगे तु क्षः ।

उक्त वर्ण क्रम के मध्य में क से ह पर्य्यन्त वर्ण समूह का नाम विष्णुजन है। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह। क-ष के संयोग से क्ष होता है। प्राचीन के मत में इसका नाम 'व्यञ्जन' एवं 'हल्' है।।१७।।

य व वर्जितास्तु वलाः ।।१८।।

'रलः' च ।

य व भिन्न विष्णुजन का नाम वल है। प्राचीनगण इसको 'रल' कहते हैं ।।१८।।

ते मान्ताः पञ्च पञ्च विष्णुवर्गाः ।।१९।।

'वर्गाः' 'कु चु टु तु पु' नामानश्च ।

क से म पर्य्यन्त पञ्च पञ्च विष्णुजन वर्णों का नाम विष्णुवर्ग है। प्राचीन गण इसको वर्ग एवं 'कु चु टु तु पु' कहते हैं ।।१९।।

ञ-वर्जितास्तु विष्णुगणाः ।।२०।।

'मयः' च ।

ञ भिन्न विष्णुजन समूह का नाम विष्णुगण है। प्राचीन के मत में इसकी संज्ञा 'मय' है ।।२०।।

क च ट त पा हरिकमलानि ॥२१॥

'प्रथमा:' 'चय:' च ।

क च ट त प वर्णों का नाम हरिकमल है । प्राचीनगण इसको प्रथम वर्ग, एवं 'चय' कहते हैं ॥२१॥

ख छ ठ थ फा हरि खड़्गाः ॥२२॥

'द्वितीया:' 'खय:' च ।

ख छ ठ थ फ वर्णों का नाम हरिखड्ग है। प्राचीन गण इसको द्वितीय वर्ग एवं 'खय:' कहते हैं ॥२२॥

ग ज ड द बा हरिगदाः ॥२३॥

'तृतीया:' 'जश:' च ।

ग ज ड द ब वर्णों का नाम हरिगदा है। इसको तृतीय वर्ग एवं 'जश' कहते हैं ॥२३॥

घ झ ढ ध भा हरिघोषाः ॥२४॥

'चतुर्था:' 'झष:' च ।

घ झ ढ ध भ, का नाम हरिघोष है। इसको वर्ग चतुर्थ एवं 'झष्' कहते हैं ॥२४॥

ङ ञ ण न मा हरिवेणवः ॥२५॥

'पञ्चमा:' 'अनुनासिका:' 'ञम:' च ।

ङ ञ ण न म वर्णों का नाम हरिवेणु है। इसको वर्ग पञ्चम, अनुनासिक, एवं 'ञम्' कहते हैं ॥२५॥

त एतद् वर्जिता विष्णुदासाः ॥२६॥

'झय:' च ।

हरिवेणु व्यतीत विष्णु वर्ग का नाम विष्णुदास है। क ख ग घ। च छ ज झ। ट ठ ड ढ। त थ द ध। प फ ब भ । प्राचीन गण इसको 'झय्' कहते हैं ॥२६॥

य र ल वा हरिमित्राणि ॥२७॥

'अन्तःस्थाः' 'यणः' च । एते सविष्णुचापाः, निर्विष्णुचापाश्च ।

य र ल व के नाम हरिमित्र है । प्राचीन के मत में अन्तस्थ एवं 'यण्' कहते हैं । हरिवेणु से उत्पन्न होने से हरिमित्र विष्णुचाप के सहित वर्त्तमान होते हैं, अन्यथा विष्णुचाप विहीन होते हैं ॥२७॥

श ष स हा हरिगोत्राणि ॥२८॥

'उष्माणः' 'षिटः' 'शलः' च ।

श ष स ह के नाम हरिगोत्र है । प्राचीन के मत में उष्म, षिट् एवं शल् नाम से अभिहित होते हैं ॥२८॥

श ष साः शौरयः ॥२९॥

'शरः' च ।

श ष स, को शर कहते हैं । प्राचीन व्याकरण के मत में 'शर' नाम है ॥२९॥

विष्णुदास हरिगोत्राणि वैष्णवाः ॥३०॥

'धुटः' 'झलः' च ।

विष्णुदास एवं हरिगोत्र को वैष्णव कहते हैं । क ख ग घ । च छ ज झ । ट ठ ड ढ । त थ द ध । प फ ब भ । श ष स ह । प्राचीन के मत में 'धुट' एवं झल नाम है ॥३०॥

हरिगदा-हरिघोष-हरिवेणु-हरिमित्राणि-हश्चगोपालाः ॥३१॥

'घोषवन्तः' 'हशः' च ।

हरिगदा, हरिघोष, हरिवेणु, हरिमित्र, एवं ह का नाम गोपाल है । क ख ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व ह । प्राचीन के मत में घोषवान्, एवं हश है ॥३१॥

यादवा अन्ये ॥३२॥

'अघोषा:' 'खर:' च ।

गोपाल भिन्न अपर विष्णुजनों का नाम यादव है। क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, श ष स। प्राचीन के मत में अघोष एवं खर नाम है ॥३२॥

शौरि-र्व्जिजतास्तु सात्वता: ॥३३॥

'खय:' च ।

शौरि भिन्न यादवों का नाम सात्वत है। क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ। प्राचीन के मत में 'खय्' संज्ञा है ॥३३॥

वर्णस्वरूपे राम: ॥३४॥

'अत्' 'इत्' 'अ-कार:' इत्यादि च ।

वर्णस्वरूप बोधक शब्द राम है, यथा अराम, इराम पाणिनि के मत में अत् इत् एवं अकार है ॥३४॥

तदादिद्वये द्वयम् ॥३५॥

अस्य लक्ष्मी-नारायणवाचित्वाद् भगवन्नामता ।

वर्ण द्वय का साङ्केतिक शब्द द्वय है । यथा अद्वय अर्थात् अ एवं आ। द्वय शब्द भगवान् के नाम है। कारण, पद्म पुराण में लक्ष्मीनारायण के मन्त्र को द्वय शब्द से कथित हुआ है ।।३५॥

आदेशो विरिञ्चि: ॥३६॥

आदेश का नाम विरिञ्चि है ॥३६॥

आगमो विष्णु: ॥३७॥

आगम को विष्णु कहते हैं ॥३७॥

लोपो हर: ॥३८॥

'लुक्' इत्यन्ये ।

लोप का नाम 'हर' है। प्राचीन के मत में इसका नाम 'लुक्' है ॥३८॥

सूत्राणि षड़्विधानि ॥३८॥

संज्ञा च परिभाषा च विधि र्नियम एव च ।

अतिदेशोऽधिकारश्च षड़्विधं सूत्रलक्षणम् ॥इति ॥३९॥

सूत्र समूह छै प्रकार के होते हैं ।

(१) संज्ञा (२) परिभाषा (३) विधि (४) नियम (५) अतिदेश (६) अधिकार ॥३९॥

अत्र नामकरणं संज्ञादिसम्पूर्णम् ॥१॥

* * *

सन्धि-प्रकरणम्

सर्वेश्वर-सन्धि:

यदिदं सन्धिनिर्म्माणं वर्णानामारभे मुदा ।
तेन मे कृष्ण पादाब्जे मन: सन्धि र्विधीयताम् ॥
सन्धिरेकपदे नित्यं नित्यं धातूपसर्गयो: ।
अनित्यं सूत्र--निर्द्देशेऽन्यत्र चानित्यमिष्यते ॥१॥

हे कृष्ण ! मैं जिस प्रकार आनन्द से वर्ण समूह के सन्धि निर्म्माण प्रारम्भ कर रहा हूं । आप भी इस प्रकार निज पाद-पद्म में मेरी सन्धि का विधान करें ।

एक पद में सन्धि नित्य होती है, धातु एवं उपसर्ग के सहित सन्धि अनित्य है, सूत्र निर्द्देश स्थल में सन्धि अनित्य होती है, एवं अन्यत्र भी सन्धि अनित्य होती है ॥१॥

दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः ॥४०॥

कृष्णाग्रे, राधागता, हरि हरीति, हरीहा, विष्णूदयः, विष्णूढ़ा, नरभ्रातॄषिः, गम् लॄकारः ।

दशावतार अर्थात् 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ' दशवर्ण निज एकात्मक वर्ण पर पद के आदि में रहने से उसके सहित मिलित होकर त्रिविक्रम होते हैं ।

उदाहरण—(कृष्ण् अ–अग्रे) यहाँ अराम उत्तर पदस्थित स्वीय एकात्मक वर्ण अराम के सहित मिलित होकर त्रिविक्रम हुआ, अर्थात् 'आराम' हुआ, अनन्तर 'ष्ण्' विष्णुजन वर्ण में युक्त होकर 'कृष्णाग्रे' पद सिद्ध हुआ ।

राधा—आगता, राधा शब्द के अन्तस्थित 'आ' राम, उत्तर पद के आदि में स्थित एकात्मक वर्ण आराम के सहित मिलित होकर 'आराम' हुआ, एवं आराम पूर्व विष्णुजन 'ध्' में प्रविष्ट होकर 'राधागता' पद सिद्ध हुआ ।

'हरिहरीति' स्थल में हरि हरि पदान्त स्थित हरिहर्-इ इति पद के आदि में स्थित एकात्मक वर्ण 'इ' राम के सहित मिलित होकर 'ई' हुआ, एवं वह 'ई' हरिहर् पदान्त स्थित रराम में प्रविष्ट होकर हरिहरीति पद सिद्ध हुआ । 'हरीहा' स्थल में 'हरि-ईहा' पद से हरि पदस्थित हर्-इ-इराम विश्लिष्ट होकर एकात्मक वर्ण उत्तर पद के आदि में स्थित 'ईहा' पद के आदि स्थित ईराम के सहित मिलित होकर 'ई' त्रिविक्रम हुआ एवं पूर्व विष्णुजन वर्ण 'र्' में प्रविष्ट होकर 'हरीहा' पद सिद्ध हुआ ।

'विष्णूदयः' स्थल में 'विष्णु-उदयः' विष्णु पद स्थित 'उराम' विश्लिष्ट होकर 'उदयः' पदादि स्थित एकात्मक वर्ण उराम के सहित मिलित होकर ऊ राम हुआ एवं ष्ण् में प्रविष्ट होकर 'विष्णूदयः' पद

सिद्ध हुआ। 'विष्णूढ़ा' स्थल में विष्णु पद स्थित 'उ' राम विश्लिष्ट होकर उत्तर पद स्थित एकात्मक वर्ण दीर्घ 'ऊ' राम के सहित मिलित होकर त्रिविक्रम ऊ राम हुआ, एवं पूर्व पदान्त स्थित 'ष्ण' में प्रविष्ट होकर विष्णूढ़ा पद सिद्ध हुआ 'नरभ्रातॄषिः' स्थल में 'नरभ्रात् ऋषिः, विश्लिष्ट ऋ राम के एकात्मक ऋ वर्ण के सहित मिलित होकर त्रिविक्रम 'ॠ' राम हुआ, एवं रामभ्रात् पद स्थित 'त्' में प्रविष्ट होकर 'ॠ' त्रिविक्रम 'ॠ' राम हुआ, एवं पूर्वपदान्त स्थित त् में प्रविष्ट हुआ, 'गम्ॡकारः' स्थल में 'गम्ऌ' पदान्तस्थित ऌ के एकात्मक वर्ण उत्तर पदादि स्थित ऌ राम के सहित मिलित होकर त्रिविक्रम ॡ राम हुआ, एवं 'गम्ॡकारः' पद सिद्ध हुआ ॥४०॥

अद्वयमिद्वये ए ॥४१॥

यादवेन्द्रः, गोकुलेशः, मथुरेशः।

आराम एवं अराम के पश्चात् उत्तर पद के आदि में 'इ' राम- 'ई' होने पर उभय मिलित होकर एराम होता है, एराम पूर्व वर्ण में युक्त होता है।

उदाहरण—यादवेन्द्रः 'यादव-इन्द्रः' यादव शब्द के अन्त स्थित अराम के सहित उत्तर पदादि स्थित 'इ' राम मिलित होकर 'यादव्' शब्दान्त स्थित व् राम में मिलित होकर 'यादवेन्द्रः' पद सिद्ध हुआ।

'गोकुलेशः' गोकुल पदान्त स्थित अ राम के सहित उत्तर पदादि स्थित ईराम मिलित होकर 'गोकुलेशः' पद सिद्ध हुआ।

'मथुरेशः' पद में 'मथुरा-ईशः' मथुरा शब्दान्त स्थित आराम, उत्तर पदादि स्थित ईराम के सहित मिलित होकर एराम हुआ, एवं मथुर् शब्दान्त स्थित रराम में प्रविष्ट होकर 'मथुरेशः' पद सिद्ध हुआ ॥४१॥

उद्वये ओ ॥४२॥

पुरुषोत्तमः, सुपर्णोढ़ः, द्वारकोत्सवः।

अराम अथवा आराम के पश्चात् उ ऊ राम विद्यमान होने पर अराम-आराम, उ राम ऊ राम मिलित होकर ओराम होता है, एवं ओ राम पूर्व शब्द के अन्तिम वर्ण में प्रविष्ट होता है।

उदाहरण—पुरुषोत्तमः-पुरुष-उत्तमः-पुरुषोत्तमः, सुपर्णोढ़ः, सुपर्ण-उढ़ः-सुपर्णोढ़ः, द्वारकोत्सवः, द्वारका-उत्सवः द्वारकोत्सवः ॥४२॥

ऋद्वये अर् ॥४३॥

कृष्णर्द्धिः।

अराम एवं आराम के सहित ऋ राम एवं ॠ राम मिलित होकर 'अर्' होता है।

उदाहरण—कृष्णर्द्धिः, कृष्ण-ऋद्धिः, कृष्ण शब्दान्त स्थित अराम के सहित ऋद्धिः पदादि स्थित ऋराम मिलित होकर अर् हुआ, अराम कृष्ण् शब्दान्त स्थित ष्ण् में प्रविष्ट हुआ, 'र्' उत्तर शब्द स्थित 'द्धि' में प्रविष्ट होकर 'कृष्णर्द्धिः' पद निष्पन्न हुआ ॥४३॥

ऌ द्वये अल् ॥४४॥

यमुनल्कारायते।

अराम एवं आराम के पश्चात् ऌराम एवं ॡ राम होनें से उभय मिलित होकर 'अल्' होता हैं।

उदाहरण—यमुना-ऌकारायते। यमुना शब्द के अन्त स्थित आराम के सहित ऌ कारायते पदादि स्थित ऌ राम मिलित होकर अल् हुआ, अल् शब्द स्थित अराम 'यमुन्' शब्दान्त स्थित 'न्' राम में प्रविष्ट हुआ, एवं 'ल्' राम उत्तर पदादि स्थित 'का' में प्रविष्ट होकर 'यमुनल्कारायते' पद सिद्ध हुआ ॥४४॥

ए द्वये ऐ ॥४५॥

कृष्णैकनाथः, कृष्णैश्वर्य्यम्, स्वैरम्, स्वैरी, स्वैरिणी च ।

अराम एवं आराम के पश्चात् एराम अथवा ऐराम होने पर उभय मिलित होकर 'ऐ' राम होता है, एवं उक्त ऐराम पूर्व शब्दान्त स्थित विष्णुजन में प्रविष्ट होता है ।

उदाहरण—कृष्णैकनाथः कृष्ण-एकनाथः, कृष्ण शब्दान्त स्थित अराम के सहित एकनाथः, पदादि स्थित 'ए' राम मिलित होकर ऐ राम हुआ, एवं ऐराम 'कृष्ण्' शब्दान्त स्थित 'ण' में प्रविष्ट होकर 'कृष्णैकनाथः' पद सिद्ध हुआ । 'कृष्णैश्वर्य्यम्' कृष्ण-ऐश्वर्य्यम्, कृष्ण-शब्दान्त स्थित अराम के सहित परपद के आदि में स्थित एराम मिलित होकर ऐराम हुआ, ऐराम पूर्व शब्दान्त में प्रविष्ट होकर कृष्णैश्वर्य्यम् पद सिद्ध हुआ । स्वैरम्, स्व-ईरम्, स्वैरम्, स्वैरी स्व-ईरी-स्वैरी, स्वैरिणी, स्व-ईरिणी, स्वैरिणी ॥४५॥

ओद्वये औ ॥४६॥

कृष्णौदनम्, कृष्णौन्नत्यम्, प्रौढ़ः, प्रौढ़िश्च ।

पूर्व शब्दान्त स्थित अराम अथवा अराम के सहित उत्तर पद स्थित ओ राम वा औराम मिलित होकर औराम होता है, एवं औराम पूर्व शब्द के अन्तिम विष्णुजन में प्रविष्ट होता है ।

उदाहरण—कृष्णौदनम् कृष्ण-ओदनम्-कृष्णौदनम् ।

कृष्णौन्नत्यम्-कृष्ण-औन्नत्यम्-कृष्णौन्नत्यम् ।

प्रौढ़ः, प्र-ओढ़ः प्रौढ़ः, प्रौढ़िः प्र-ऊढ़िः-प्रौढ़िः ॥४६॥

इ द्वयमेव यः सर्वेश्वरे ॥४७॥

हर्य्यर्च्चनम्, हर्य्यासनम्, दध्युपेन्द्रस्य, रुक्मिण्येषा इत्यादि ।

उत्तर पद के आदि में एकात्मक भिन्न सर्वेश्वर विद्यमान होने पर इ ई-यराम होता है, यराम, पूर्व शब्द के अन्तिम विष्णुजन में प्रविष्ट होता है ।

उदाहरण—हर्य्यर्च्चनम-हरि-अर्च्चनम् हर्य्यर्च्चनम् ।

हर्य्यासनम्-हरि-आसनम्-हर्य्यासनम्, दध्युपेन्द्रस्य ।

दधि-उपेन्द्रस्य-दध्युपेन्द्रस्य, रुक्मिण्येषा, रुक्मिणी-एषा, रुक्मिण्येषा॥४७

उद्वयं वः ॥४८॥

मध्वरिः, विष्णवाश्रितः ।

परपद के आदि में सर्वेश्वर विद्यमान होने पर उराम एवं ऊराम 'व' राम होता है ।

उदाहरण—मध्वरिः, मधु-अरिः, यहाँ मधु शब्द स्थित उराम पर पद के आदि में अरि शब्द स्थित अराम को देखकर 'व' हुआ एवं 'ध्' राम में संलग्न हुआ । इससे मध्वरिः पद सिद्ध हुआ, विष्णवाश्रितः, विष्णु-आश्रितः, विष्णु शब्द के अन्तः स्थित 'उ' राम, आश्रित पद स्थित 'आ' राम को देखकर 'व' राम हुआ, एवं पूर्व वर्ण में युक्त हुआ, इससे 'विष्णवाश्रितः' पद हुआ ॥४८॥

ऋ द्वयं रः ॥४९॥

रामभ्रात्रुदयः, रामभ्रात्रैश्वर्य्यम् ।

'ऋ' राम एवं 'ॠ राम' सर्वेश्वर परे रहने में 'र' राम होता है, रराम पूर्व वर्ण में युक्त होता है ।

उदाहरण—रामभ्रात्रुदयः, रामभ्रातृ-उदयः, यहाँ राम भ्रातृ शब्द के 'ऋ' परवर्त्ती शब्द के आदि में सर्वेश्वर को देखकर 'र' राम हुआ, एवं 'र' राम पूर्व वर्ण में युक्त हुआ, इससे 'रामभ्रात्रुदयः' सिद्ध हुआ, इस प्रकार रामभ्रात्रैश्वर्य्यम्, राम भ्रातृ-ऐश्वर्य्यं, सन्धि होकर रामभ्रात्रैश्वर्य्यं पद सिद्ध हुआ ॥४९॥

लृ द्वयं लः ॥५०॥

शक्लर्थः ।

लृ राम एवं लॄ राम सर्वेश्वर परे रहने से लराम होता है ।
उदाहरण—शक्लर्थः, शक्लृ-अर्थः-शक्लृर्थः ॥५०॥

ए अय्, ऐ आय् ॥५१॥

कृष्णयृत्कर्षः, गोप्यायासनम् ।

सर्वेश्वर परे रहने से एराम अय् होता है, एवं ऐ राम आय् होता है । कृष्णे-उत्कर्षः, यहाँ कृष्ण शब्द स्थित ए राम उत्कर्ष स्थित उ राम को देखकर अय् हुआ, अराम 'ष्ण्' में प्रविष्ट हुआ, एवं उ राम 'य' में प्रविष्ट होने से 'कृष्णयुत्कर्षः सिद्ध हुआ । इस प्रकार ऐ आय स्थल में यमुनायै-अर्घः 'यमुनायार्घः हुआ ।

गोप्यै-आसनम्—'गोप्यायासनम्' हुआ ॥५१॥

ओ अव्, औ आव् ॥५२॥

विष्णविह, कृष्णावत्र ।

सर्वेश्वर पर पद के आदि में होने पर ओराम अव् होता है, एवं औराम आव् होता है । विष्णो-इह, यहाँ विष्णो शब्द स्थित ओ राम अव् हुआ, पर पद स्थित 'इ' राम को देखकर, अनन्तर अराम एवं 'इ' राम पूर्वस्थ स्व-स्व विष्णुजन में प्रविष्ट होकर 'विष्णुविह' रूप सिद्ध हुआ । कृष्णो–अत्र स्थल में औराम आव् हुआ पश्चात् आराम एवं पर पद स्थित अराम स्व-स्व पूर्व विष्णुजन में प्रविष्ट होने से 'कृष्णावत्र' पद सिद्ध हुआ ॥५२॥

ए-ओभ्यामस्य हरो विष्णुपदान्ते ॥५३॥

हरेऽत्र, विष्णोऽत्र ।

विष्णु पद के अन्त में एराम एवं ओराम विद्यमान होने पर उत्तर पदादि में स्थित अराम का हर होता है, अर्थात् लोप होता है ।
हरे-अत्र–हरेऽत्र, विष्णो-अत्र— विष्णोऽत्र ॥५३॥

अयादीनां यवयोर्व्वा ॥५४॥

कृष्णउत्कर्षः, यमुनायाअर्घः, गोप्याआसनम्, विष्णइह,
कृष्णा अत्र।

अय्, आय्, अव्, आव्, विरिञ्चि समूह के यराम एवं वराम का हर विकल्प में होता है, विष्णुपदान्त विषय में, कृष्णयुत्कर्ष के मध्य स्थित 'य' राम का हर होकर 'कृष्ण उत्कर्षः' हुआ।

यमुनायार्घः—यमुनायाअर्घः, गोप्यायासनं—गोप्याआसनं, विष्णविह—विष्णइह, कृष्णावत्र—'कृष्णाअत्र' सिद्ध रूप हुआ ॥५४॥

ओ रामान्तानामनन्तानां चाव्ययानां सर्वेश्वरे न सन्धिः ॥५५

नो उपेन्द्रः।

ओरामान्त अव्यय, एवं केवल सर्वेश्वर स्वरूप अव्यय के सहित सर्वेश्वर परे रहने से पूर्व सन्धि एवं पर सन्धि नहीं होती है। नो उपेन्द्रः, यहाँ नो शब्द ओ रामान्त अव्यय के पश्चात् 'उपेन्द्रः' स्थित उराम के सहित सन्धि नहीं हुई। सन्धि होने से ओ अव् होता ॥५५॥

अदसोऽमीत्यस्य ॥५६॥

अमी अच्युतप्रियाः।

अदस् शब्द सम्बन्धी 'अमी' पद के सहित परपद स्थित सर्वेश्वर की सन्धि नहीं होती है। 'अमी-अच्युत प्रियाः' सन्धि होने पर 'इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे' सूत्र के द्वारा सन्धि कार्य्य होता ॥५६॥

महापुरुषस्य च ॥५७॥

दूराह्वानादौ यत्न बिशेषे वाक्यस्यान्ते सम्बोधन-पदस्य संसारो
महापुरुषः। प्लुतसंज्ञश्च।

'महापुरुष' अर्थात् 'प्लुत' संज्ञक सर्वेश्वर के सहित सन्धि नहीं होती है। दूराह्वानादि विषय में अन्त्य सर्वेश्वर की महापुरुष संज्ञा होती है। इसको 'प्लुत' कहते हैं ॥५७॥

अन्त्य-सर्वेश्वरादि वर्णाः संसार-संज्ञाः ।।५८।।

आगच्छ हरे३, तिष्ठहरे३ ।

शब्द के अन्त्य सर्वेश्वर जिसके आदि में है, उन सब वर्णों की संसार संज्ञा होती है । आगच्छ हरे३, तिष्ठ हरे३ ।।५८।।

विचारे पूर्व्ववाक्यस्य संसारः ।।५९।।

तमालो नु३, कृष्णो नु ।

विचार विषय में पूर्व वाक्य का संसार 'महापुरुष' होता है । उदाहरण—तमालो नु ३, कृष्णो नु ।।५९।।

पूर्व्वार्द्धस्य त्वरामः स्यादिदुतावुत्तरस्य हि ।
विभक्त्यावयवात्तस्माच्छरामो द्विर्भवत्युत ।।६०।।

हरा३ इच्छत्रमेतत्ते ? पटा३ उच्छत्रमित्यपि ।
अद्येव, हलीशा, प्रार्च्छति, ऋणार्णं, गोऽग्रम्, गवेन्द्रः,
इत्यादयस्त्वाख्यात-समासयोर्वक्ष्यन्ते, दुर्गमत्वात् ।।६०।।

विचार अथवा प्रश्न, किंवा पूजा अर्थ में चतुर्व्यूह अर्थात् ए ऐ ओ औ वर्ण चतुष्टय के पूर्वार्द्ध के स्थान में जो अराम उत्पन्न होगा, वह महापुरुष होगा, अर्थात् वह तीन मात्रा से उच्चारित होगा, एवं उत्तरार्द्ध के स्थान में इराम एवं उराम होता है । अर्थात् ए ऐ के उत्तरार्द्ध स्थान में इराम एवं ओ औ उत्तरार्द्ध के स्थान में उ राम होता है, एवं उस विभक्त्यवयव इ राम एवं उ राम के अनन्तर स्थित छ राम का भी द्वित्व होता है ।

उदाहरण—हरे-छत्रमेतत्ते । यहाँ प्रश्नार्थ में 'हरे' शब्द स्थित ए राम के पूर्वार्द्ध के स्थान में अराम होकर महापुरुष हुआ, एवं एवं उत्तरार्द्ध के स्थान में इ राम हुआ, एवं छ राम का द्वित्व हुआ, इस प्रकार 'हरा इच्छत्रमेतत्ते' पद सिद्ध हुआ ।

पटो–उच्छत्रमित्यपि। यहाँ जिज्ञासार्थक पटो शब्द स्थित ओ राम के पूर्वार्द्ध के स्थान में अराम होकर महापुरुष हुआ, एवं उत्तरार्द्ध के स्थान में 'उ राम' हुआ, छ राम भी द्वित्व हुआ। इससे पटा ३ उच्छत्रमित्यपि पद सिद्ध हुआ।

अद्येव, हलीशा, प्राच्र्छति, ऋणार्ण, गोऽग्रम्, गवेन्द्रः प्रभृति के सन्धि विषयक उदाहरण आख्यात एवं समास प्रकरण में कहेंगे, कारण, प्रथम प्रकरण में समझना कठिन होगा।

अद्येव, अद्वयस्य हर एवेऽनवधारणे, हलीशा-शकन्ध्वादयोऽराम हरेण साधवः, प्राच्र्छति–उपेन्द्रारस्त्रिविक्रमः, नामधातौ तु वा तदलश्च नतु त्रिविक्रम भवस्य. ऋणार्ण ऋण, प्रवसन, वत्सर, दशकम्बलानां मिलित्वा कृष्णोन्द्र ऋणे, गो अग्रम्–गोरराम वा सन्धिः, गवेन्द्रः, गवेन्द्रो गवेशे अवेन साधुः, सूत्र से साधित होते हैं ॥६०॥

॥ इति सर्वेश्वर सन्धिः ॥

* * *

अथ विष्णुजन-सन्धिः

विष्णुदासो विष्णुपदान्ते हरिघोषे च हरिगदा ॥६१॥

वागच्युतस्य, वाग् गोविन्दस्य, षड् गोपिका, भगवदिच्छा, ककुब् विष्णोः।

विष्णुपदान्त में स्थित विष्णुदास नामक वर्ण हरिगदा नामक वर्ण होता है, अर्थात् सवर्ग तृतीय वर्ण होता है, एवं हरिघोष परे रहने से अविष्णुपदान्त में भी सवर्ग तृतीय वर्ण होता है।

उदाहरण—वाक्-अच्युतस्य, यहाँ विष्णुपदान्त स्थित कराम, विष्णुदास नामक वर्ण सवर्ग तृतीय 'ग्राम' हुआ। अराम प्रविष्ट होकर वागच्युतस्य पद सिद्ध हुआ। वाक्-गोविन्दस्य यहाँ विष्णुपदान्त स्थित कराम-विष्णुदास वर्ण सवर्ग तृतीय गराम हुआ। वाग्गोविन्दस्य।

षट्-गोपिका, विष्णुपदान्त में स्थित ट राम, विष्णुदास वर्ण सवर्ग तृतीय ड् राम होने से 'षड्गोपिका' पद सिद्ध हुआ। भगवत्-इच्छा, विष्णुपदान्त में स्थित त राम, विष्णुदासवर्ण सवर्ग तृतीय द राम होने से भगवदिच्छा पद सिद्ध हुआ। ककुभ्-विष्णोः, विष्णुपदान्त में स्थित भ राम विष्णुदास वर्ण सवर्ग तृतीय 'ब' राम होने से 'ककुब् विष्णोः' पद सिद्ध हुआ ॥६१॥

हरिवेणो हरिवेणुर्व्वा ॥६२॥

जगन्नाथः, जगद् नाथः, इत्यादि।

विष्णुपद के अन्त में स्थित विष्णुदास नामक वर्ण हरिवेणु उत्तर पदादि में होने पर विकल्प में हरिवेणु होता है। जगत्-नाथः, विष्णुपदान्त में स्थित 'त राम' 'न' राम हुआ, 'नाथः' के 'न' राम को देखकर, अतः 'जगन्नाथः' पद सिद्ध हुआ। एकवार सवर्ग तृतीय वर्ण द् राम होकर 'जगद्नाथः' होगा ॥६२॥

यादवमात्रे हरिकमलम् ॥६३॥

सुवाक् कृष्णस्य ।

यादवमात्र वर्ण परे होने से विष्णुदास नामक वर्ण तद्वर्ग प्रथम होता है, सुवाक्-कृष्णस्य, यहाँ यादव परे होने से कराम, तद्वर्ग प्रथम कराम ही हुआ ॥६३॥

ततः शश्छो वा ॥६४॥

सुवाक् छौरिर्वा ।

विष्णुदास के पश्चात् तालव्य 'श' विकल्प में छ राम होता है, सुवाक्-शौरिः–सुवाक् छौरिः ॥६४॥

हो हरिघोषः ॥६५॥

वाग्घरेः, वाग् हरेः, इत्यादि ।

विष्णुदास के पश्चात् ह राम तद्वर्ग चतुर्थ वर्ण, विकल्प में होता है। वाक्-हरेः, यहाँ ह राम-कराम विष्णुजन के पश्चात् अवस्थित हाने से एकबार तद्वर्ग चतुर्थ वर्ण घ राम हुआ। अनन्तर विष्णुदास (६१) सूत्र के द्वारा कराम गराम होने से 'वाग्घरेः' पद सिद्ध हुआ ॥६५॥

दतौ पर वर्णौ ल-च-ट-वर्गेषु नित्यम् ॥६६॥

'तल्लक्ष्मीपतेः' इत्यादि ।

द राम एवं त राम, ल राम, च वर्ग, ट वर्ग परे रहने से जो वर्ण परे में रहेगा, वही वर्ण होगा।

तद् लक्ष्मीपतेः, यहाँ द राम, लराम परपद के आदि में हाने के कारण 'ल' राम हुआ, इससे 'तल्लक्ष्मीपतेः' पद सिद्ध हुआ ॥६६॥

तश्च शे ॥६७॥

तच् शौरेः ।

त राम तालव्य शराम परे होने पर च राम होकर 'तच् शौरेः' पद हुआ, एकवार 'ततः शश्छो वा' सूत्र के द्वारा श राम छ राम होने पर 'तच्छौरेः' पद हुआ ॥६७॥

नोऽन्तश्चछयोः शरामः, टठयोः षरामः, तथयोः सरामः, विष्णुचक्रपूर्व्वो विष्णुचापपूर्व्वो वा ॥६८॥

भगवांश्चलति, भगवांश्छादयति, भगवांष्टीकते, भगवांष्ठक्कुरः,
भगवांस्तरति, भगवांस्थूत्करोति ।

भगवान्-चलति, विष्णुपदान्तस्थित 'न राम' इसके बाद अपर पद के आदि में स्थित, चलति पद को देखकर विष्णुचक्र युक्त श राम होकर भगवांश्चलति पद हुआ । इस प्रकार भगवांश्छादयति भगवांष्टीकते, भगवांष्ठक्कुरः, भगवांस्तरति भगवांस्थूत्करोति पद सिद्ध हुआ ॥६८॥

शे चान्तो वा ॥६९॥

भगवाञ्च् शूरः, भगवाञ्शूरः, भगवाञ्च्छुरः ।

विष्णुपदान्त स्थित न राम के पश्चात् तालव्य श राम विद्यमान होने पर न राम च रामान्त ञ राम अर्थात् 'ञ्च' वर्ण विकल्प में होता है ।

उदाहरण—भगवान्-शूरः, यहाँ 'न्' राम विष्णुपदान्त में हुआ है, एवं पर पद के आदि में 'शूरः' तालव्य श राम भी है, अतः एकवार ञ्च राम होने से 'भगवाञ्च्शूरः' पद हुआ, एकवार 'भगवाञ्शूरः' हुआ, एवं भगवान्-शूरः-भगवाञ्च्छुरः पद सिद्ध हुआ ॥६९॥

मो विष्णुचक्रं विष्णुजने ।।७०।।

कृष्णम्-स्मरति—कृष्णं स्मरति ।

विष्णुपदान्त में स्थित मराम, उत्तर पद में विष्णुजन होने से विष्णुचक्र होता है ।

उदाहरण—कृष्णम्-स्मरति, यहाँ म् राम विष्णुपदान्त में है । अतः परपद के आदि में विष्णुजन को देखकर विष्णुचक्र हुआ । कृष्णं स्मरति ।।७०।।

विष्णुचक्रस्य हरिवेणुर्विष्णुवर्गे विष्णुपदान्तस्य तु वा ।।७१।।

कृष्णङ्कीर्त्तयति, कृष्णम्भजति वा । वर्गादन्यत्र न, संवत्सरः ।

विष्णुवर्ग वर्ण, परपद के आदि में होने पर विष्णुचक्र के स्थान में वर्गानुरूप हरिवेणु वर्ण होगा, किन्तु विष्णुपदान्त स्थित विष्णुचक्र के स्थान में हरिवेणु वर्ण विकल्प में होता है ।

विष्णुपदान्त का उदाहरण—कृष्णं-कीर्त्तयति, यहाँ विष्णु चक्र के स्थान में 'क' राम विष्णुवर्ग परपद के आदि में होने के कारण तदनुरूप वर्गीय हरिवेणु 'ङ' राम होने से 'कृष्णङ्कीर्त्तयति' पद सिद्ध हुआ ।

कृष्णं-भजति, यहाँ विष्णुचक्र के स्थान में परपद स्थित भ राम विष्णुवर्ग के अनुरूप हरिवेणु म राम होने के कारण 'कृष्णम्भजति' पद सिद्ध हुआ ।।७१।।

द्विसर्वेश्वरमात्राच्छः ।।७२।।

कृष्णच्छत्रम् ।

अ विष्णुपदान्त के उत्तर भी सर्वेश्वर के पश्चात् स्थित छराम द्वित्व होता है । कृष्णच्छत्रम्, यहाँ कृष्णशब्दान्त स्थित अराम, विष्णुपदान्त में स्थित है, अतः उसके पश्चात् स्थित 'छराम' द्वित्व हुआ, अनन्तर 'यादवमात्रे' हरिकमलम् । सूत्र के द्वारा द्विरुक्त स्थित छ राम च राम होने से 'कृष्णच्छत्रम्' पद सिद्ध हुआ ।।७२।।

आङ् माङ् भ्यां नित्यम् ।।७३।।

आच्छादयति माच्छिदत् ।

आङ् एवं माङ् शब्द के उत्तर 'छ' राम नित्य द्वित्व होता है।

उदाहरण—आङ् छादयति, यहाँ छादयति पद के आदि में आङ् का योग होने पर ङ् राम का अप्रयोग हेतु आ रहा, एवं आङ् के पश्चात् छ राम द्विरुक्त हुआ, अनन्तर 'यादवमात्रे हरिकमलम्' सूत्र के द्वारा द्विरुक्त छ राम चराम् होने के कारण आच्छादयति सिद्ध पद हुआ।

माङ्—छिदत् यहाँ छिदत् पद के आदि में माङ् का योग होने से 'ङ्' राम का प्रयोग नहीं हुआ। 'मा' अवशेष रहा, एवं उसके बाद 'छ' राम द्विरुक्त हुआ। अनन्तर 'यादवमात्रे हरिकमलम्' सूत्र से द्विरुक्त छ राम च राम होने से 'माच्छिदत्' सिद्ध पद हुआ ।।७३।।

वामनात् ङ ण नाः द्विःसर्वेश्वरे ।

पर्य्यङ् ङनन्तः, सुगण्णनन्तः, कुर्व्वन्नस्ति।

वामन के पश्चात् ङ, ण, न, विष्णुपद के अन्त में स्थित होने पर सर्वेश्वर पर पद के आदि में होने से ङ, ण, न, द्वित्व होता है।

उदाहरण—पर्य्यङ्-अनन्तः, यहाँ ङ् वामन के पश्चात् एवं विष्णु पदान्त में है, अतएव परपद के आदि में सर्वेश्वर होने के कारण द्वित्व होकर 'पर्य्यङ् ङनन्तः' पद सिद्ध हुआ।

सुगण्-अनन्तः, यहाँ मूर्द्धण्य ण वामन के पश्चात् एवं विष्णु पदान्त में होने के कारण परपद के आदि में स्थित सर्वेश्वर को देखकर द्वित्व हुआ, इससे 'सुगण्णनन्तः' पद सिद्ध हुआ।

कुर्व्वन्-अस्ति, यहाँ दन्त्य 'न' वामन के पश्चात् एवं विष्णु पदान्त में स्थित होने से परपद के आदि में स्थित सर्वेश्वर को देखकर द्वित्व हुआ, एवं 'कुर्व्वन्नस्ति' पद सिद्ध हुआ ।।७४।।

विष्णुजने विष्णुजनो वा, ह-रौ विना ।।७५।।

दध्युपेन्द्रस्य, दद्ध्य्‌ुपेन्द्रस्य वा ।

वामन के पश्चात् विष्णुजन—विष्णुजन पश्चात् होने पर, विकल्प में द्वित्व होता है, किन्तु ह राम, एवं र राम द्वित्व नहीं होता है।

उदाहरण—दध्युपेन्द्रस्य, यहाँ वामन के पश्चात् ध राम है, उसके पश्चात् 'य' राम विष्णुजन है, अतः 'ध राम' का द्वित्व हुआ, अनन्तर विष्णुदासो (६१) सूत्र से उक्त द्विरुक्त ध राम द राम होने से 'दद्ध्य्‌ुपेन्द्रस्य' एकवार दध्युपेन्द्रस्य हुआ, यही विकल्प है ।।७५।।

र रामात्, सर्वेश्वरे तु हरिगोत्रं विना ।।७६।।

हर्य्यासनं, हर्यासनं वा, कार्ष्ष्णं, कार्ष्णं वा ।

र राम के पश्चात् विष्णुजन विकल्प में द्वित्व होता है, विष्णुजन परे होने से, किन्तु सर्वेश्वर परे होने से र राम के पश्चात् विष्णुजन, हरिगोत्र को छोड़कर द्वित्व होता है। हर्यासनं, यहाँ र राम के पश्चात् 'य' राम द्वित्व होने से 'हर्य्यासनं' विकल्प में पद हुआ, यह उदाहरण-सर्वेश्वर परे होने का है ।

कार्ष्णं, यहाँ र राम के पश्चात् ष राम द्वित्व होने पर (कार्ष्ष्णं) पद विकल्प में हुआ, यह उदाहरण-सर्वेश्वर परे न होने से हरिगोत्र द्वित्व का है ।।७६।।

विष्णुजनाद्विष्णुदासस्यादर्शनं सवर्गे विष्णुदासे ॥७७॥

भगवाञ्च्छ्छूरः, भगवाञ्छ्छूरो वा।

स वर्ग विष्णुदास परे रहने से विष्णुजन के उत्तर स्थित विष्णुदास का अदर्शन विकल्प में होता है।

उदाहरण—भगवाञ्च्छ्छूरः। यहाँ विष्णुजन ञ राम के पश्चात् जो च राम है, सवर्ग विष्णुदास उसके बाद होने के कारण उसका अदर्शन हुआ (भगवाञ्छ्छूरः) यह पद विकल्प में हुआ ॥७७॥

सरामे टनाभ्यां तुग् वेति वक्तव्यम् ॥७८॥

षट्+साधवः=षटत् साधवः, भगवान्+साधुः=भगवान्त् साधुः।

दन्त्य स राम परे रहने से ट राम एवं दन्त्य न राम के पश्चात् विकल्प में 'तुक्' होता है। एवं 'तुक्' के त राम का अवशेष सर्वत्र ही रहता है।

उदाहरण—षट्-साधवः, यहाँ दन्त्य स राम परे में है, सुतरां ट राम के बाद में तुक् होने से 'ष ट त् साधवः' पद सिद्ध हुआ। भगवान्-साधुः, यहाँ दन्त्य स राम परपद के आदि में होने के कारण दन्त्य न राम के बाद में एकवार 'तुक्' होने से 'भगवान्त्साधुः' पद सिद्ध हुआ ॥७८॥

॥ इति विष्णुजन-सन्धिः ॥

* * *

अथ विष्णुसर्ग-सन्धिः

विष्णुसर्गः पफयोरुपध्मानीयः, कखयो र्जिह्वामूलीयो वा ॥७९

कृष्णः फलम्, कृष्ण ⌣⌢ फलं वा । कृष्णः परमः,
कृष्ण ⌣⌢ परमो वा । कः कृष्णः, क × कृष्णः, कृष्णः खेलति,
कृष्ण + खेलति वा इत्यादि ।

प फ परे रहने से विष्णुसर्ग, उपध्मानीय वर्ण होता है ।

उदाहरण—कृष्णः—फलम्, कृष्ण ⌣⌢ फलम्,
कृष्णः परमः, कृष्ण ⌣⌢ परमः ।

क राम वा ख राम परे में रहने से विष्णुसर्ग, विकल्प में जिह्वामूलीय होता है, एवं जिह्वामूलीय की वज्र के तुल्य आकृति होती है । इस वर्ण का उच्चारण जिह्वा के मूल देश से होता है ।

उदाहरण—कः कृष्णः, यहाँ क राम के उत्तर में स्थित विष्णु सर्ग 'कृष्णः' के क राम को देखकर जिह्वामूलीय + वर्ण विशेष हुआ । क + कृष्णः, कृष्णः = खेलति, यहाँ विष्णु सर्ग, खेलति के ख राम को देखकर जिह्वामूलीय वर्ण विशेष हुआ, 'कृष्ण + खेलति' ॥७९॥

च छयोः श राम ट ठयोः षराम स्तथयोः सरामः ॥८०॥

कृष्णश्चरति, कृष्णश्छादयति, कृष्णष्टीकते, कष्ठरामः,
कृष्णस्तरति, कृष्णस्थूत्करोति ।

च छ राम परे में होने से विष्णु सर्ग 'श' राम होगा ।

उदाहरण—कृष्णः चरति, 'कृष्णश्चरति' कृष्णः–छादयति, 'कृष्णश्छादयति । ट ठ राम परे में होने पर विष्णुसर्ग मूर्द्धन्य 'ष' राम होता है, कृष्णः-टीकते, 'कृष्णष्टीकते' कः-ठरामः 'कष्ठरामः,

त एवं थ राम परे में होने से विष्णुसर्ग 'स' राम होता है । कृष्णः-तरति, 'कृष्णस्तरति' कृष्णः थूत् करोति, 'कृष्णस्थूत् करोति॥८०॥

शौरिषु शौरिर्व्वा ॥८१

कृष्णश् शरणम्, हरेष् षण्डो, हरेस् सुरभि र्वा ।

शौरिवर्ण परपद के आदि में होने पर विष्णुसर्ग परपद के अनुरूप विकल्प में शौरि वर्ण होता है ।

कृष्ण:-शरणं यहाँ विष्णुसर्ग, शौरिवर्ण को देखकर पर वर्ण तालव्य 'श' के अनुरूप तालव्य शराम होने से 'कृष्णश् शरणम्' विकल्प में पद सिद्ध हुआ ।

हरे:-षण्ड:, यहाँ उत्तर पद के आदि 'षराम' होने से विकल्प में विष्णुसर्ग मूर्द्धन्य षराम होकर 'हरेष् षण्ड:' पद हुआ ।

हरे:-सुरभि:, यहाँ शौरि-'स' राम परे में होने से विकल्प में विष्णुसर्ग, दन्त्य सराम होकर 'हरेस् सुरभि:' पद हुआ ॥८१॥

आदराम-गोपालयोरुर्नित्यम् ॥८२॥

कृष्णोऽत्र, कृष्णो गच्छति ।

अराम के पश्चात् विष्णुसर्ग, अराम एवं गोपाल परे रहने से उराम होता है ।

कृष्ण:-अत्र, यहाँ अराम के पश्चात् स्थित विष्णुसर्ग, अराम उत्तरपद के आदि में होने के कारण, उराम हुआ, अनन्तर 'उद्वये ओ' सूत्र से उराम के सहित मिलित होकर अराम ओराम हुआ, अनन्तर 'ए ओभ्यामस्य हरो विष्णुपदान्ते' सूत्र से ओराम के पश्चात् अराम का हर होने से 'कृष्णोऽत्र' पद सिद्ध हुआ ।

कृष्ण:-गच्छति, यहाँ अराम के बाद विष्णुसर्ग, गोपाल परे रहने से 'उराम' हुआ, अनन्तर 'उद्वये ओ' सूत्र से अराम के सहित मिलित होकर 'ओराम' होने से 'कृष्णोगच्छति' पद सिद्ध हुआ ॥८२॥

अद्वय-भो-भगो-अघोभ्यो लोप्यः, सर्वेश्वरे तु यश्च, न च लोप्ये सन्धिः ॥८३॥

कृष्णइह, कृष्णयिह, वा, कृष्णाअत्र, कृष्णायत्र वा, भो अनन्त, भोयनन्त वा, गोपाले न यरामः कृष्णागच्छन्ति, भोगोविन्द इत्यादि ।

अ आ वर्ण द्वय के एवं भो भगो अघो शब्द के पर स्थित विष्णुसर्ग का लोप होता है, सर्वेश्वर अथवा गोपाल परे रहने से, एवं सर्वेश्वर परे रहने से एकबार विष्णुसर्ग, यराम भी होता है, किन्तु विष्णुसर्ग लोप होने के पश्चात् पुनर्बार सन्धि नहीं होती है ।

कृष्ण:-इह, यहाँ सर्वेश्वर परे होने से अराम के परस्थित विष्णुसर्ग लोप हुआ, किन्तु विष्णुसर्ग लोप होने के पश्चात् सन्धि न होने से 'कृष्णइह' पद हुआ, एकवार सर्वेश्वर परे में होने से विष्णु सर्ग 'यराम' होकर 'कृष्णयिह हुआ ।

कृष्णा:-अत्र, यहाँ अराम के पश्चात् जो विष्णुसर्ग है, वह 'अत्र' के 'अ' सर्वेश्वर को देखकर लोप हुआ है, लोप होने से पुनर्वार सन्धि नहीं होती है, एकवार विष्णुसर्ग 'य' राम होकर 'कृष्णायत्र' 'कृष्णाअत्र' पद होता है ।

इस प्रकार भो-अनन्त, भोयनन्त हुआ, गोपाल वर्ण परे रहने से विष्णुसर्ग लोप होगा, किन्तु सर्वेश्वर परे रहने से जिस प्रकार 'य' होता है, उस प्रकार 'य' नहीं होगा, 'कृष्णा गच्छन्ति, भोगोविन्द' होगा ॥८३॥

र ईश्वरात् सर्वेश्वर–गोपालयोः ॥८४॥

हरेरिदम्, हरिर्गच्छति ।

ईश्वर के पश्चात् अर्थात 'इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ' वर्णों के पश्चात् सर्वेश्वर गोपाल परे में रहने से विष्णुसर्ग-रराम होता है ।

हरेः–इदम्, यहाँ ईश्वर के परस्थित विष्णुसर्ग-परपद के आदि में स्थित सर्वेश्वर को देखकर 'रराम' होकर 'हरेरिदम्' पद सिद्ध हुआ, हरिः-गच्छति । यहाँ ईश्वर के परस्थित विष्णुसर्ग-गोपाल परे रहने से 'रराम होकर हरिर्गच्छति पद सिद्ध हुआ ॥८४॥

अह्नो विष्णुसर्गस्य रो रात्रि-रूप रथन्तरादन्येषु ॥८५॥

अहरहः, अहर्गणः, नेह-अहः पतिः ।

रात्रि, रूप, रथन्तर भिन्न शब्द परे रहने से 'अहः' शब्द स्थित विष्णुसर्ग के स्थान में रराम होता है ।

(रूप-रात्रि-रथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् वार्त्तिक सूत्रम्)

अहः-अहः, यहाँ 'अहः' शब्द के विष्णुसर्ग के स्थान में रात्रि प्रभृति से भिन्न शब्द परे रहने से रराम होकर 'अहरहः' पद सिद्ध हुआ इस प्रकार अहः-गणः, 'अहर्गणः' पद सिद्ध हुआ, सर्वेश्वर एवं गोपाल परे रहने से ही रराम होगा, तद् भिन्न स्थल में नहीं होगा, इसका उदाहरण—अहःपतिः ॥८५॥

रो रे लोप्यः पूर्वश्च त्रिविक्रमः ॥८६॥

भ्रातः रामानुजं पश्च=भ्रातारामानुजं पश्य, हरिः राधाप्रियः हरी राधाप्रियः ।

रराम परे रहने से ररामं लोप होता है, और उक्त ररामं के पूर्वस्थित वामन सर्वेश्वर भी त्रिविक्रम होता है। भ्रातःरामानुजं पश्य, यहाँ 'अनीश्वरादपि ररामजः' सूत्र से विष्णुसर्ग ररामं होने पर उसके पर स्थित ररामं को देखकर वह ररामं लोप हुआ, एवं लुप्त ररामं के पूर्व स्थित वामन-त्रिविक्रम होकर 'भ्रातारामानुजं पश्य' पद सिद्ध हुआ ।

हरिः राधाप्रियः, यहाँ 'र ईश्वरात् सर्वेश्वर गोपालयोः' सूत्र के द्वारा 'हरिः' शब्द स्थित विष्णुसर्ग ररामं होने पर उसके परस्थित ररामं को देखकर वह लोप हुआ, एवं ररामं के पूर्व वामन त्रिविक्रम होकर 'हरी राधाप्रियः' पद हुआ ॥८६॥

॥ इति विष्णुसर्ग–सन्धिः ॥

इति संक्षेप श्रीहरिनामामृताख्य-वैष्णवव्याकरणे
संज्ञा-सन्धि प्रकरणं समाप्तम् ॥१॥

* * *

[द्वितीयम्]

अथ विष्णुपद-प्रकरणम्

य एकः सर्वरूपाणां सर्वनाम्नां तथाश्रयः ।
तस्य विष्णोः पदं सर्वं विष्णुभक्त्या निरूप्यते ।।

अधातु-विष्णुभक्तिकमर्थवन्नाम ।
भू-सनन्ताद्या 'धातवः' स्वादि तिवाद्या 'विष्णुभक्तयः'।।१।।

जो एक विष्णु समस्त रूपों के एवं समस्त नामों के आश्रय हैं, उन विष्णु के पद समूह को विष्णु भक्ति के द्वारा निरूपण करते हैं ।

धातु भिन्न एवं विष्णु भक्ति भिन्न अर्थ युक्त शब्द को नाम कहते हैं । भू-सनन्त प्रभृति को धातु कहते हैं, 'सु' आदि एक विंशति, एवं 'तिप्' आदि एकशत अशीति को विष्णुभक्ति कहते हैं ।।१।।

प्रकृतिः पूर्व्वा ।।२।।

सा च नाम-धातु भेदाद् द्विविधा ।

नाम एवं विष्णुपद के पूर्व भाग का नाम प्रकृति है, उक्त प्रकृति भी नाम एवं धातु भेद से द्विविध हैं ।।२।।

प्रत्ययः परः ।।३।।

स च स्वाद्याख्यातकृत्तद्धित भेदाच्चतुर्व्विधः ।

परभाग का नाम प्रत्यय है, प्रत्यय भी स्वादि, आख्यात, कृत् एवं तद्धित भेद से चार प्रकार हैं ।।३।।

तत्र नाम्नः सुँ औ जस् प्रथमा, अम् औ शस् द्वितीया, टाभ्याम् भिस् तृतीया, ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी, ङसि भ्याम् भ्यस् पञ्चमी, ङस् ओस् आम् (षष्ठी) ङि ओस् सुप् सप्तमी ॥४॥

सुँ प्रभृति एक विंशति विष्णुभक्ति है, ये सब नाम के उत्तर में प्रयुक्त होते हैं।

सुँ औ जस् प्रथमा विभक्त है, अम् औ शस् द्वितीया है, टा भ्याम् भिस् तृतीया, ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी, ङसि भ्याम् भ्यस् पञ्चमी, ङस् ओस् आम् षष्ठी, ङि ओस् सुप् सप्तमी है ॥४॥

तत्र ज-ट-श-ङ-पा इतः, उँश्च सोः, ङसेरिश्च ।

एति-गच्छति-नतिष्ठतीति 'इत्' 'अनुबन्धः' च ॥५॥

उक्त विष्णु भक्ति के मध्य में ज, ट, श, ङ, प, एवं 'सुँ' के उँ, ङसि का 'इ' इत् होता है। जो नहीं रहता है, चला जाता है, उसको 'इत्' कहते हैं, प्राचीन के मत में इसका नाम अनुबन्ध है ॥५॥

नाम संज्ञश्चतुर्विधः ॥६॥

यथा पुंलिङ्गः 'पुरुषोत्तमः' स्त्रीलिङ्गो 'लक्ष्मीः' नपुंसको 'ब्रह्म'-संज्ञः, आलिङ्गोऽव्ययः ।

नाम संज्ञक शब्द चार प्रकार हैं। पुंलिङ्ग पुरुषोत्तम संज्ञ, स्त्रीलिङ्ग शब्द लक्ष्मी संज्ञ, नपुंसक लिङ्ग ब्रह्म संज्ञ, अलिङ्ग शब्द अव्यय संज्ञ है ॥६॥

तत्र प्रथमा कृष्ण-सुँ—

स-र-रामयो र्विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते ।।७।।

कृष्णः, एवं कृष्णौ, कृष्णाः।

सर्वेश्वरान्त पुरुषोत्तम शब्द के मध्य में अरामान्त कृष्ण शब्द प्रथमा के एक वचन में कृष्ण-सुँ 'सुँ' उँ राम उच्चारणार्थ है, अतः उसका 'इत्' होने से 'स्' रहता है।

विष्णुभक्ति के द्वारा सिद्ध होने से विष्णुपद संज्ञा होती है, स-राम के एवं र-राम के स्थान में विष्णुसर्ग होता है, यदि वह विष्णुपद के अन्त में होता है। जैसे कृष्ण-स् यहाँ 'स्' राम के स्थान में विष्णुसर्ग हुआ, इससे 'कृष्णः' विष्णुपद सिद्ध हुआ।

इस प्रकार प्रथमा के द्विवचन में कृष्ण-औ, 'ओद्वये ओ' सूत्र से 'कृष्णौ' पद सिद्ध हुआ। प्रथमा के बहुवचन में 'कृष्ण-जस्' जराम चिह्नार्थ हेतु 'इत' हुआ अस् अवशेष रहा, अनन्तर 'दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से त्रिविक्रम हुआ, एवं 'स-ररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णः' पद सिद्ध हुआ ।।७।।

दशावतारादम्शसोरराम हरः ।।८।।

कृष्णम्, कृष्णौ।

द्वितीया के एक वचन में कृष्ण-अम्, अनन्तर दशावतार के पश्चात् अम् एवं शस् का अराम हर होता है। इस सूत्र से 'अम्' के अराम का हर होने से 'कृष्णम्' पद सिद्ध हुआ।

द्वितीया के द्विवचन में कृष्ण-औ, 'ओ, द्वये औ' सूत्र के द्वारा कृष्णौ पद सिद्ध हुआ ।।८।।

दशावतारस्य त्रिविक्रमः शसि, तस्मात् सो नः पुंसि ॥९॥

कृष्णान् ।

द्वितीया के बहुवचन में कृष्ण-शस्, 'शराम' चिह्नार्थ हेतु इत् होकर शस्, अस् हुआ, किन्तु अस् को शस् कहा जायेगा । 'दशावतारादम्शसोरराम हरः' सूत्र के द्वारा शस् का अराम हर हुआ । उसके बाद दशावतार का त्रिविक्रम होता है, शस् परे रहने से एवं उस दशावतार के पश्चात् शस् के सराम के स्थान में 'न'राम होता पुरुषोत्तम लिङ्ग में, यहाँ 'न'राम का अराम उच्चारणार्थ है, अतः उसका इत् होता है ।

इस सूत्र के द्वारा कृष्णशब्द के अराम दीर्घ हुआ, एवं शस् के सराम के स्थान में 'न्' राम होने से 'कृष्णान्' पद सिद्ध हुआ ॥९॥

अरामान्तः कृष्णसंज्ञः ॥१०॥

अरामान्त शब्द कृष्ण सज्ञक होता है ॥१०॥

कृष्णात् टा इनः ॥११॥

कृष्णेन ।

तृतीया के एकवचन में कृष्ण-टा, अनन्तर अरामान्त शब्द कृष्ण संज्ञक होता है । कृष्ण संज्ञक शब्द के पश्चात् 'टा' के स्थान में 'इन' होता है, इस सूत्र के द्वारा कृष्ण शब्द के उत्तर 'टा' के स्थान में 'इन' हुआ, अनन्तर 'अद्वयमिद्वये ए' सूत्र के द्वारा 'कृष्णेन' पद सिद्ध हुआ ॥११॥

कृष्णस्य त्रिविक्रमो गोपाले ॥१२॥

कृष्णाभ्याम् ।

तृतीया के द्विवचन में कृष्ण-भ्याम्, गोपाल परे रहने से कृष्ण संज्ञक शब्द का त्रिविक्रम होता है, इस सूत्र के द्वारा कृष्ण शब्द के अराम त्रिविक्रम होने से 'कृष्णाभ्याम्' पद सिद्ध हुआ ॥१२॥

कृष्णाद्भिस् ऐस् ।।१३।।

कृष्णैः ।

तृतीया के बहुवचन में कृष्ण-भिस्, कृष्ण संज्ञक शब्द के बाद भिस् के स्थान में 'ऐस्' होता है। इस सूत्र के द्वारा भिस् ऐस् होने पर 'एद्वये ऐ' सूत्र के द्वारा कृष्ण शब्दान्त स्थित अराम के सहित मिलित होकर 'ऐ' ऐ हुआ, 'स रगामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से 'स्' के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णैः' पद सिद्ध हुआ ।।१३।।

कृष्णात् ङे यः ।।१४।।

कृष्णाय, कृष्णाभ्याम् ।

चतुर्थी के एक वचन में कृष्ण-ङे, कृष्ण संज्ञक शब्द के पश्चात् 'ङे' विभक्ति के स्थान में अन्त्यस्थ 'य' होता है। इस सूत्र के द्वारा ङे स्थान में अन्त्यस्थ 'य' होने से 'कृष्णस्य त्रिविक्रमो गोपाले' सूत्र से अराम का त्रिविक्रम होकर 'कृष्णाय' पद सिद्ध हुआ ।

चतुर्थी के द्विवचन में कृष्ण-भ्याम्, कृष्णस्य त्रिविक्रमो गोपाले सूत्र से त्रिविक्रम होने से 'कृष्णाभ्याम् पद सिद्ध हुआ ।।१४।।

कृष्णस्य ए वैष्णवे बहुत्वे ।।१५।।

कृष्णेभ्यः ।

चतुर्थी के बहुवचन में कृष्ण-भ्यस्, बहुवचन में वैष्णव परे रहने से कृष्ण संज्ञक शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान में एराम होता है। इस सूत्र से अराम के स्थान में एराम हुआ, 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से 'सराम' विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णेभ्यः' पद सिद्ध हुआ ।।१५।।

कृष्णात् ङसेरात् ॥१६॥

कृष्णात्, कृष्णाभ्याम्, कृष्णेभ्यः ।

पञ्चमी के एकवचन में कृष्ण-ङसि, कृष्ण संज्ञक शब्द के उत्तर ङसि के स्थान में 'आत्' होता है, इस सूत्र से ङसि के स्थान में 'आत्' हुआ । अनन्तर 'दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से त्रिविक्रम होकर 'कृष्णात्' पद सिद्ध हुआ ।

पञ्चमी के द्विवचन में कृष्ण-भ्यां, चतुर्थी के द्विवचन के तुल्य 'कृष्णस्य त्रिविक्रमो गोपाले' सूत्र से त्रिविक्रम होकर 'कृष्णाभ्याम्' पद सिद्ध हुआ ।

पञ्चमी के बहुवचन में 'कृष्ण-भ्यस्' पूर्वोक्त चतुर्थी के तुल्य कार्य्य होकर 'कृष्णेभ्यः' पद सिद्ध हुआ ॥१६॥

कृष्णात् ङसः स्य ॥१७॥

कृष्णस्य ।

षष्ठी के एकवचन में 'कृष्ण-ङस्' कृष्ण संज्ञक शब्द के 'ङस्' के स्थान में 'स्य' होता । इस सूत्र के द्वारा ङस् के स्थान में 'स्य' होकर 'कृष्णस्य' पद सिद्ध हुआ ॥१७॥

कृष्णस्य ए ओसि ॥१८॥

कृष्णयोः ।

षष्ठी के द्विवचन में 'कृष्ण-ओस्' ओस् परे रहने से कृष्ण संज्ञक शब्द के अन्त का अराम एराम होता है । इससे 'अराम' 'ए'राम होने से 'ए अय्' सूत्र से एराम 'अय्' होने से एवं ओराम के प्रवेश के पश्चात् 'स-ररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णयोः' पद सिद्ध हुआ ॥१८॥

वामन-गोपी-राधाभ्यो नुड़ामि ॥१९॥

उटावितौ ।

षष्ठी के बहुवचन में 'कृष्ण-आम्' 'आम्' परे रहने से वामन संज्ञक, गोपी संज्ञक, एवं राधा संज्ञक शब्द के पश्चात् 'नुट्' आगम होता है, 'नुट' का 'उट्' इत् होता है, 'न' राम रहता है, टित् आगम पर सम्बन्धी, कित् आगम पूर्व सम्बन्धी होता है ॥१९॥

वामनस्य त्रिविक्रमो नामि, नृ शब्दस्य तु वा, न तिसृ-चतस्त्रोः ॥२०॥

कृष्णानाम्, कृष्णे, कृष्णयोः ।

'नुट्' आगम होकर 'कृष्ण-नाम्' हुआ, 'नाम्' परे रहने से वामन त्रिविक्रम होता है, किन्तु 'नृ' शब्द का त्रिविक्रम विकल्प में होता है, एवं 'तिसृ-चतसृ' शब्द का त्रिविक्रम नहीं होता है । इस सूत्र से कृष्ण शब्द के अन्त में स्थित अराम त्रिविक्रम होकर 'कृष्णानाम्' पद सिद्ध हुआ ।

सप्तमी के एकवचन में 'कृष्ण-ङि' 'ङि' का इराम 'इत्' होता है, अनन्तर 'अद्वयमिद्वये ए' सूत्र से 'कृष्णे' पद सिद्ध हुआ ।

द्विवचन में, षष्ठी के द्विवचन के तुल्य रूप 'कृष्णयोः' हुआ । सप्तमी के बहुवचन में 'कृष्ण-सुप्' पराम इत् होता है । 'कृष्णस्य ए वैष्णवे बहुत्वे' सूत्र से कृष्ण शब्द के अराम एराम हुआ ॥२०॥

ईश्वर-हरिमित्र- कङेभ्यः प्रत्यय-विरिञ्चि सस्य षो,
नुम्-विष्णुसर्ग-व्यवधानेऽपि, नतु विष्णुपदाद्यन्त-सातीनाम्॥२१

कृष्णेषु ।

ईश्वर, अर्थात् इ ई उ ऊ ऋ ॠ, ए ऐ ओ औ, हरिमित्र-य र ल व एवं क ङ, वर्ण के पश्चात् स्थित प्रत्यय वा विरिञ्चि का दन्त्य सराम मूर्द्धन्य 'ष' राम होता है, 'नुम्' वा विष्णुसर्ग मध्य में रहने पर भी होता है। किन्तु विष्णुपद के आदि में अथवा अन्त में स्थित सराम, एवं साति प्रत्यय का सराम मूर्द्धन्य 'ष' राम नहीं होता है।

इस सूत्र से दन्त्य सराम मूर्द्धन्य 'ष' राम होकर 'कृष्णेषु' पद सिद्ध हुआ ॥२१॥

सम्बोधने सुर्बुद्ध-संज्ञः ॥२२॥

'सम्बुद्धिः' च ।

सम्बोधन में 'सु' बुद्धनाम से अभिहित होता है। प्राचीन के मत में यह 'सम्बुद्धि' है ॥२२॥

ए-ओ-वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम् ॥२३॥

हे कृष्ण, हे कृष्णौ, हे कृष्णा.। एवं राम., रामौ, रामाः,
रामम्, रामौ, इत्यादि।

एराम, ओराम, एवं वामन संज्ञक स्वर के पश्चात् बुद्ध का अदर्शन होता है। हे कृष्ण-सु' यहाँ वामन के पश्चात् बुद्ध संज्ञक 'सु' का अदशन होने पर 'हे कृष्ण' पद सिद्ध हुआ, हे शब्द सम्बोधन सूचक है। द्विवचन बहुवचन में पूर्ववत् 'हे कृष्णौ, हे कृष्णः' होगा, कृष्ण शब्द के समान ही राम शब्द का रूप होगा। रामः रामौ, रामाः, रामम् रामौ, इत्यादि ॥२३॥

र-ष-ऋ द्वयेभ्यो नस्य णः, सर्वेश्वर-ह-य-व-कवर्ग पवर्ग व्यवधानेऽपि, समान-विष्णुपदे, नतु विष्णुपदान्तस्य ॥२४॥

रामान्, रामेण, इत्यादि एवं 'केशव' 'नारायण' 'माधव' 'गोविन्द' आदयः कृष्णतुल्याः ।

रराम, मूर्द्धन्य ष राम, ऋ द्वय, के पश्चात् दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है, सर्वेश्वर, ह, य, व, क वर्ग, प वर्ग, व्यवधान होने पर भी 'न' 'ण' होता है, किन्तु एक पद में होगा, भिन्न पद में स्थित अथवा पदान्त में स्थित 'न' 'ण' नहीं होगा ।

राम शब्द के द्वितीया बहुवचन में रामान्, यहाँ पदान्त में स्थित होने के कारण 'न्' 'ण' नहीं हुआ । तृतीया के एकवचन में 'रामेण' यहाँ 'न' 'ण' होकर 'रामेण' पद हुआ ।

केशव, नारायण, माधव, गोविन्द प्रभृति अरामान्त शब्द का रूप भी अरामान्त कृष्ण शब्द के तुल्य होगा ॥२४॥

शसादयो यदु-संज्ञाः ॥२५॥

'शस्' प्रभृति षोड़श विष्णुभक्ति का नाम यदु है ॥२५॥

अत्र पाद-दन्त-मास-यूष इत्येतेषां, पद-दत्-मास्-यूषन् इत्येते विरिञ्चयो यदुषु वा ॥२६॥

पदः, पादान्, पदा, पादेन, इत्यादि ।

यदु परे रहने से पाद शब्द के स्थान में पद, दन्त के स्थान में दत्, मास-मास्, यूष-यूषन् विरिञ्चि (आदेश) विकल्प में होता है ।

विरिञ्चि पक्ष में विष्णुजनान्त शब्द के सदृश, एवं अविरिञ्चि पक्ष में कृष्ण शब्द के सदृश रूप होगा ।

पाद-शस्, पाद के स्थान में 'पद्' आदेश होने से 'पदः' पक्षान्तर में कृष्ण शब्दवत् 'पादान्' रूप हुआ । इस प्रकार पदा, पादेन, तृतीया के एकवचन में पद हुआ, अन्यान्य विभक्ति में भी इस प्रकार विकल्प में पद होगा ।

अथ धातु स्वरूप आरामान्तो विश्वपा-शब्दः । विश्वपाः, विश्वपौ, विश्वपाः, विश्वपाम्, विश्वपौ ।

धातु स्वरूप आरामान्त विश्वपा शब्द है, विश्वपा-'सु' 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से 'विश्वपाः' पद हुआ, विश्वपा-औ, 'ओद्वये औ' सूत्र से विश्वपौ, पद हुआ, विश्वपा-जस्, जराम-इत, दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः, सूत्र से त्रिविक्रम विष्णुसर्ग होकर 'विश्वपाः' पद हुआ । विश्वपा-अम्, दशावतारादम् शसो ररामहरः, सूत्र से अराम हर होकर 'विश्वपाम्' पद हुआ, विश्वपा-औ, 'ओद्वये औ' सूत्र से 'विश्वपौ पद हुआ ।।२६।।

आरामहरो यदुसर्व्वेश्वरे, न त्वापः ।।२७।।

विश्वपः, विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः, विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः, विश्वपः, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः, विश्वपः, विश्वपो, विश्वपाम्, विश्वपि, विश्वपोः, विश्वपासु, हे विश्वपाः, इत्यादि । हाहादीनां आरामहर विधि र्व्वा ।।२७।।

विश्वपा-शस्, यदुसंज्ञक विभक्ति के सर्बेश्वर परे रहने से आराम हर होता है, किन्तु 'आप' का आराम हर नहीं होता है। इस सूत्र से 'विश्वपा' शब्द का आराम हर हुआ, 'सररामयो विष्णु सर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'विश्वपः' पद हुआ ।

विश्वपा-टा, ट इत्, उक्त सूत्र से आराम हर होने से प्रत्यय मिलकर विश्वपा पद हुआ । विश्वपा-भ्याम्, विश्वपाभ्याम्, विश्वपा-भिस्, स ररामयोर्विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते, सूत्र से विष्णुसर्ग होकर विश्वपाभिः हुआ। विश्वपा-ङे, आराम हर के पश्चात् ए मिलित होकर विश्वपे हुआ, विश्वपाभ्याम्, विश्वपा-भ्यस् विष्णुसर्ग होकर विश्वपाभ्यः हुआ, विश्वपा-ङसि, आराम हर, विष्णुसर्ग के

पश्चात् विष्णुभक्ति मिलित होकर विश्वपः हुआ। विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः, विश्वपा – ङस् विश्वपः, विश्वपा – ओस् – विश्वपोः विश्वपा-आम्-विश्वपाम्, विश्वपा-ङि-विश्वपि, विश्वपा-ओस्, विश्वपोः, विश्वपा-सुप्-विश्वपासु, पद हुआ, सम्बोधन में विष्णुसर्ग होकर हे विश्वपाः पद हुआ।

हा हा अब्जा प्रभृति का आराम हर विकल्प में होता है, हाहः, हाहान्, अब्जः अब्जान् ॥२७॥

इ-उ-रामान्तो हरि-संज्ञः ॥२८॥

'अग्निः', 'घिः' च, हरिः।

इ-रामान्त शब्द एवं उ-रामान्त शब्द हरि संज्ञक है, प्राचीन के मत में अग्नि संज्ञक एवं घि संज्ञक है।

हरि-सुँ, तत्रज ट-श-ङ-पा इतः, उँश्च, सोँः, ङसे रिश्च सूत्र से 'सुँ' का अनुबन्ध इत् हुआ, 'विष्णुभक्ति सिद्धं विष्णुपदम्' सूत्र से पद संज्ञा हुई, अनन्तर 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र के द्वारा 'स' विष्णुसर्ग होने से 'हरिः' पद सिद्ध हुआ ॥२८॥

हरित औ पूर्व्वसवर्णः ॥२९॥

हरी।

हरि संज्ञक शब्द के पश्चात् औ रहने से पूर्व सवर्ण अर्थात् पूर्व वर्ण का समान वर्ण होता है।

हरि-औ, उक्त सूत्र से 'औ' पूर्व सवर्ण इराम होने पर 'दशात्मक एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से त्रिविक्रम होने से 'हरी' पद हुआ ॥२९॥

इ द्वयस्य ए, उद्वयस्य ओ, ऋद्वयस्य अर्,
लृ द्वयस्य अल्, गोविन्द-संज्ञः ॥३०॥

'गुण'-संज्ञश्च ।

इ द्वयके ए, उद्वय के स्थान में ओ, ऋ द्वयके स्थान में अर्, लृद्वय के स्थान में अल्, गोविन्द संज्ञक होते हैं, प्राचीन के मत में गुण संज्ञक है ॥३०॥

ङितो वृष्णि-संज्ञाः ॥३१॥

ङित् प्रत्यय समूह का वृष्णि नाम है ॥३१॥

हरे र्गोविन्दो जसि वृष्णिषु बुद्धे च ॥३२॥

हरयः, हरिम्, हरी, हरीन् ॥३२॥

हरितष्टा ना, नतु लक्ष्म्याम् ॥३३॥

हरिणा, हरिभ्याम्, हरिभिः, हरये, हरिभ्यामु हरिभ्यः ।

हरि संज्ञक शब्द के उत्तर में 'टा' विष्णुभक्ति होने पर टा के स्थान में 'ना होता है, किन्तु लक्ष्मी संज्ञक शब्द के उत्तर 'टा' के स्थान में 'ना' नहीं होता है । हरि-टा, उक्त सूत्र से टा ना होने पर हरिना हुआ, अनन्तर 'र-ष-ऋ द्वयेभ्यो' (२४) सूत्र से दन्त्य न राम 'ण' राम होकर 'हरिणा' पद हुआ, हरि-भ्याम्–हरिभ्याम् पद हुआ, हरि-भिस्, विष्णुभक्ति सिद्ध विष्णुपदम्, सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते, सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'हरिभिः' पद हुआ, हरि-ङे, 'हरेर्गोविन्दो जसि वृष्णिषु बुद्धे च' सूत्र से गोविन्द-इ, ए, होने से 'ए अय्' होकर विष्णुभक्ति मिलन से 'हरये' पद हुआ । हरि-भ्याम्, 'हरिभ्याम्' हरि-भ्यस् स ररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते, सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'हरिभ्यः' पद हुआ ॥३३॥

ए-ओभ्यां ङसि-ङसो रराम-हरः ॥३४॥

हरेः, हरिभ्याम्, हरिभ्यः, हरे, हर्य्योः, हरीणाम् ।

हरि-ङसि, ङितो वृष्णिसंज्ञाः, हरे र्गोविन्दो जसिवृष्णिषु बुद्धे च, सूत्र से गोविन्द होकर इ-एराम होने पर, एराम एवं ओराम के पश्चात् ङसि एवं ङस का अराम हर होता है। इस सूत्र से 'ङसि' का अराम हर हुआ, एवं (७) सूत्र से विष्णुसर्ग होकर हरेः पद हुआ ।

हरि-भ्याम्–हरिभ्याम्, हरि-भ्यस्–हरिभ्यः, हरि-ङस्–३१-३२ वृष्णिसंज्ञा, एवं गोविन्द होने के पश्चात् ३४ सूत्र के द्वारा ङस् के अराम हर होकर ७ सूत्र से विष्णुसर्ग हाने के पश्चात् हरेः, पद हुआ, हरि-ओस्, 'इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे' सूत्र से इ यराम हुआ, ररामात् सर्वेश्वरेतु हरिगोत्रं विना सूत्र से 'य' राम का द्वित्व हुआ, ओराम का प्रवेश हुआ, एवं ७ सूत्र 'स' विष्णुसर्ग होकर 'हर्य्योः' पद हुआ, हरि-आम्-वामन गोपी राधाभ्योनुट् आमि, से 'नुट्', २० सूत्र से वामन इ का त्रिविक्रम, र ष ऋ द्वयेभ्यो नस्य णः, सूत्र से दन्य नराम णराम होकर 'हरीणाम' पद सिद्ध हुआ ॥३४॥

हरितः ङे रौच् ॥३५॥

चराम इत् ।

हरि-ङि, रहने पर हरि संज्ञक शब्द के पर स्थित 'ङि' के स्थान में 'औच्' होता है, औच् का चराम इत् होता है, इससे ङि के स्थान में औच् हुआ ॥३५॥

अन्त्य सर्वेश्वरादि वर्णाः संसार-संज्ञाः ॥३६॥

अन्त्य सर्वेश्वर से लेकर वर्ण समूह का नाम संसार है ॥३६॥

संसारस्य हरश्चिति ॥३७॥

'ङित्' इति प्राञ्चः, हरौ, हर्य्योः, हरिषु, हे हरे । एवं
रवि-कव्यादयः । त्रि-शब्दो नित्य बहुवचनान्तः,
त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः ।

३७ सूत्र से संसार हर होकर औका प्रवेश होने पर हरौ, पद हुआ, हरि-ओस्, पूर्ववत् 'हर्य्योः' पद हुआ, हरि-सुप्-पराम इत्, २१ 'ईश्वर हरिमित्र कङेभ्यः' सूत्र से दन्त्य सराम मूर्द्धन्य षराम होकर 'हरिषु' पद सिद्ध हुआ ।

सम्बोधन में हे-हरि-सुँ सूत्र से हरे गोविन्दो जसि वृष्णिषु बुद्धे च, २२ सम्बोधने सुबुद्ध-संज्ञः, बुद्ध संज्ञा, गोविन्द अर्थात् इराम, एराम होने के पश्चात् २३ ए 'ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' सूत्र से 'सुँ' का अदर्शन होने से 'हे हरे' पद हुआ, इस प्रकार रवि, कवि प्रभृति शब्द का रूप होगा, त्रि शब्द नित्य बहुवचनान्त है ।

हरि शब्द के तुल्य त्रि-जस् 'त्रयः' त्रि-शस्, 'त्रीन्' त्रि-भ्यस्, 'त्रिभ्यः' ॥३७॥

त्रेस्त्रयो नाम्नि स्वार्थे ॥३८॥

त्रयाणाम् । अस्वार्थे तु प्रियत्रीणाम् । त्रिषु, एवं
कति-यति-ततीनाम् ।

निज अर्थ में वर्त्तमान् त्रिशब्द के स्थान में आम् परे रहने से 'त्रय' होगा, किन्तु निज अर्थ में वर्त्तमान न होने से 'आम्' नहीं होगा, इस सूत्र से त्रि शब्द के स्थान में 'त्रय' होने से २४ सूत्र के द्वारा 'न' राम मूर्द्धन्य 'ण' राम होने से 'त्रयाणाम्' पद हुआ ।

स्वकीय अर्थ में विद्यमान न होने से प्रियत्रि-आम् 'प्रियत्रीणाम्' पद होगा, त्रय आदेश नहीं होगा ।

त्रि-सु २१ सूत्र के द्वारा 'स' षराम होने पर 'त्रिषु' पद हुआ । इसी प्रकार कति, यति, एवं तति शब्द का रूप होगा ॥३८॥

षनान्त-संख्यातः कतेश्च जस्-शसोर्महाहरः स्वार्थे ।।३९।।

मूर्द्धन्य ष रामान्त शब्द एवं दन्त्य न रामान्त संख्या शब्द, कतिशब्द, इसके पश्चात् स्थित जस् एवं शस् का महाहर होता है, उक्त शब्द निजार्थ में विद्यमान होने से ।।३९।।

ऋराम-सखिभ्यां सोराच्, बुद्धं विना ।।४०।।

'संसारस्य हरः' सखा ।

सखि-सुँ, ५ सूत्र से अनुबन्ध इत् होता है । ऋ रामान्त शब्द सखि शब्द, उशनस् शब्द, पुरुदंशस्, अनेहस् शब्द के 'सुँ' के स्थान स्थान में आच् होता है, किन्तु बुद्ध में नहीं होता है, 'आच' का 'च' इत् होता है, 'आ' रहता है, ३७ 'संसारस्य हरश्चिति' सूत्र से 'इ' राम इत् होकर आराम प्रविष्ट होने से 'सखा' पद हुआ ।।४०।।

अद्वयस्य आ, इद्वयस्य ऐ, उद्वयस्य औ, ऋद्वयस्य आर्, ऌद्वयस्य आल् वृष्णोन्द्र-संज्ञः ।।४१।।

'वृद्धिः' च ।

अद्वय के स्थान में आ, इ द्वय के स्थान में ऐ, उद्वय के स्थान में औ, ऋद्वय के स्थान में आर् ऌद्वय के स्थान में आल्, ए स्थान में ऐ ओ स्थान में औ वृष्णोन्द्र संज्ञा है,इसको वृद्धि संज्ञा कहते हैं ।।४१।।

स्वादयः पञ्च-पाण्डवाः ।।४२।।

घुटः 'सुटः' च ।

'सु' प्रभृति पाँच, अर्थात् सुँ, औ, जस्, अम्, औ, पाण्डव संज्ञक होते हैं, प्राचीन के मत में 'घुट्' एवं 'सुट्' है ।।४२।।

सख्यु र्वृष्णीन्द्रः सु-वर्जं पाण्डवेषु ॥४३॥

सखायौ, इत्यादि, सखीन् ।

सखि-औ, सुभिन्न पाण्डव संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से सखि शब्द का 'इ' राम का वृष्णीन्द्र होता है, इससे वृष्णीन्द्र होकर इराम ऐ राम होने से 'ऐ आय्' सूत्र से ऐ आय् होकर 'सखायौ' पद हुआ। सखीन्, सखि-शस्, हरिशब्द के तुल्य 'सखीन्' पद हुआ ॥४३॥

न सखि र्हरि संज्ञष्टादौ, पतिस्त्वसमासे ॥४४॥

सख्या, इत्यादि ।

टादि विष्णुभक्ति परे रहने से सखि शब्द हरि संज्ञक नहीं होता है, एवं असमास में पति शब्द की भी हरि संज्ञा नहीं होती है।

इस सूत्र से सखि शब्द की हरि संज्ञा न होने से 'टा' स्थान में 'ना' नहीं हुआ, अनन्तर सखि-टा, ट इत् 'आ' रहता है, ४१ 'इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे' सूत्र से इराम यराम होने से सख्या पद सिद्ध हुआ ॥४४॥

ख्यत्याभ्यां ङसि-ङसोरुस् ॥४५॥

'सख्युः' इत्यादि ।

सखि-ङसि, ख्य वा त्यराम के पश्चात् ङसि एवं ङस् के स्थान में उस् होता है, अर्थात् खि, खी, ति, ती, शब्द के इद्वय के स्थान में 'य' राम होता है।

इस सूत्र से ङसि एवं ङस् के स्थान में उस् होने से ४७ एवं ७ सूत्र से य एवं विष्णुसर्ग होकर 'सख्युः' पद हुआ ॥४५॥

सखिपतिभ्यां ङेरौ ॥४६॥

सख्यौ, इत्यादि, हे सखे, इत्यादि ।

ई रामान्तो दैत्यप्रमी-शब्दः । दैत्यात् प्रमीणाति हिनस्तीति क्विवन्तो विष्णुवाची । दैत्यप्रमीः, इत्यादि सुगमम् । उरामान्त-विष्णुशब्दः, हरि-सूत्रैरेव साधनम्, विष्णुः, विष्णू, विष्णवः, इत्यादि ।

सखि-ङि, सखि एवं पति शब्द के उत्तर 'ङि' के स्थान में औ होने पर 'इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे' सूत्र से इराम यराम होने पर 'सख्यौ' पद हुआ, सम्बोधन में—हे सखि-सुँ, हरिशब्द के तुल्य 'हे सखे' पद हुआ ।

ईशमान्त दैत्यप्रमी शब्द, दैत्यबधकारी को दैत्यप्रमी कहते हैं, यह विष्णु का बोधक है, एवं क्विप् प्रत्यय सिद्ध है । दैत्यप्रमी-सुँ, 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से 'स' राम के स्थान में विष्णुसर्ग होने से 'दैत्यप्रमीः' पद होता है । इस प्रकार इस शब्द का रूप सरल है ।

उ रामान्त-विष्णुशब्द, हरि सूत्र के द्वारा 'हरि' शब्द के समान इसका साधन होगा ।

विष्णु-सुँ, विष्णुः विष्णु-औ, विष्णू, विष्णु-जस्-विष्णवः, इस प्रकार रूप होगा ॥४६॥

कृष्ण श्रीः-धातोरीदूतोरियुवौ सर्व्वेश्वरे बहुलम् ॥४७॥

कृष्णश्रियौ, कृष्णश्रियः, इत्यादि । भावे क्विपि भूः, भुवौ, भुवः, इत्यादि । विश्वनीः, विश्वन्यौ, विश्वनियौ, विश्वन्यः, विश्वनियः, इत्यादि । षष्ठी बहुत्वे–विश्वन्यां विश्वनियाम् ।

कृष्ण श्री-सुँ, 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होने पर 'कृष्णश्रीः' पद हुआ ।

सर्वेश्वर परे रहने से प्रायशः धातु के ईराम के स्थान में 'इय्' ऊराम के स्थान में 'ऊव्' होता है ।

कृष्णश्री-औ, उक्त सूत्र के द्वारा 'इय्' होकर 'कृष्णश्रियौ' पद हुआ, कृष्णश्री-जस्, ४७ सूत्र से ईराम 'इय्' होने पर 'सररामयोः' सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णश्रियः' पद सिद्ध हुआ।

'विश्वनी' विश्वनी-सुँ, ७ 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'विश्वनीः' पद सिद्ध हुआ।

विश्वनी-औ, ईराम 'य' राम होने से 'विश्वन्यौ' पद हुआ, विश्वनी-जस, ईराम-'य' राम होने से विश्वन्यः, 'इय्' होने पर विश्वनियौ, विश्वनियः। षष्ठी के बहुवचन में विश्वनी-आम्, इराम 'य' राम होने से विश्वन्याम्, 'इय्' होने से 'विश्वनियाम्' ॥४७॥

नी राधाभ्यां ङेराम् ॥४८॥

नी शब्द एवं राधा संज्ञक शब्द के उत्तर ङि के स्थान में 'आम्' होता है। विश्वनी-ङि, उक्त सूत्र के द्वारा 'ङि' के स्थान में 'आम्' होने से ईराम के स्थान में 'य' राम होकर 'विश्वन्याम्' पद सिद्ध हुआ ॥४८॥

अथ ऋरामान्ताः, तत्र पितृशब्दः। पिता,

ऋरामस्य गोविन्दः पाण्डवेषु ङौ च ॥४९॥

पितरौ, पितरः, इत्यादि। पितॄन्, पित्रा,

पितृभ्याम्, पितृभिः, इत्यादि।

अनन्तर ऋरामान्त शब्द के मध्य में 'पितृ' शब्द का रूप इस प्रकार है, पितृ-सुँ, ४० 'ऋराम सखिभ्यां सोराच्' सूत्र से सु के स्थान में 'आच्' होने से, ३७ 'संसारस्य हरश्चिति' सूत्र से ऋराम का हर एवं 'आ' राम का प्रवेश होने से 'पिता' पद निष्पन्न हुआ।

पाण्डव एवं ङि परे रहने से ऋराम का गोविन्द होता है। पितृ-औ, रहने से ऋराम का गोविन्द होकर 'पितरौ' पद हुआ। पितृ-जस्, ऋराम का गोविन्द, एवं सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'पितरः' पद हुआ।

पितृ-शस्, '८ दशावतारादमशसो रराम-हरः' सूत्र से अराम हर होने से '९ दशावतारस्य त्रिविक्रमः शसि, तस्मात् सो नःपुंसि' सूत्र से ऋ का त्रिविक्रम एवं सराम के स्थान में 'न' राम होने से 'पितॄन्' पद हुआ। पितृ-टा, 'ऋद्वयं रः' सूत्र से ऋराम-रराम होने से 'पित्रा' पद हुआ, पितृ-भ्याम्, पितृभ्याम्, पितृ-भिस्, सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'पितृभिः' पद हुआ ॥४९॥

ऋरामतो ङसि-ङसोरस्य उच् ॥५०॥

पितुः, इत्यादि।

ऋराम के पश्चात् ङसि एवं ङस् के अराम के स्थान में 'उच्' होने से 'संसारस्य हरश्चिति' सूत्र से ऋराम का हर एवं 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होने पर 'पितुः' पद सिद्ध हुआ ॥५०॥

बुद्धे-गोविन्दः ॥५१॥

बुद्ध परे रहने से ऋराम का गोविन्द होता है ॥५१॥

राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सो हरः ॥५२॥

'हे पितः' नृ शब्दः, ना, नरौ, नरः,

षष्ठी-नृणां, नॄणाम्, हे नः।

राधा संज्ञक शब्द के पश्चात् एवं विष्णुजन के पश्चात्, तथा त्रिविक्रम ईप के उत्तर 'सु' का हर होता है।

हे पितृ-सुँ, ऋराम का गोविन्द होने से, सु का हर हुआ, एवं रराम के स्थान में विष्णुसर्ग होने से 'हे पितः' पद हुआ। 'नृ' शब्द, नृ-सुँ पितृ शब्दवत् 'ना', नृ-औ, 'नरौ' नृ-जस्-'नरः' षष्ठी-नृ-आम्, विकल्प में दीर्घ होने से नृणाम्, नॄणाम्। सम्बोधन में पितृशब्दवत् 'हे नः' ॥५२॥

कृष्णरै-शब्दः—

राय आ स-भोः ॥५३॥

कृष्णराः, कृष्णरायौ, कृष्णरायः, इत्यादि ।

ऐ रामान्त कृष्णरै शब्द, सराम एवं भराम परे रहने से रै शब्द के ऐराम आराम होता है, कृष्णरै-सुँ, ऐराम आराम होने से ७ सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होने पर 'कृष्णराः' पद सिद्ध हुआ । कृष्णरै-औ 'ऐ आय्' सूत्र से ऐ आय् होने पर 'कृष्णरायौ' कृष्णरै-जस्, ऐ आय् होने पर 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'कृष्णरायः' पद हुआ ॥५३॥

गो शब्दः—

ओ औ पाण्डवेषु ॥५४॥

गौः, गावौ, गावः ।

ओरामान्त गोशब्द बलीवर्द्द अर्थ में पुरुषोत्तम लिङ्ग है । पाण्डव परे रहने से ओराम औराम होता है । गो-सुँ, ओराम-औराम होने से 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से सराम विष्णुसर्ग होने पर 'गौः' पद हुआ, गो-औ, ओराम औराम होने से 'औ आव्' सूत्र से आव होकर 'गावौ' पद हुआ ।

गो-जस् ओराम-औराम होने पर, औ-आव, एवं विष्णुसर्ग होकर 'गावः पद हुआ ॥५४॥

ओ आ अम्-शसो नंच सोनः ॥५५॥

गाम्, गावौ, गाः, गवा, गोभ्यामित्यादि, हे गौः, एवं
ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः, इत्यादि, हे ग्लौः ।

अम् एवं शस् परेरहने से ओराम आराम होता है, किन्तु शस् के सराम के स्थान में 'न' राम नहीं होता है । गो-अम्, ओराम आराम होने से, दशावतारादमशसोररामहरः' सूत्र से अराम हर होने से 'गाम्' पद हुआ । गो-औ, 'ओ औ पाण्डवेषु' सूत्र से ओ-औ होने से औ-आव् होकर 'गावौ' पद हुआ । गो-शस्, ५५ 'ओ आ-अम्शसोर्नच सोनः' सूत्र से ओराम आराम हुआ, 'दशावतारादम्शसो ररामहरः' सूत्र से अराम हर हुआ, 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'गाः' पद सिद्ध हुआ । गो-टा, ओ अव् सूत्र से ओराम अव् होकर 'गवा' पद सिद्ध हुआ । गो-भ्याम्, 'गोभ्याम्' पद सिद्ध हुआ, सम्बोधन में गो-सु, ओ औ पाण्डवेषु, सूत्र से ओराम औराम होने के पश्चात् सराम के स्थान में ७ सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'हे गौः' पद हुआ ।

इस प्रकार औरामान्त ग्लौ शब्द, ग्लौ-सु-सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'ग्लौः' पद हुआ, ग्लौ-औ, 'औ आव्' होकर ग्लावौ, ग्लौ-जस्, 'औ-आव्' एवं विष्णुसर्ग होकर 'ग्लावः' पद हुआ, सम्बोधन में 'हे ग्लौः' पद सिद्ध हुआ ॥५५॥

॥ इति सर्व्वेश्वरान्ताः पुरुषोत्तम लिङ्गाः ॥

* * *

अथ सर्व्वेश्वरान्ता लक्ष्मी लिङ्गाः

आरामान्त-लक्ष्मी राधा-संज्ञा ।।५६।।

'श्रद्धा' संज्ञा च । तत्र राधा-शब्दः । राधा ।

अनन्तर सर्वेश्वरान्त लक्ष्मीलिङ्ग, आरामान्त लक्ष्मी संज्ञक शब्द का नाम राधा है, प्राचीनगण 'श्रद्धा' कहते हैं ।

उसके मध्य में राधा शब्द, राधा-सु राधा विष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सो हरः । सूत्र से 'सु' हर होने पर 'राधा' पद सिद्ध हुआ ।।५६।।

राधा-ब्रह्मभ्यामौ ई ।।५७।।

राधे, राधाः ।

राधा संज्ञक एवं ब्रह्म संज्ञक शब्द के उत्तर औराम ईराम होता है । राधा-औ, इस सूत्र से औराम ईराम होने पर 'अद्वयमिद्वये ए' सूत्र से राधा शब्द के अन्त में स्थित आराम के पश्चात् स्थित ईराम मिलित होकर एराम हुआ, एराम 'ध' राम में मिलित होकर 'राधे' पद निष्पन्न हुआ, राधा-जस्, अस् रहता है, 'दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से आराम एवं एकात्मक अराम मिलित होकर त्रिविक्रम हुआ, 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से 'स' राम विष्णुसर्ग होकर 'राधाः' पद सिद्ध हुआ ।।५७।।

राधाया ए टौसो र्बुद्धे च ।।५८।।

राधया, राधाभ्यां, राधाभिः ।

राधा-टा, 'राधाया ए टौसोर्बुद्धे च' सूत्र से राधा शब्द के अन्तस्थित आराम के स्थान में एराम होने के पश्चात् 'ए अय्' सूत्र एराम अय् होने से विष्णुभक्ति योग से 'राधया' पद निष्पन्न हुआ । राधा-भ्याम् 'राधाभ्याम्', राधा-भिस्, 'सररामयोः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'राधाभिः' पद हुआ ।।५८।।

राधातो याप् वृष्णिषु ।।५६।।

राधायै, राधाभ्याम्, राधाभ्यः, राधायाः, राधाभ्यां, राधाभ्यः, राधायाः, राधयोः, राधानाम् । लाक्षणिकान्न नुट्-राधायाम्, राधयोः, राधासु, हे राधे, इत्यादि । एवं रमा-रामा- श्रद्धा-अम्बादयश्च ।

वृष्णि परे रहने से राधा संज्ञक शब्द के उत्तर 'याप्' होता, इसका 'प्' इत् होता है । राधा-ङे, ५६ 'राधातोयाप् वृष्णिषु' सूत्र से 'याप्' हुआ, 'एद्वयै ऐ' सूत्र से याप् के आराम के सहित एराम मिलित होकर ऐराम हुआ । अनन्तर 'राधायै' पद सिद्ध हुआ ।

राधा-भ्याम्, राधाभ्याम्, राधा-भ्यस् 'सररामयोर्विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'राधाभ्यः' पद हुआ ।

राधा-ङसि, उक्त सूत्र से 'याप्' हुआ, अनन्तर दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से याप् के आराम के सहित एकात्मक 'अराम' मिलित होकर त्रिविक्रम हुआ, 'सररामयो र्विष्णुसर्गः सूत्र से 'सराम' के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'राधायाः' पद हुआ । राधा-भ्याम्, राधाभ्याम्, राधा-भ्यस्, राधाभ्यः, राधा-ङस्–राधायाः, राधा-ओस्, 'राधाया ए टौसो र्बुद्धे च' सूत्र से राधा शब्द के अन्त में स्थित आराम एराम होने से 'ए अय्' सूत्र से एराम 'अय्' हुआ, एवं 'स' राम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'राधयोः' पद हुआ, राधा-आम्, 'वामनगोपी राधाभ्यो नुट् आमि' सूत्र से 'नुट्' आगम होकर 'राधानाम्' पद हुआ, राधा-ङि, 'राधातो याप् वृष्णिषु' सूत्र से 'याप्' हुआ, 'नोराधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से ङि के स्थान में आम हुआ, यह 'आम्' लाक्षणिक होने के कारण 'नुट्' न होकर 'राधायाम्' पद सिद्ध हुआ ।

पूर्ववत् राधा-ओस्-राधयोः, राधा-सुप्-राधासु, सम्बोधन में राधा-सुँ, 'राधाया ए टौसोर्बुद्धेच' सूत्र से राधा शब्द के अन्त में स्थित आराम के स्थान में एराम होने पर 'ए ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' सूत्र से बुद्ध का अदर्शन होने पर 'हे राधे' पद हुआ, इसी प्रकार रमा, रामा, श्रद्धा, अम्बादिका रूप भी होगा ॥५६॥

अम्बादीनां गोप्याश्च वामनो बुद्धे ॥६०॥

हे अम्ब ।

बुद्ध परे रहने से अम्बादि शब्द एवं गोपी संज्ञक शब्द के अन्त में स्थित त्रिविक्रम वामन होता है ।

बुद्ध परे रहने से अम्बा शब्द के 'आराम' वामन-अराम होकर हे अम्ब पद हुआ ॥६०॥

जराया जरस् वा सर्व्वेश्वरे ॥६१॥

जरा, जरसौ, जरे, जरसः जराः । जरसं, जरामित्यादि, एवं निर्जर शब्दोऽपि विकल्पते ।

सर्वेश्वर परे में रहने से जराशब्द के स्थान में विकल्प में जरस् आदश होता है । जरा-सुँ, 'राधाविष्णुजनाभ्यां' सूत्र से 'सुँ' का हर होने से 'जरा' पद सिद्ध हुआ, जरा-औ, उक्त सूत्र से जरा शब्द के स्थान में 'जरस्' आदेश होने से विकल्प में 'जरसौ' पद हुआ, जरस् आदेश न होने से 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' सूत्र से 'ई' अनन्तर 'अद्वयमिद्वये ए' सूत्र से आराम ईराम मिलकर एराम होने से 'जरे' पद हुआ । जरा-जस्, जरस् आदेश पक्ष में स्‌राम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'जरसः' पद हुआ, अनादेश पक्ष में राधा शब्दवत् 'जराः' पद हुआ । जरा-अम्, जरसम्, जराम्, पद हुआ, इस प्रकार अरामान्त निर्जर शब्द के जरा भाग में भी विकल्प में 'जरस्' आदेश होता है ॥६१॥

इ रामान्तो भक्तिशब्दः, पाण्डवेषु हरिशब्दवत् । शसि-भक्तीः, भक्त्या, इत्यादि ।

हरित आप् वा वृष्णिषु लक्ष्म्यां, नित्यं गोप्याः ॥६२॥

भक्त्यै, भक्तये, भक्त्याम्, भक्तेः, भक्त्याः, भक्तेः, भक्त्योः, भक्तीनाम्, भक्त्याम्, भक्तौ, भक्त्योः, भक्तिषु, हे भक्ते !

एवं बुद्धि-मति-धृति-प्रभृतयः ।

वृष्णि संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से लक्ष्मीलिङ्ग में हरि संज्ञक शब्द के उत्तर में आप विकल्प में होता है, किन्तु गोपी संज्ञक शब्द के उत्तर नित्य आप होता है ।

भक्ति-ङे, 'आप्' होने से, 'ए द्वये ऐ' सूत्र से आप् ङे के सहित मिलित होकर ऐराम हुआ, अनन्तर 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से इराम यराम होकर 'भक्त्यै' पद सिद्ध हुआ । एकबार हरिशब्दवत् भक्तये हुआ । भक्ति-भ्याम्-भक्तिभ्याम्, भक्ति-भ्यस् 'सररामयोर्विष्णुसर्गः' सूत्र से सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'भक्तिभिः' हुआ ।

भक्ति-ङसि, आप्, त्रिविक्रम, विष्णुसर्ग, होकर 'भक्त्याः' पद हुआ, एकबार 'भक्तेः' पद हुआ । भक्ति-ङस्, 'भक्त्याः, भक्तेः' भक्ति-ओस्, 'इद्वयमेव यः' सूत्र से इराम यराम हुआ, अनन्तर 'सररामयोः विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'भक्त्योः' हुआ, भक्ति-आम् भक्तीनाम, भक्ति-ङि, आप् होने से, 'नी राधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से आम् हुआ, एवं 'भक्त्याम्' हुआ, एकबार हरिशब्दवत् 'भक्तौ' हुआ, भक्ति-ओस् षष्ठी के द्विवचन के समान रूप 'भक्त्योः' हुआ, भक्ति-सुप् 'ईश्वर हरिमित्र' सूत्र से सुप् का षु होने से 'भक्तिषु' पद हुआ, सम्बोधन में भक्ति-सुँ, हरिशब्दवत् 'हे भक्ते' पद हुआ । इस प्रकार पद बुद्धि-मति-धृति प्रभृति का होगा ।

अथ धेनु-शब्दः—

धेनुः, धेनू, धेनवः, धेनुम, धेनूः इत्यादि। वृष्णिषु वा-धेन्वै धेनवे। धेन्वाः, धेनोः, धेन्वाम् धेनौ, हे धेनो!।

धेनु-सुँ, विष्णुशब्दवत् 'धेनुः' धेनु-औ, विष्णुशब्दवत् 'धेनू' धेनु-जस्, 'धेनवः' धेनु-अम्, 'धेनुम' धेनु-औ, 'धेनू' धेनु-शस्, 'दशावताराद‌म्शसोररामहरः' सूत्र से अराम हर, 'दशावतारस्य त्रिविक्रमः शसि तस्मात् सोनः पुंसि' सूत्र से उराम का त्रिविक्रम, किन्तु लक्ष्मी लिङ्ग हेतु 'शस्' का सराम, नराम नहीं हुआ, इस प्रकार 'धेनूः' पद हुआ।

वृष्णि संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से धेनु शब्द के उत्तर आप् विकल्प में होगा, आप होने से धेनु-ङे, 'एद्वये ऐ, उद्वयं वः' सूत्र से 'ऐ व' होकर 'धेन्वै' पद हुआ। एकबार विष्णुशब्दवत् 'धेनवे' हुआ। धेनु-ङसि, आप्, 'दशावतार एकात्मके मिलित्वा त्रिविक्रमः' सूत्र से आप् एकात्मक के सहित मिलित होकर त्रिविक्रम हुआ, अनन्तर 'सररामयोः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'धेन्वाः' पद हुआ, एकबार विष्णुशब्दवत् 'धेनोः' पद हुआ, धेनु-ङि, आप् होने से 'नीराधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से ङि के स्थान में आम् होकर 'धेन्वाम्' पद हुआ, एकबार विष्णुशब्दवत् 'धेनौ' पद हुआ। सम्बोधन में विष्णुशब्दवत् 'हे धेनो!' पद हुआ ।।६२।।

लक्ष्मीस्थयोस्त्रिचतुरोस्तिसृ-चतसृ विष्णुभक्तौ ।।६३।।

विष्णुभक्ति परे रहने से लक्ष्मी संज्ञक त्रिशब्द-तिसृ एवं चतुरशब्द-चतसृ होता है ।।६३।।

तिसृ-चतस्रो रः सर्व्वेश्वरे ।।६४।।

तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृणां, तिसृषु ।

सर्व्वेश्वर परे रहने से तिसृ एवं चतसृ शब्द के ऋराम का रराम होता है। त्रि-जस् तिसृ, 'र' विष्णुसर्ग होकर 'तिस्रः' पद हुआ, त्रि-शस् 'तिस्रः' त्रि-भिस् तिसृ आदेश, विष्णुसर्ग 'तिसृभिः' पद हुआ। त्रि-भ्यस् 'तिसृभ्यः' त्रि-भ्यस् तिसृभ्यः'। त्रि-आम्, तिसृ आदेश, वामनस्य त्रिविक्रमोनामि-नतु तिसृ चतस्रो.' 'वामन-गोपी राधाभ्योनुट् आमि' 'तिसृणाम्' पद हुआ। त्रि-सुप्, तिसृ आदेश, 'ईश्वर हरिमित्र, सूत्र से सुप का षत्व होने से 'तिसृषु' पद हुआ ।।६४।।

ई रामान्तो गोपीशब्दः—

ई-ऊ-लक्ष्मी गोपी-संज्ञा ।।६५।।

नदी-संज्ञा च। गोपी, गोप्यौ, गोप्यः, गोपीम्, गोप्यौ, गोपीः, गोप्या, गोपीभ्यामित्यादि, ङौ-गोप्याम् हे गोपि ! एवं नदी-मही-प्रभृतयः, सखी च, सखी, सख्यौ, सख्यः, ङौ-सख्याम्। त्रिविक्रमान्न सो हरः–अतिगोपिः ।।६५।।

अवि-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-ह्री-धी-श्रीणामुणादिना ।

शब्दानान्तु भवत्येषां सुलोपो न कदाचन ।।६६।।

लक्ष्मीः, लक्ष्म्यौ, लक्ष्म्यः, लक्ष्मीमित्यादि गोपीवत् ।

ईरामान्त गोपीशब्द, 'ईप्' लक्ष्मी विहित प्रत्यय है। ईरामान्त एवं ऊरामान्त लक्ष्मी संज्ञक शब्द गोपी संज्ञक होते हैं, प्राचीन के मत में नदी संज्ञक है।

गोपी-सुँ, 'राधाविष्णुजनाभ्यामित्यादि' सूत्र से 'सुँ' का हर होने पर 'गोपी' पद सिद्ध हुआ, गोपी-औ, 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से ईराम यराम होने पर 'गोप्यौ' पद हुआ।

गोपी-जस्, 'इद्वयमेव यः सर्वेश्वरे' 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से यराम एवं विष्णुसर्ग होकर 'गोप्यः' पद हुआ। गोपी-अम्, 'दशावताराद‌मृशसोरराम हरः' सूत्र से अराम हर होने से गोपीम् पद हुआ। गोपी-औ, प्रथमा के औप्रत्ययान्तवत् 'गोप्यौ' पद हुआ। गोपी-शस्, 'दशावताराद‌मृशसोरराम हरः' सूत्र से अराम होने से 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से सराम विष्णुसर्ग होने से 'गोपीः' पद हुआ।

गोपी-टा, 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से ईराम यराम होने से 'गोप्या' पद हुआ। गोपी-भ्याम्, गोपीभ्याम्, गोपी-ङि, 'हरित आप वा वृष्णिषु लक्ष्म्यां, नित्यं गोप्याः' सूत्र से आप् होने के पश्चात् 'नीराधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से ङि के स्थान में आम् होने से 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से ईराम यराम होने से 'गोप्याम्' पद हुआ।

सम्बोधन में 'गोपी-सु' 'अम्बादीनां गोप्याश्च वामनो बुद्धे' सूत्र से ईराम वामन होने पर 'ए ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' सूत्र के द्वारा बुद्ध का अदर्शन होकर हे 'गोपि' पद सिद्ध हुआ। इसी प्रकार नदी-मही-प्रभृति का भी रूप होगा। सखी शब्द का रूप इस प्रकार होगा, सखी-सु, 'राधाविष्णुजनाभ्याभीपश्च त्रिविक्रमात्सार्हरः' सूत्र से 'सु' का हर होने से सखी, पद हुआ, सखी-औ, 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से ईराम यराम होकर विष्णुभक्ति प्रवेश से 'सख्यौ' पद हुआ। सखी-जस् 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से यराम, एवं सररामयो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'सख्यः' पद हुआ, सखी-ङि, 'हरित आप् वा वृष्णिषु लक्ष्म्यां, नित्यं गोप्याः' सूत्र से आप्, यराम, एवं 'नीराधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से 'आम्' होकर 'सख्याम्' पद हुआ। अतिगोपि-सु, 'सररामयो विष्णुसर्गो विष्णु-पदान्ते', सूत्र से सराम, विष्णुसर्ग होने से 'अतिगोपिः' पद हुआ।

अवीशब्द, तन्त्रीशब्द, तरीशब्द, लक्ष्मीशब्द, ह्रीशब्द, धीशब्द, एवं श्रीशब्द, उणादि प्रत्यय सिद्ध हैं, अतः 'ईप्' प्रत्ययान्त न होने के कारण इन सबके उत्तर प्रथमा के एकवचन में स्थित 'सुँ' का लोप कभी भी नहीं होगा। लक्ष्मी-सुँ, 'सररामयो र्विष्णुसर्गः' सूत्र से सराम विष्णुसर्ग होने से 'लक्ष्मीः', पद हुआ। लक्ष्मी-औ, 'इद्वयमेव यः सर्व्वेश्वरे' सूत्र से 'ईराम' 'यराम' होकर विष्णुभक्ति मिलन से 'लक्ष्म्यौ' पद हुआ। लक्ष्मी-जस्, यराम, विष्णुसर्ग होकर 'लक्ष्म्यः' पद हुआ, लक्ष्मी-अम्, अराम हर होने से 'लक्ष्मीम्' पद हुआ, इस प्रकार गोपीशब्दवत् अवशिष्ट पद होगा ॥६५॥

स्त्री-शब्द, ईवन्तोऽतः सोर्हरः-स्त्री, 'स्त्री' शब्द गौरादित्व प्रयुक्त ईप् प्रत्ययान्त है, अतएव इसके उत्तर 'सुँ' राम का हर होगा। स्त्री-सुँ, 'राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सो हरः' सूत्र से 'सुँ' राम का हर होने से 'स्त्री' पद हुआ।

स्त्री-भ्रुवोरियुवौ सर्व्वेश्वरे, स्त्रिया अम् शसोर्व्वा ॥६६॥

स्त्रियौ, स्त्रियः स्त्रियाम्, स्त्रीम्, स्त्रियौ, स्त्रियः, स्त्रीः,
स्त्रिया, स्त्रीभ्याम्, स्त्रीभिः, स्त्रियै, स्त्रीभ्यां, स्त्रीभ्यः,
स्त्रियाः, स्त्रीभ्यां, स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः, स्त्रियोः, स्त्रीणाम्,
स्त्रियाम्, स्त्रियोः, स्त्रीषु, हे स्त्रि ! ।

सर्व्वेश्वर परे रहने से स्त्री शब्द का अन्त्य सर्वेश्वर 'इय्' होता है, एवं 'भ्रू' शब्द का अन्त्य सर्वेश्वर 'उव्' होता है, किन्तु 'अम् एवं शस्' परे रहने से स्त्रीशब्द का ईराम विकल्प में 'इय्' होता है। स्त्री-औ-स्त्रियौ, स्त्री-जस् स्त्रियः, स्त्री-अम्-स्त्रियम्, स्त्रीम्, स्त्री-औ-स्त्रियौ, स्त्री-शस्-स्त्रियः, स्त्रीः, स्त्री-टा-स्त्रिया, स्त्री-भ्याम्, स्त्रीभ्याम्, स्त्री-भ्यस्-स्त्रीभिः, स्त्री-ङे-स्त्रियै, स्त्री-भ्याम्-स्त्रीभ्याम्,

स्त्री-भ्यस्-स्त्रीभ्यः, स्त्री-ङसि-स्त्रियाः, स्त्री-भ्याम्-स्त्रिभ्याम्, स्त्री-भ्यस्-स्त्रीभ्यः, स्त्री-ङस्-स्त्रियाः, स्त्री-ओस्-स्त्रियोः, स्त्री-आम्-स्त्रीणाम्, स्त्री-ङि-स्त्रियाम्, स्त्री-ओस्-स्त्रियोः, स्त्री-सुप्-स्त्रीषु, हे स्त्रि ! ॥६६॥

श्रीशब्दः—श्रीः, श्रियौ, श्रियः, श्रियम्, श्रियौ, श्रियः ।

नेयुव स्थानं गोपी, स्त्रियं विना, वृष्णिण्व्यामि च वा ॥६७॥

श्रियै श्रिये, श्रीभ्यां, श्रीभ्यः, श्रियाः, श्रियः, श्रियाः, श्रियः, श्रियोः, श्रीणाम्, श्रियाम्, श्रियां, श्रियि, श्रियोः, श्रीषु, हे श्रीः, एवं भ्रू-धी प्रभृतयः, भ्रूः, भ्रुवौ, भ्रुवः, भ्रुवमित्यादि ।

प्रकृष्टा धी प्रधीः, प्रधियौ, प्रधियः, ङे-प्रधियै, प्रधिये, प्रधीभ्यामित्यादि ।

वधू प्रभृतीनां लक्ष्मी-शब्दवत्-वधूः, वध्वौ, वध्वः, हे वधु ! मातृशब्दः, पितृशब्दवत्, शसितु मातॄः ।

रै-शब्दः, स्त्रियामपीति क्षीरस्वामी, तेन पूर्ववत् । गो-शब्दः पूर्ववत्, द्यो-शब्दो गोवत्, नौ-शब्दो ग्लौवत् ॥६७॥

जिस शब्द के अन्त्य सर्वेश्वर के स्थान में इय्, उव्, होता है, उसकी गोपी संज्ञा नहीं होती है, किन्तु वृष्णि एवं आम् में विकल्प में गोपी संज्ञा होती है ।

श्री-ङे, श्रीशब्द गोपी संज्ञक होने से 'हरित आप् वा' सूत्र से आप् होने पर 'धातोरोदूनोरिति' सूत्र से ईराम 'इय्' हुआ, एवं 'एद्वये ऐ' सूत्र से आप् का आ, एवं ङे का ए मिलकर ऐराम होने से 'श्रियै' पद हुआ, गोपी संज्ञक न होने से श्रीशब्द के उत्तर आप् नहीं हुआ, किन्तु 'धातोरोदूनो' सूत्र से ईराम इय् होने से 'श्रिये' पद हुआ ।

श्री-भ्याम्, 'श्रीभ्याम्', श्रीभ्यस्, 'सररामयोः' सूत्र से सराम विष्णुसर्ग होने से 'श्रीभ्यः' पद हुआ।

श्री-ङसि, गोपी संज्ञा, आप्, इय्, त्रिविक्रम, विष्णुसर्ग होकर 'श्रियाः' पद सिद्ध हुआ, पक्ष में ईराम-इय्, विष्णुसर्ग, होकर 'श्रियः' पद हुआ, श्री-ङस्-'श्रियाः', 'श्रियः' श्री-ओस्-श्रियोः, श्री-आम् गोपी संज्ञा, नुट् रष ऋद्वयेभ्यो सूत्रसे नराम का णत्व होने से 'श्रीणाम्' पद हुआ। पक्ष में 'धातोरोदूतो' सूत्र से श्री का ईराम इय् होने से 'श्रियाम्' पद हुआ। रिश्री-ङि-गोपी संज्ञ, आप्, इय्, 'नीराधाभ्यां ङेराम्' सूत्र से ङि के स्थान में आम् होकर 'श्रियाम्' पद हुआ, पक्ष में– इय् होकर 'श्रियि' पद हुआ। श्री-ओस्-इप्, विष्णुसर्ग, श्रियाः, श्री-सूप्–स्-ष होकर 'श्रीषु' पद हुआ।

सम्बोधन में– श्री-सुँ 'सररामयोः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'हे श्रीः' पद हुआ।

इस प्रकार भ्रू-धी-प्रभृति का भी रूप होगा। भ्रूः, भ्रुवौ, भ्रुवः, भ्रुवम्, बुद्ध में मतान्तर में वामन होता है, हे सुभ्रु !

'प्रकृष्टा धी' इस अर्थ में धी शब्द का पश्चात् याग से 'प्रधी' निष्पन्न होने से उसका रूप इस प्रकार होगा। प्रधी-सुँ, 'सुँ' के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'श्रीः' शब्दवत् 'प्रधीः' पद निष्पन्न हुआ। प्रधी-औ, 'श्रियौ' के समान 'प्रधियौ' हुआ, प्रधी-जस्, 'श्रियः' के समान 'प्रधियः' पद हुआ, प्रधी-ङे, श्रीशब्दवत् एकबार 'प्रधियै' एकबार 'प्रधिये' पद हुआ, प्रधी-भ्याम्-प्रधीभ्याम्, 'बधू' प्रभृति शब्द का रूप लक्ष्मीवत् होगा। बधू-सुँ, 'सररामयो विष्णुसर्गः' सूत्र से विष्णुसर्ग होने से 'बधूः' पद हुआ। बधु-औ, 'उद्वयं वः' सूत्र से ऊराम वराम होने से 'बध्वौ' पद हुआ, बधू-जस्, 'उद्वयं वः' सूत्र से ऊराम वराम होने से 'सररामयोः' सूत्र से विष्णुसर्ग होकर 'बध्वः' पद हुआ।

सम्बोधन में– हे बधू-सुँ, 'अम्बादीनां गोप्याश्च वामनो बुद्धे' सूत्र से ऊराम वामन होने से 'ए ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' सूत्र से बुद्ध का अदर्शन होने से 'हे बधु !' पद हुआ। मातृशब्द का, रूप, पितृ शब्द के समान होगा, मातृ-शस् पितृशब्द के समान सराम के स्थान में नराम न होकर 'सररामयो विष्णुसर्गः' होने से 'मातॄः' पद हुआ।

क्षीरस्वामी के मत में लक्ष्मीलिङ्ग में भी 'रै' शब्द होता है। अतएव इसका रूप पुरुषोत्तम लिङ्गस्थ 'रै' शब्द के समान ही होगा। गोशब्द-पूर्वोक्त पुरुषोत्तम लिङ्ग के 'गो' शब्द के समान होगा। द्यो-शब्द का रूप पूर्वोक्त गोशब्द के तुल्य होगा। नौ-शब्द का रूप पूर्वोक्त ग्लौ-शब्द के समान होगा ॥६७॥

॥ इति सर्व्वेश्वरान्ता लक्ष्मी लिङ्गाः ॥

* * *

अथ सर्वेश्वरान्ता ब्रह्म लिङ्गाः

तत्र गोकुल-शब्दः—

ब्रह्मकृष्णात् सोरम् ॥६८॥

'दशावतारादम्शसोररामहरः' गोकुलम्, गोकुले ।

अनन्तर सर्वेश्वरान्त ब्रह्मलिङ्ग का वर्णन करते हैं—

उसके मध्य में—अरामान्त गोकुल शब्द का रूप इस प्रकार है—

ब्रह्म कृष्ण संज्ञक शब्द के उत्तर 'सुँ' के स्थान में 'अम्' होता है। गोकुल-सुँ, 'सुँ' के स्थान में 'अम्' होने से 'दशावतारादम्शसोररामहरः' सूत्र से अम् का अराम हर होने से 'गोकुलम्' पद हुआ।

गोकुल-औ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' सूत्र से औराम ईराम होने से से 'अद्वयमिद्वये ए' सूत्र से अराम-ईराम मिलित होकर एराम हुआ, अनन्तर 'गोकुले' पद सिद्ध हुआ ॥६८॥

ब्रह्मतो जस शसोः शिः ॥६९॥

श् इत् । शिदादेशः सर्व्वस्य भवति ।

ब्रह्म संज्ञक शब्द के उत्तर 'जस्' एवं 'शस्' के स्थान में 'शि' होता है। 'शि' का शराम इत होता है, 'इ' राम रहता है, यह एकदेश में न होकर शित् आदेश जस्-शस् के समस्त वर्ण के स्थान में ही होगा ॥६९॥

सर्व्वेश्वर वैष्णवान्तयोर्नुम् शौ ॥७०॥

उमावितौ ।

सर्व्वेश्वरान्त एवं वैष्णवान्त-ब्रह्म संज्ञक शब्द के उत्तर 'नुम्' होता है। 'नुम्' का 'उम्' इत् होता है 'न्' राम रहता है ॥७०॥

अन्त्य सर्व्वेश्वरात् परं मितः स्थानम् ॥७१॥

अन्त्य सर्व्वेश्वर के पश्चात् 'मित्' का स्थान होता है ॥७१॥

अन्त्यात् पूर्व्वं वर्ण उद्धव-संज्ञः ॥७२॥

'उपधा' इति प्राञ्चः ।

अन्त्यवर्ण के पूर्व्ववर्ण उद्धव संज्ञक होता है, प्राचीनगण इसको 'उपधा' कहते हैं ॥७२॥

अब्रह्म-पाण्डवाः शिश्च कृष्ण स्थान-संज्ञाः ॥७३॥

घुटश्च ।

पुरुषोत्तम एवं लक्ष्मी संज्ञक शब्द के उत्तर में स्थित पाण्डव प्रत्यय एवं ब्रह्म संज्ञक शब्द के पश्चात् स्थित 'शि' का नाम 'कृष्णस्थान' है, इसको 'घुट्' कहते हैं ॥७३॥

नान्तधातुर्वर्ज्जितसान्तसत्सङ्गमहदपामुद्धवस्य,
त्रिविक्रमः कृष्णस्थाने, बुद्धं विना ॥७४॥

गोकुलानि एवं द्वितीयाम्, तृतीयादौ पुरुषोत्तमवत्, हे गोकुल !

एवं कुलफल-मूलादयः ।

बुद्ध भिन्न उक्त कृष्ण स्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहने से, नान्तशब्द, धातुर्वर्ज्जित सान्त सत्सङ्ग, महत् एवं अप् शब्द के उद्धव का त्रिविक्रम होता है ।

गोकुल-जस् 'ब्रह्मतो जस् शसोः शिः' सूत्र से जस् के स्थान में 'शि' होने पर 'सर्वेश्वर वैष्णवान्तयोर्नुम शौ, सूत्र से नुम् हुआ, अनन्तर 'नान्त धातुवर्जित' सूत्र से गोकुल शब्द के अराम का त्रिविक्रम होने से 'गोकुलानि' पद हुआ ।

प्रथमा के समान द्वितीया में भी पद होगा, तृतीयादि में पुरुषोत्तम संज्ञक शब्द के तुल्य रूप होगा । सम्बोधन में– गोकुल-सुँ, 'ब्रह्म कृष्णात् सोरम्' सूत्र से सुँ के स्थान में अम् हुआ, बुद्धस्थानीय अम् भी बुद्ध संज्ञक है, अतएव 'ए ओ वामनेभ्यो बुद्धस्यादर्शनम्' सूत्र से बुद्ध का अदर्शन होकर 'हे गोकुल !' पद हुआ । इसी प्रकार कुल-फल-मूल प्रभृति शब्द का रूप होगा ॥७४॥

हृदयस्य हृद् यद्वुषु वा, शीर्षस्य शीर्षन् वा ॥७५॥

यथा–हृन्दि, हृदियानि, हृदा हृदयेन, हृद्भ्यां हृदयाभ्यामित्यादि।
'जरया जरस् वा' निर्जरं निर्जरसं, निर्जरे निर्जरसी।

यदु संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से हृदयशब्द के स्थान में हृद् एवं शीर्ष शब्द के स्थान में विकल्प में शीर्षन् होता है।

हृदय-जस्, हृद् आदेश होने से 'ब्रह्मतोजस् शसोः शिः' सूत्र से जस् के स्थान में शि होने से 'सर्वेश्वर वैष्णवान्तयोर्नुम् शौ' सूत्र से नुम् होकर 'हृन्दि' पद हुआ। पक्षान्तर में गोकुलानि शब्दवत् 'हृदयानि' पद हुआ। हृदय-टा, हृद् आदेश होने पर हृदा, पक्ष में कृष्णशब्दवत् 'हृदयेन' हुआ, हृदय–भ्याम्–हृदयाभ्याम्। जरा–अम्–निर्जरसम्, निर्जरसम्, जरा-औ, निर्जरे, निर्जरसी, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' सूत्र से हुआ। शीर्ष-जस्-शीर्षन् आदेश होने से 'नान्त' सूत्र से अराम का त्रिविक्रम होने पर 'रषऋद्वयेभ्योनस्य णः' सूत्र से 'न' ण होकर 'शीर्षाणि' पद हुआ। आदेश अनादेश पक्ष में समान पद शीर्षाणि' है ॥७५॥

अविष्णुपदान्तस्य नस्य मस्य च विष्णुचक्रं वैष्णवे ॥७६॥

निर्जराणि, निर्जरांसि, पुनस्तद्वत। बुद्धे-हे निर्जर!
हे निर्जरसमित्यपि।

वैष्णव संज्ञक विष्णुजन परे रहने से अविष्णुपद के अन्तस्थित नराम एवं मराम के स्थान में विष्णुचक्र होता है।

निर्जर-जस्, 'गोकुलानि पद के समान 'निर्जरानि' होकर 'रषऋद्वयेभ्यो' सूत्र के द्वारा नराम का णत्व होने से 'निर्जराणि' पद होता है। पक्ष में निर्जर-जस्, 'ब्रह्मतो जस्शसोः शिः' 'जराया जरस् वा सर्व्वेश्वरे' 'सर्वेश्वर–वैष्णवान्तयोर्नुम् शौ' 'नान्त धातु वर्जितस्य' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम, 'अविष्णुपदान्तस्य नस्य मस्य च विष्णुचक्रं वैष्णवे' सूत्र से नराम के स्थान में विष्णुचक्र होने से

'निर्जरांसि' पद हुआ। द्वितीया में भी प्रथमा के तुल्य रूप होगा।

सम्बोधन में– हे निर्जर-सुँ, 'हे गोकुल' पद के समान पद होगा, हे निर्जर ! मतान्तर में, 'हे निर्जरसम्' पद भी होता है ॥७६॥

इ रामान्तो दधिशब्दः—

ब्रह्मतो स्वमोर्महाहरः ॥७७॥

दधि।

ब्रह्म संज्ञक शब्द के उत्तर 'सुँ' एवं 'अम्' का महाहर होता है। दधि-सुँ, उक्त सूत्र से सुँ का महाहर होने से 'हे दधि' पद हुआ ॥७७

ब्रह्मेशान्तान्नुक् सर्व्वेश्वरे न त्वामि ॥७८॥

उकावितौ, दधिनी, दधीनि, पुनस्तद्वत्।

आम् भिन्न सर्व्वेश्वरादि विष्णुभक्ति होने पर ब्रह्म संज्ञक ईशान्त शब्द के पश्चात् नुक् होता है, उस नुक् का उक् इत् होता है, नराम रहता है। दधि-औ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' सूत्र से औ ई हुआ, ७८ सूत्र से दधि शब्द के उत्तर 'नुक्' होने पर 'दधिनी' पद हुआ, दधि-जस्, 'ब्रह्मतो जस् शसोः शिः' सूत्र से जस् के स्थान में शि, एवं ७७ सूत्र से नुक् होने से 'नान्त धातु वर्जित' सूत्र से इराम का त्रिविक्रम होकर 'दधीनि' पद हुआ। द्वितीया में भी इस प्रकार रूप होगा ॥७८॥

दधि-अस्थि-सक्थि-अक्षिशब्दानामिरामस्य अन्
टादि-सर्व्वेश्वरे ॥७९॥

टादि सर्व्वेश्वर परे रहने से दधि, अस्थि, सक्थि, एवं अक्षि शब्द के इराम के स्थान में अन् होगा ॥७९॥

अकृष्ण स्थान-सर्व्वेश्वरो भगवत्-संज्ञः, तद्धिते-यश्च ॥८०॥

कृष्ण स्थान भिन्न समस्त सर्व्वेश्वर वर्ण का नाम भगवत् है। एवं तद्धित संज्ञक 'य' राम का भी भगवत् नाम होता है ॥८०॥

व-म-संतसङ्गहीनस्यानो ऽ रामहरो भगवति, नतु ये, ईङ्चोस्तु वा ॥८१॥

दध्ना, दधिभ्यामित्यादि, ङौ—दध्नि, दधनि ।

यराम भिन्न भगवत् संज्ञक प्रत्यय परे होने से व-म-सनसङ्गहीन शब्द के अम् भाग के अराम हर होता है, किन्तु ई-ङि परे रहने से अम् का अराम का हर विकल्प में होता है ।

दधि-टा, 'दधि-अस्थि' सूत्र से इराम के स्थान में अन् हुआ, ८१ सूत्र से अन् भाग के आराम होने से 'दध्ना' पद हुआ ।

दधि-भ्याम्, 'दधिभ्याम्' पद हुआ । दधि-ङि ७९ सूत्र से इराम के स्थान में अन् हुआ, ८१ सूत्र से अन् का अराम हर होकर 'दध्नि' पद हुआ, एकबार अन् के अराम का हर न होने से 'दधिनी' पद हुआ ॥८१॥

ब्रह्मणो गोविन्दो वा बुद्धे ॥८२॥

हे दधे, हे दधि ! एवं वारि, वारिणी, वारीणि ।

बुद्ध परे रहने से ब्रह्म संज्ञक शब्द का विकल्प में गोविन्द होता है, हे दधि-सुँ, एकबार दधि शब्द का गोविन्द होने से 'हे दधे' पद हुआ, एकबार गोविन्द न होकर 'ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहर होने से 'हे दधि' पद हुआ । इस प्रकार वारि शब्द का रूप भी होता है ।

वारि-सुँ 'ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहर होने से 'वारि' पद हुआ, वारि-औ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' सूत्र से औ ईराम होने से, 'ब्रह्मे शान्तान्तुक् सर्व्वेश्वरे नत्वामि' सूत्र से 'नुक्' होने से 'रष ऋद्वयेभ्यो' सूत्र से णत्व होने से 'वारिणी' पद हुआ ।

वारि-जस्, 'ब्रह्मतो जस् शसोः शिः' सूत्र से जस् के स्थान में 'शि' हुआ, 'ब्रह्मे शान्तान्तुक्' सूत्र से 'नुक्' 'नान्त धातुवर्जित सान्त' सूत्र से इराम का त्रिविक्रम, 'रष ऋद्वयेभ्यो' सूत्र से णत्व होकर 'वारिणी' पद हुआ ॥८२॥

ब्रह्मान्त-त्रिविक्रमस्य वामनः ॥८३॥

विश्वनि, विश्वनिनो, विश्वनोनि, पुरुषोत्तमवद्वा टादिसर्व्वेश्वरे
विश्वन्या, विश्वनिना, आमि-विश्वन्याम्, विश्वनीनाम् ।

ब्रह्म संज्ञक शब्द के अन्तस्थ त्रिविक्रम के स्थान में वामन होता है। विश्वनी-सुँ, ईराम वामन इराम होने पर 'ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहरे होने से 'विश्वनि' पद हुआ।

विश्वनी-औ, उक्त सूत्र से ईराम वामन उराम होकर 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई:' सूत्र से औ-ई होने से 'ब्रह्मेशान्तान्नुक्' सूत्र से विश्वनि शब्द के उत्तर नुक् होकर 'विश्वनिनी पद हुआ।

विश्वनी-जस्, ईराम का वामन-इराम होने पर 'ब्रह्मतो जस् शसोः शिः' सूत्र से 'शि' हुआ, अनन्तर 'ब्रह्मेशान्तान्नुक् सर्वेश्वरे' सूत्र से नुक् होने पर 'नान्त धातुर्वजितस्य' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम होने से 'विश्वनोनि' पद हुआ।

टादि सर्व्वेश्वर परे रहने से जो ईशान्त ब्रह्म संज्ञक शब्द, समानार्थ हेतु पुरुषोतमता होती है, वह विकल्प में पुरुषोत्तमवत् होता है, विश्वनी-टा, पुरुषोतमवत् होने से 'सहजानेक सर्व्वेश्वरस्य' सूत्र से ईराम यराम होने से 'विश्वन्या' पद हुआ, पुरुषोत्तमवत् न होने से, वामन, एवं नुक् होकर 'विश्वनिना' पद होता है।

विश्वनी-आम्, पुरुषोत्तमवत् होने से विश्वन्याम्, पुरुषोत्तमवत् न होने से, वामन, नुट्, त्रिविक्रम, होकर 'विश्वनीनाम्' पद हुआ है ॥८३॥

ए-ऐ स्थाने इरामः, ओ-औस्थाने उरामो वामनः स्यात् ।।८४

कृष्णरि, कृष्णरिणी, कृष्णरीणि । कृष्णराया, कृष्णरिणा, कृष्णराभ्यामित्यादि । कृष्णरायाम्, कृष्णरीणामित्यादि ।

'सुद्यो' शब्दः–सुद्यु, सुद्युनी, सुद्यूनि, टादौ-सुद्यवा, सुद्युना, हे सुद्यो, हे सुद्यु ! कर्त्तृ शब्दः–कर्त्तृ, कर्त्तृणी, कर्त्तृणि, टादौ-कर्त्रा, कर्त्तृणा, कर्त्तृभ्यामित्यादि । एवं प्रिय क्रोष्टु, प्रिय क्रोष्टुनी, प्रिय क्रोष्टूनि इत्यादि ।प्रिय तिसृ, प्रिय तिसृणी, प्रियतिसृणि, प्रियतिस्रा, प्रियतिसृणा । ङसि ङसोः-प्रियतिस्रः, एवं प्रियचतसृ, सान्वादि शब्दानां स्वत एव द्विलिङ्गता-सानुने, सानवे, 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियौ' इत्यमरः । 'मधु' शब्दानन्तरम्, एवम् 'अम्बु-सान्वादयः' इति प्रक्रिया तु चिन्त्या ।।८४।।

कृष्णरै-शब्द का ऐराम वामन होने से इराम होता है, एराम एवं ऐराम, उभय का वामन होने से इराम होता है, और ओ औ का वामन होने से उराम होता है ।

कृष्णरै–सुँ, ऐराम वामन होकर इराम हुआ, अनन्तर 'ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहर होने से 'कृष्णरि' पद हुआ । कृष्णरै-औ, ऐ-राम वामन, इराम हुआ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ईः' सूत्र से ईराम हुआ, अनन्तर 'ब्रह्मशान्तान्नुक्' सूत्र से नुक् एवं 'रष' सूत्र से णत्व होकर 'कृष्णरिणी' पद हुआ ।

कृष्णरै-जस् वामन, शि, नुक्, त्रिविक्रम, णत्व, होकर कृष्णरीणि' पद हुआ । कृष्णरै-टा, पुरुषोत्तमवत् होने से 'ऐ आय्' होकर 'कृष्णराया' पुरुषोत्तमवत् न होने से वामन, नुक्, णत्व होकर 'कृष्णरिणा' पद हुआ ।

कृष्णरै-भ्याम्, वामन, 'राय आ, सभोः, सूत्र से ऐ के स्थान में आ होने से 'कृष्णराभ्याम्' पद हुआ ।

कृष्णरै-आम्-पुरुषोत्तमवत् होने से 'ऐ आय्' होकर 'कृष्णरायाम्' पद हुआ । पुरुषोत्तमवत् न होने से वामन होकर 'कृष्णरि' हुआ ।

'वामन गोपी' सूत्र से 'नुट्' हुआ, त्रिविक्रम, णत्व, होकर 'कृष्णरीणाम्' पद हुआ।

'सुद्यो' शब्द, सुद्यो-सुँ, वामन, सु अम् का महाहर, 'सुद्यु' पद हुआ। सुद्यो-औ, वामन, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ईः' 'नुक्' होकर 'सुद्युनी' पद हुआ।

सुद्यो-जस् वामन, शि, नुक, त्रिविक्रम होकर 'सुद्यूनि' पद हुआ। टादि विष्णुभक्ति में, सुद्यो–टा–ओ अव् होने से 'सुद्यवा' पुरुषोत्तमवत् होने से वामन, नुक्, होकर 'सुद्युना' पद हुआ। सम्बोधन में सुद्यो-सुँ, वामन, गोविन्द, बुद्धका अदर्शन होकर 'हे सुद्यो' पद हुआ, गोविन्द न होने से बुद्ध का अदर्शन होकर 'हे सुद्यु' पद हुआ।

कर्त्तृ शब्द, कर्त्तृ-सुँ, सुँ का महाहर होकर 'कर्त्तृ' पद हुआ, कर्त्तृ-औ, 'कर्त्तृणी' कर्त्त-जस् 'कर्त्तृणि' कर्त्तृ-टा 'समानार्थतया' सूत्र से पुरुषोत्तमवत् होने से 'ऋद्वयं रः' सूत्र से ऋराम रराम होकर 'कर्त्रा' पद हुआ। पुरुषोत्तमवत् न होने से 'वारिणा' पद के समान 'कर्त्तृणा' पद हुआ। कर्त्तृ-भ्याम्–कर्त्तृभ्याम्, इस प्रकार प्रियक्रोटु-'सुँ' हर होने से प्रिय क्रोष्टु पद हुआ, प्रिय क्रोष्टु-औ 'मधुनी' पदवत् 'प्रियक्रोष्टुनी' पद हुआ, प्रिय क्रोष्टु-जस् 'मधूनि' वत् 'प्रिय क्रोष्टूनि' पद हुआ।

प्रियत्रि-सुँ, 'वारि' के समान 'प्रियत्रि' पद होता है। काशिकादि के मत में 'प्रियत्रि' शब्द के पश्चात् सुँ का महाहर होने पर भी 'तिसृ' होता है, प्रियत्रि-सुँ, 'ब्रह्मतः स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहर होने पर 'लक्ष्मीस्थयोः' सूत्र से त्रि शब्द के स्थान में तिसृ आदेश होकर 'प्रियतिसृ' पद हुआ है। प्रियत्रि-औ, 'लक्ष्मीस्थयोस्त्रिचतुरोः' सूत्रसे त्रि के स्थान में 'तिसृ' आदेश हुआ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ईः'

सूत्र से औ-ईराम होने से 'ब्रह्मशान्तन्नुक्' सूत्र से 'नुक्' हुआ, अनन्तर 'रषऋद्वयेभ्यो' सूत्र से 'णत्व' होने से 'प्रियतिसृणी' पद हुआ। प्रियत्रि-जस्, 'लक्ष्मीस्थयोः' सूत्र से 'तिसृ', 'ब्रह्मतोजस्शसोः शिः' सूत्र से जस् के स्थान में 'शि' 'ब्रह्मशान्तान्नुक् सर्वेश्वरे' सूत्र से 'नुक्' अनन्तर 'नान्तधातु वर्जितस्य' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम होने से 'रसऋद्वयेभ्यो' सूत्र से 'णत्व' होने पर 'प्रियतिसृणि' पद हुआ। प्रियत्रि-टा, 'लक्ष्मीस्थयोः' सूत्र से 'तिसृ' भाव, 'समानार्थतया' सूत्र से पुरुषोत्तमवत् हुआ, 'ऋद्वयं रः' सूत्र से रराम होने पर 'प्रियतिस्रा' पद हुआ। पुरुषोत्तमवत् न होने से 'ब्रह्मशान्तान्नुक् सर्वेश्वरे' सूत्र से 'नुक्' 'रष ऋद्वयेभ्यो' सूत्रसे णत्व होने से 'प्रियतिसृणा' पद हुआ।

प्रियत्रि-ङसि-ङस्, 'लक्ष्मीस्थयोः' सूत्र से त्रिशब्द का तिसृभाव, 'तिसृचतस्रो रः सर्वेश्वरे' सूत्र से ऋराम के स्थान में रराम हुआ, अनन्तर 'सररामयोः' सूत्र से सराम विष्णुसर्ग होने पर 'प्रियत्रिस्रः' पद हुआ।

इस प्रकार 'प्रियचतसृ' पद भी होगा। प्रिय चतुर-सुँ 'ब्रह्मतो स्वमोर्महाहरः' सूत्र से सुँ का महाहर होने से 'लक्ष्मीस्थयोः' सूत्र से चतुर शब्द के स्थान में 'चतसृ' हुआ. अनन्तर 'प्रियचतसृ' पद हुआ।

सानु प्रभृति शब्द की नित्य ही द्विलिङ्गता है, अर्थात् ब्रह्मत्व, एवं पुरुषोत्तमत्व है, अतएव सानु-ङे, ब्रह्म पक्ष में 'ब्रह्मशान्तान्नुक्-सर्वेश्वरे' सूत्र से नुक् होने पर 'सानुने' पद हुआ, पुरुषोत्तम पक्ष में 'विष्णवे' पदवत् 'सानवे' पद होगा।

'मधु' शब्द के पश्चात् अम्बु एवं सानु प्रभृति शब्द का जानना चाहिए, इस प्रकार प्रक्रिया चिन्तनीय, अर्थात् असङ्गत है ॥८४॥

॥ इति सर्व्वेश्वरान्ता ब्रह्मलिङ्गाः ॥

* * *

अथ विष्णुजनान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः

अथ चरामान्ताः केचन शब्दाः । तत्र प्रत्यच्—

अच श्चतुर्भुजानुबन्धानाञ्च नुम् कृष्णस्थाने ॥८५॥

सोर्हरः ।

अनन्तर विष्णुजनान्त पुरुषोत्तम लिङ्ग का प्रदर्शन करते हैं, विष्णुजनान्त शब्द के मध्य में चरामान्त वाच्यलिङ्ग शब्द है, उसके मध्य में, प्रत्यच् शब्द, प्रतिपूर्व अन्‌च धातु के उत्तर क्विप् प्रत्यय करने पर, क्विप् लोप, एवं नराम का लोप हुआ। उसके पश्चात् 'प्रत्यच्' नाम निष्पन्न होने पर स्वादि प्रत्यय हुआ, अतएव प्रत्यच् सुँ, कृष्ण स्थान परे रहने से अच् के स्थान में एवं चतुर्भुजानुबन्ध के स्थान में नुम् होता है, इस सूत्र से 'नुम्' हुआ, अनन्तर 'राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च' सूत्र से 'सुँ' का हर हुआ ॥८५॥

त वर्गस्य च वर्गश्चवर्गयोगे ॥८६॥

च वर्ग के योग से त वर्ग के स्थान में च वर्ग होता है। इस सूत्र से नराम, ञ राम हुआ ॥८६॥

सत्सङ्गान्तस्य हरो विष्णुपदान्ते ॥८७॥

विष्णुपदान्त में सत्सङ्ग के अन्त्य वर्ण का अर्थात् संयुक्त वर्ण के शेष वर्ण का हर होता है। इस सूत्र से सत्सङ्गान्त चराम का हर हुआ ॥८७॥

च वर्गस्य क वर्गो विष्णुपदान्ते, वैष्णवेत्वसवर्गे ॥८८॥

प्रत्यङ्, प्रत्यङ् ङ् । सवर्गे तु-प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः, प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ ।

असवर्गीय वैष्णव परे रहने से विष्णुजनान्त चवर्ग के स्थान में कवर्ग होता है। इस सूत्र के द्वारा ञराम ङराम होने पर 'प्रत्यङ्' पद हुआ । द्वित्व होने से 'प्रत्यङ् ङ्' होता है ।

पद का विराम होने पर अन्त्य विष्णुजन का विकल्प में द्वित्व होता है। विराम शब्द का अर्थ–परवर्ण का अदर्शन है । इस सूत्र से एकबार 'प्रत्यङ्' पद हुआ ।

सवर्ण परे रहने से चवर्ग-कवर्ग नहीं होगा, उसका उदाहरण–प्रत्यच्-औ, 'प्रत्यञ्चौ' प्रत्यच्-जस्-प्रत्यञ्चः । प्रत्यच्–अम्–प्रत्यञ्चम्, प्रत्यच्-औ-प्रत्यञ्चौ ॥८८॥

अचोऽराम-हरो भगवति, पूर्वस्य त्रिविक्रमः ॥८९॥

भगवत् संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से अच् के अराम का हर होता है, एवं अच् के पूर्व सर्वेश्वर त्रिविक्रम होता है ।

यरामस्य इरामः प्रतीचः, प्रतीचा, प्रत्यग्भ्यामित्यादि । प्राच्-प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्च , प्राञ्चमित्यादि । पित्रच्-पित्रङ्, पित्रञ्चौ, पित्रञ्चः इत्यादि । शसि-पितृ चः, पितृचा, पितृग्भ्यामित्यादि । तिर्य्यच्-तिर्य्यङ्, तिर्य्यञ्चौ, तिर्य्यञ्चः, तिर्य्यञ्चम्, तिर्य्यञ्चौ ।

प्रत्यच्-शस्-अच्का अराम हर हुआ, अनन्तर निमित्त का अभाव से निमित्ताजात कार्य्य का अभाव होता है, इससे यराम इराम होकर त्रिविक्रम हुआ, अनन्तर विष्णुसर्ग होकर 'प्रतीचः' पद हुआ ।

प्रत्यच्-टा, प्रतीचा, प्रत्यच्–भ्याम्–प्रत्यग्भ्याम्, प्राच्–सुँ प्राङ्, प्राच्--औ–प्राञ्चौ, प्राच्--जस्--प्राञ्चः, प्राच्--अम्--प्राञ्चम्, पित्रच्--सुँ--पित्रङ्, पित्रच्--औ--पित्रञ्चौ, पित्रच्--जस्--पित्रञ्चः, पित्रच्--शस्--पितृ चः । पित्रच्-टा-पितृचा, पितृच्-भ्याम्-पितृग्भ्याम्, तिर्य्यंच्-सुँ-त्रिर्य्यङ्, तिर्य्यंच्-औ-तिर्य्यञ्चौ, तिर्य्यच्-जस्-तिर्य्यञ्चः, तिर्य्यंच्-अम्-तिर्य्यञ्चम्, तिर्य्यंच्-औ-तिर्य्यञ्चौ ॥८९॥

तिर्य्यंचस्तिरश्चिरुदच उदीचिर्भगवति ॥९०॥

इरामइत् । तिरश्चः । तिरश्चा, तिर्य्यग्भ्यामित्यादि ।

उदच्-उदङ्, उदञ्चौ, उदञ्चः, उदञ्चमित्यादि ।

भगवत् संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से तिर्य्यंच् शब्द के स्थान में तिरश्चि, एवं उदच् शब्द के स्थान में उदीचि होता है, इकार इत् होता है ।

तिर्य्यच्-शस्, तिरश्चः, तिर्य्यंच्-टा, 'तिरश्चा' तिर्य्यंच्-भ्याम्, तिर्य्यग्भ्याम् । उदच्-सुँ-उदङ्, उदच्-ओ-उदञ्चौ, उदच्-जस्-उदञ्चः, उदच्-अम्-उदञ्चम् ॥९०॥

दैत्य वृश्च्-सोर्हरः—

छ-शो राज्-यज्-भ्राज्-परिव्राज्-सृज्-मृज्-भ्रस्ज्-व्रश्चां च षो, विष्णुपदान्ते, वैष्णवे च ॥९१॥

विष्णुपदान्त में वैष्णव परे रहने से छराम के स्थान में, तालव्य शराम के स्थान में मूर्द्धण्य षराम होता है, एवं राज् यज् भ्राज्, परिव्राज् सृज्, मृज्, भ्रस्ज्, व्रश्च् के अन्त्य वर्ण के स्थान में भी मूर्द्धण्य षराम होता है । इस सूत्र से चराम के स्थान में मूर्द्धण्य षराम हुआ, अनन्तर तालव्य शराम निमित्त चराम अपसारित होने पर, नैमित्तिक तालव्य शराम अपसारित होकर दन्त्य-सराम हुआ ॥९१॥

स्कोः सत्सङ्गाद्योर्हरो विष्णुपदान्ते वैष्णवे च ॥९२॥

विष्णुपदान्त में वैष्णव परे रहने से सत्सङ्ग का आदि वर्ण 'सराम' एवं 'कराम' का हर होता है । इस सूत्र से दन्त्य-सराम का हर हुआ ॥९२॥

तत् पश्चात्—

षस्य डो विष्णुपदान्ते हरिघोषे च ॥६३॥

विष्णुपदान्त में हरिघोष परे रहने से मूर्द्धण्य षराम के स्थान में डराम होता है। इस सूत्र से मूर्द्धण्य षराम के स्थान में डराम हुआ ॥६३॥

विष्णुदासस्य हरिकमलं वा विरामे ॥६४॥

विराम अर्थात् विष्णुपद के अन्त में विष्णुदास के स्थान में विकल्प में हरिकमल होता है। इस सूत्र से डराम के स्थान में टराम हुआ, इससे 'दैत्यवृट्' पद निष्पन्न हुआ। 'ट' राम न होने के पक्ष में 'दैत्यवृड्' हुआ।

दैत्यवृश्चौ, दैत्यवृश्च, दैत्यवृड्भ्यामित्यादि। दैत्यवृट्सु। यदुराज्-यदुराट्-यदुराड्, यदुराजौ, यदुराजः। भ्रस्ज् धातोः क्विप् भृज्ज्-भृट् भृड्, भृज्जौ, भृज्जः।

दैत्यवृश्च—औ—दैत्यवृश्चौ, दैत्यवृश्च—जस्—दैत्यवृश्चः, दैत्यवृश्च-भ्याम्-दैत्यवृड्भ्याम्। दैत्यवृश्च-सुप्-दैत्यवृट्सु। यदुराज्-सुँ, यदुराट् यदुराड्, यदुराज्-औ, यदुराजौ, यदुराज्-जस्-यदुराजः।

भ्रस्ज् धातु क्विप् प्रत्यय से भृज्ज् नाम निष्पन्न होता है। भृज्ज्-सुँ-भृट्-भृड्, भृज्ज्-औ-भृज्जौ, भृज्ज्-जस्-भृज्जः। उक्त सूत्र समूह से पद निष्पन्न होता है ॥६४॥

स्रज्-दिश्-दृश्-ऋत्विज्-उष्णिह्-दधृष्-अनुदकपूर्वं स्पृश्-तादृश् इत्यादीनां को विष्णुपदान्ते ॥६५॥

ऋत्विक्, स्रक्, दिक्, तादृक्, दधृक् इत्यादि।

विष्णुपदान्त में स्रज् दिश् दृश् ऋत्विज् उष्णिह् दधृष् अनुदक पूर्व स्पृश् तादृश् इत्यादि के अन्त्य वर्ण के स्थान में कराम होता है। ऋतौ यजति वाक्य से ऋत्विज् नाम निष्पन्न होने से ऋत्विज्-सुँ, ऋत्विक्, औ-ऋत्विजौ, स्रज्-सुँ-स्रक्, दिश्-सुँ-दिक्, तादृश्-सुँ-तादृक्, दधृष्-सुँ-दधृक्, प्रभृति पद होते हैं ॥६५॥

युजो ऽसमस्तस्य नुम् कृष्णस्थाने ॥९६॥

युङ्, युञ्जौ, युञ्जः, युग्भ्यामित्यादि कृष्णयुक् कृष्णयुग्, कृष्णयुजौ, कृष्णयुजः, कृष्णयुग्भ्यामित्यादि ।

कृष्णस्थान नामक विष्णुभक्ति परे रहने से असमस्त युज्शब्द के स्थान में नुम् होता है, किन्तु समाधि अर्थ में नुम् नहीं होता है। युज्-सुँ, सुँ हर, नुम्, ८६, ८७, ८८ सूत्र के द्वारा 'युङ्' पद निष्पन्न हुआ, इस प्रकार युज्-औ, युञ्जौ, युज्-जस्, युञ्जः, युज्-भ्याम्-युग्भ्याम्, कृष्णयुज्-सुँ, कृष्णयुक् कृष्णयुग्, कृष्णयुज्-औ, कृष्णयुगौ, कृष्णयुज्-जस्-कृष्णयुजः, कृष्णयुज्-भ्याम्–कृष्णयुग्भ्याम् ॥९६॥

ऊर्ज्ज्—

रात् सस्यैव सत्सङ्गान्त हर विधिः ॥९७॥

नियमोऽयम् । 'बहुत्रप्राप्तौ सङ्कोचनं नियमः'। ऊर्क्, ऊर्ग्, ऊर्ज्जौ, ऊर्ज्जः। विश्वसृज्-विश्वसृट्-विश्वसृड्, विश्वसृजौ, विश्वसृजः। कंसजित्, कंसजितौ, कंसजितः, कंसजिद्भ्यामित्यादि, कंसजित्सु ।

रराम के पश्चात् जो सत्सङ्गान्त का हर होता है, वह रराम के पश्चात् स्थित रराम का ही हर होता है, ऊपर वर्ण का नहीं होता है। यह नियम सूत्र है, अनेक स्थानों में प्राप्त विधि का सङ्कोच करण ही नियम है, अतएव ऊर्ज्ज शब्द का जराम हर नहीं होगा । ऊर्ज्-सुँ-ऊर्क्-ऊर्ग्, ऊर्ज्-औ-ऊर्ज्जौ, ऊर्ज्ज्-जस्-ऊर्जः, विश्वसृज् शब्द, विश्वसृज्-सुँ-विश्वसृट-सृड, विश्वसृज्-औ-विश्वसृजौ, विश्वसृज्-जस्-विश्वसृजः । कंसजित् शब्द, कंसजित्-सुँ-कंसजित्, कंसजिद्, कंसजित्—औ—कंसजितौ, कंसजित्—जस्—कंसजितः। कंसजित्-भ्याम्-कंसजित्भ्याम्, कंसजिद्भ्याम्,कंसजित्-सु-कंसजित्सु।

महतु-त्रिविक्रमः, नुम्, सोर्हरः, महान्, महान्तौ, महान्तः, महद्भ्यामित्यादि। भगवान्,भगवन्तौ, भगवतः। भगवद्भ्यामित्यादि। हे भगोः, हे भगवन् वा।

उरामानुबन्ध महतु शब्द का पुरुषोत्तम लिङ्ग में रूप—

महत्-सुँ, 'नान्त' सूत्र से त्रिविक्रम, नुम् सुँ राम का हर-महान्, महत्-औ-महान्तौ, महन्-जस्-महान्तः, महत्-भ्याम्-महद्भ्याम्। भगवतु शब्द। उराम इत् होकर भगवत् रहता है। भगवत्-सुँ भगवान् 'अत्वसन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमोबुद्धवर्जित सौ धातुं विना' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम। भगवत्-औ-भगवन्तौ, भगवन्-जस्-भगवन्तः, भगवत्-भ्याम्-भगवद्भ्याम्, भगवत्-सुँ, हे भगोः, हे भगवन् ॥६७॥

जवर्ज्ज-हरिगदादेरेक सर्व्वेश्वरस्य धातोर्हरिघोषान्तस्यादौ हरिघोषत्वं, विष्णुपदान्ते, सध्वोश्च ॥६८॥

कृष्णभूत्, कृष्णभूद्, कृष्णभूद्, कृष्णबुधौ, कृष्णबुधः,
कृष्णभूद्भ्यामित्यादि। एवं तत्त्वभूदादयः।

कृष्णं बुध्यति इस वाक्य से कृष्णपूर्व 'बुधधातु' क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न 'कृष्णबुध्' शब्द निष्पन्न होने से पुरुषोत्तम लिङ्ग में उसका रूप इस प्रकार है—

विष्णुपदान्त में एवं सराम का ध्वराम परे रहने से ज भिन्न हरिगदा आदि में एवं हरिघोष अन्त में जिसका है, वह यदि एक सर्व्वेश्वर धात्ववयव का होता है तो उसके आदि वर्ण के स्थान में हरिघोषत्व होता है।

कृष्णबुध्-सुँ, 'राधाविष्णुजनाभ्यां' सूत्र से सुँ का हर, 'जवर्ज' सूत्र से 'बु' के स्थान में 'भू' 'विष्णुदासस्य हरिकमलं वा विरामे' सूत्र से 'त्' होकर कृष्णभूत्, एकबार हरिगदा सूत्र से 'द्' होकर 'कृष्णभूद्' हुआ। कृष्णबुध्-औ-कृष्णबुधौ, कृष्णबुध्-जस्-कृष्णबुधः, कृष्णबुध्-भ्याम्-कृष्णभूद्भ्याम्। इस प्रकार रूप तत्त्वबुध् प्रभृति शब्द का होगा।

धातु पद के द्वारा धातु के अवयव का भी ग्रहण होता है, अतः 'गोविन्देन भाति' क प्रत्ययान्त 'गोविन्दभ्' शब्द होने से णि एवं क्विप् प्रत्यय करके गोविन्दभ् शब्द निष्पन्न होने पर गोविन्दभ्-सुँ, सुँ का हर, जवर्ज्ज सूत्र से न्द-न्ध, हरिकमल सूत्र से भ् के स्थान में प् होकर गोविन्धप् पद हुआ, हरिगदा होने से 'गोविन्धभ्' हुआ, गोविन्दभ्-औ. गोविन्दभौ, गोविन्दभ्-जस् गोविन्दभः ॥९८॥

राजन्-नान्तेति त्रिविक्रमः सोर्हरः—

नामान्तस्य नस्य हरो विष्णुपदान्ते, बुद्धं विना ॥९९॥

राजा, राजानौ, राजानः. शमि-अरामहरः, तवर्गस्य चवर्गः
राज्ञः, राज्ञा, राजभ्यामित्यादि। 'ईङ्योस्तु वा'
राज्ञि, राजनि, राजसु हे राजन्।

राजन्-सुँ, 'नान्तधातु' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम, 'सोर्हरः' सूत्र से 'सुँ' का हर, अनन्तर बुद्ध व्यतीत विष्णुपदान्त में वर्तमान जो नाम, उसके अन्त में स्थित नराम का लोप होता है, इस सूत्र से नराम का लोप होने पर 'राजा' पद सिद्ध हुआ। राजन्-औ, उद्धव का त्रिविक्रम एवं औकार का प्रवेश से राजानौ पद हुआ, राजन्-जस् उद्धव का त्रिविक्रम् एवं विष्णुसर्ग होकर राजानः पद हुआ, राजन्-अम्, त्रिविक्रम होकर राजानम्, राजन्-औ राजानौ, राजन्-शस् 'वम सत्सङ्ग हीनस्य' सूत्र से अन् का अराम हर हुआ, 'तवर्गस्य चवर्ग' सूत्र से 'न' राम का 'ञ्' राम होकर मिलित होकर 'ज्ञः' 'स' राम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर हुआ।

राज्ञः, राजन्-टा-राज्ञा, राजन्-भ्याम्-राजभ्याम्। 'वम सत्सङ्ग-हीनस्यानोऽरामहरो भगवति, नतु ये ईङ्योस्तु वा' सूत्र से अन् का अराम हर विकल्प में हुआ, 'तवर्गस्य चवर्गः' सूत्र से 'न' राम 'ञ' राम होकर 'राज्ञि' पद सिद्ध हुआ, अन् का अराम हर न होने से राजन्-ङि-राजनि पद हुआ, राजन्-सुं, सम्बोधन में 'राधा विष्णु-जनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः' सूत्र 'सुँ' राम का हर होकर हे राजन्! पद हुआ ॥९९॥

श्वन्-युवन्-मघवन् इत्येषां वस्य उर्भगवति ॥१००॥

शुनः, शुना, श्वभ्यामित्यादि ।

भगवत् संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से श्वन्, युवन्, मघवन् शब्द के वराम के स्थान में उराम होता है । अराम के सहित 'व'राम के स्थान में उ होता है ।

श्वन्-शस् 'व' राम के स्थान में उक्त सूत्र से उराम एवं स्राम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'शुनः' पद निष्पन्न हुआ । श्वन्-टा-शुना, श्वन्-भ्याम् 'नामान्तस्य नस्य हरो विष्णुपदान्ते बुद्धं-विना' सूत्र से 'न्' राम हर होने से 'श्वभ्याम्' पद निष्पन्न हुआ ॥१००॥

दिवस् वाची प्रति दिवन् शब्दः— प्रतिदिवा, प्रतिदिवानौ, प्रतिदिवानः ।

धातो र व-प्रागिदुतोस्त्रिविक्रमोरवतो विष्णुजने, न कुर-छुर-नाम धातूनां, नच तद्धित ये ॥१०१॥

शसि-प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्ना, प्रति दिवभ्यामित्यादि । नस्य विष्णुसर्ग इत्येव मन्यन्ते-प्रतिदिवाः, प्रतिदिवोभ्यामित्यादि ।

दिवस वाचि प्रतिदिवन् शब्द प्रतिदिवन्-सुँ, 'नान्त धातु वर्जित' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम, 'राधा विष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः' 'सुँ' का हर, 'नामान्तस्य नस्य हरो विष्णुपदान्ते बुद्धं विना' सूत्र से 'न' राम का हर होकर 'प्रतिदिवा' निष्पन्न हुआ, प्रतिदिवन्-औ, उद्धव का त्रिविक्रम औ का मिलन से 'प्रतिदिवानौ' पद हुआ, प्रतिदिवन्-जस्-प्रतिदिवानः ।

धातु का रराम एवं अन्त्यस्थ वराम के पूर्वस्थ इराम एवं उराम का त्रिविक्रम होता है, यदि उस रराम एवं वराम के परे में विष्णुजन रहता है तो, किन्तु कुर् छुर् एवं नाम धातु का त्रिविक्रम नहीं होता है । एवं तद्धित का यराम परे में रहने से भी त्रिविक्रम नहीं होता है ।

प्रतिदिवन्-शस् 'वम सत्सङ्गहीनस्यानोऽरामहरो भगवति न तु ये, ईङ्योस्तु वा' 'धातोरव प्रागिदुतो स्त्रिविक्रमो रवतो विष्णुजने, न कुर छुर नामधातूनां नच तद्धित ये' 'सररामयोर्विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते' सूत्र से अराम हर, त्रिविक्रम, विष्णुसर्ग होकर 'प्रतिदीव्नः' हुआ, प्रतिदिवन्-टा अराम हर, त्रिविक्रम, आ का मिलन से 'प्रतिदीव्ना' पद निष्पन्न हुआ। प्रतिदिवन्-भ्याम् 'नामान्तस्य नस्य हरः' सूत्र से 'न' राम हर होकर 'प्रतिदिवभ्याम्' पद हुआ। कतिपय व्यक्ति कहते हैं कि-विष्णुपदान्त विषय में 'प्रतिदिवन्' शब्द का 'नराम' विष्णुसर्ग होता है, इस मत में सन्धि होकर 'प्रतिदिवोभ्याम्' पद होता है ॥१०१॥

पथिन्-मथिन्-ऋभुक्षिन्नित्येषां नस्य हरः सौ ॥१०२॥

सुँ परे रहने से पथिन् मथिन् एवं ऋभुक्षिन् शब्द का नराम हर होता है ॥१०२॥

पथ्यादीनामिरामस्यारामः कृष्णस्थाने थात् पूर्वं नुक् च ॥१०३॥

पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ।

कृष्ण स्थान परे रहने से पथ्यादि शब्द का इराम आराम होता है, एवं थ राम के पूर्व में 'नुक्' होता है, 'नुक्' का 'उक्' इत् होता है।

पथिन्-सुँ, नराम हर, इराम का आराम, नुक्, विष्णुचक्र, परवर्णानुरूप हरिवेणु एवं विष्णुसर्ग होकर 'पन्थाः' पद हुआ।

पथिन्-औ-पन्थानौ, पथिन्-जस्-पन्थानः, पथिन्-अम्-पन्थानम्, पथिन्-औ-पन्थानौ ॥१०३॥

पथ्यादीनां संसार हरो भगवति ॥१०४॥

पथः, पथा, पथिभ्यामित्यादि । एवं मन्थादिः, शार्ङ्गी, शार्ङ्गिणौ, शार्ङ्गिणः । एवं वनमालिन्, हलिन्, दण्डिन् ।

भगवत् संज्ञक विष्णुभक्ति परे में होने से पथ्यादि शब्द का संसार हर होता है ।

पथिन्-शस् संसार हर एवं विष्णुसर्ग होकर 'पथः' पद हुआ, पथिन्-टा, संसार हर एवं आराम का प्रवेश से 'पथा' पद निष्पन्न हुआ, पथिन्-भ्याम् नराम हर होकर, 'पथिभ्याम्' होता है, इसी प्रकार मन्थादि शब्द का भी रूप होगा ।

शार्ङ्गिन् शब्द । इन् हन् पुषन् अर्य्यमन् शब्द के उद्धव का त्रिविक्रम केवल सुँ एवं शि परे रहने से ही होता है ।

शार्ङ्गिन्-सुँ, शार्ङ्गी, शार्ङ्गिन्-औ-शार्ङ्गिणौ, शार्ङ्गिन्-जस्, शार्ङ्गिणः, इस प्रकार वनमालिन्, हलिन्, दण्डिन् शब्द का रूप भी होगा ॥१०४॥

कंसहन्, कंसहा, कंसहनौ, कंसहनः—

हनो हस्य घो निणणयोः ॥१०५॥

कंसघ्नः, कंसघ्ना, कंसहभ्याम् । ङौ-कंसहनि, कंसघ्नि, हे कंसहन् ! एवं पूषा, पूषणौ, पूष्णि पूषणि, हे पूषन् ! अर्य्यमा, अर्य्यमणौ, इत्यादि ।

हनधातु निष्पन्न 'हन्' शब्द, कंसहन्-सुँ 'इन् हन् पूषन् अर्य्यमन् इत्येषामुद्धवस्य त्रिविक्रमः' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम हुआ । 'राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः' 'नामान्तस्य नस्य हरो विष्णुपदान्ते' सूत्र से 'कंसहा' पद निष्पन्न हुआ । कंसहन्-औ-कंसहनौ, कंसहन्-जस्-कंसहनः, कंसहन्-शस् 'वम सत्सङ्गहीनस्य अनोऽराम हरो भगवति' सूत्र से अराम हर हुआ ।

णित् प्रत्यय एवं नराम परे रहने से 'हन्' शब्द के इराम घराम होता है, सूत्र से हराम घराम होने पर सराम के स्थान में विष्णुसर्ग होकर 'कंसघ्नः' पद निष्पन्न हुआ ।

कसहन्-टा, कंसघ्ना, कंसहन्-भ्याम्, कंसहभ्याम्, कंसहन्-ङि, कंसहनि, 'कंसघ्नि' पद हुआ । इस प्रकार पूषन्-सुँ-पूषा, पूषन्-औ, पूषणौ, पूषन्–ङि, पूष्णि पूषणि, हे पूषन् अर्य्यमन्–सुँ, अर्य्यमा, अर्य्यमन्-औ-अर्य्यमणौ ॥१०५॥

रष-नान्त-संख्याभ्यो नुड़ामि स्वार्थे ॥१०६॥

पञ्चन् प्रभृति संख्या वाचक शब्द समूह नित्य बहुवचनान्त होते हैं, पञ्चन्-जस् जस् का महाहर हुआ, पञ्च, पञ्चन्-शस्-पञ्च ; पञ्चन्-भिस्-पञ्चभिः, पञ्चन्-भ्यस्-पञ्चभ्यः, । आम् परे रहने से स्वार्थ में वर्त्तमान रामान्त षरामान्त एवं नरामान्त संख्यावाचि शब्द के उत्तर 'नुट्' होता है ॥१०६॥

नान्तोद्धवस्य त्रिविक्रमो नामि ॥१०७॥

'नाम' परे रहने से नान्त शब्द के उद्धव का त्रिविक्रम होता है । पञ्चन्-आम्-पञ्चानाम्, पञ्चन्-सु 'नामान्तस्य नस्यहरो विष्णुपदान्ते, बुद्धं विना' सूत्र से नराम हर होकर 'पञ्चसु' पद निष्पन्न हुआ । इस प्रकार सप्तन्, अष्टन्, नवम्, दशन, का रूप होगा ॥१०७॥

अष्टन् आ विष्णुभक्तिषु वा ॥१०८॥

विष्णुभक्ति परे में रहने से अष्टन् शब्द के 'न्' राम के स्थान में 'आ' विकल्प में होगा ॥१०८॥

तस्माज् जस् शसो रौश स्वार्थे ॥१०६॥

श् इत् । अष्टौ अष्ट, अष्टौ अष्ट, अष्टभिः, अष्टाभिरित्यादि ।

पक्षद्वयेऽपि अष्टानाम् ।

स्वकीय अर्थ में विद्यमान होने पर अष्ट शब्द के पश्चात् स्थित जस् एवं शस् के स्थान में औश् होता है, औश् का 'श' राम इत् होता है, औराम रहता है, अष्टन्-जस् अष्टौ, अष्ट, अष्टन्-शस् अष्टौ अष्ट, अष्टन्-भिस् अष्टाभिः, अष्टभिः । अष्टन्-आम् उभय पक्ष में ही 'अष्टानाम्' पद होगा ॥१०६॥

अर्व्वन्–अर्व्वा,

अनञ्-पूर्व्वस्यार्व्वणोऽर्व्वतृ सु बिना ॥११०॥

चतुर्भुजानुबन्धानां नुम् ।

अर्व्वन् शब्द, अर्व्वन्-सुँ अर्व्वा, सुभिन्न विष्णुभक्ति परे रहने से अनञ् पूर्व अर्वन् शब्द के स्थान में अर्व्वतृ आदेश होता है, अर्व्वत् रहता है। चतुर्भुजानुबन्ध के स्थान में नुम् होता है ॥११०॥

न वर्ज्ज-तवर्गस्थस्य नस्य न णत्वम् ॥१११॥

अर्वन्तौ, अर्व्वन्तः, अर्व्वतः, अर्व्वता, अर्व्वद्भ्यामित्यादि । हे अर्व्वन् !

नराम भिन्न तवर्गीय वर्ण के ऊपर स्थित 'न' राम का 'णत्व' नहीं होता है ।

अर्व्वन्–औ–अर्व्वन्तौ, अर्व्वन्तौ, अर्व्वन्–जस्–अर्व्वन्तः अर्व्वन्–अम्–अर्व्वन्तम्, अर्व्वन्–औ–अर्व्वन्तौ, अर्व्वन्–शस्–अर्व्वतः, अर्व्वन–टा–अर्व्वता, अर्व्वन्–भ्याम्–अर्व्वद्भ्याम्, हे अर्व्वन्–सुँ, हे अर्व्वन् ! ॥१११॥

मान्तः प्रशाम्—

धातोर्मो नो विष्णुपदान्ते म-वयोश्च ॥११२॥

प्रशान्, प्रशामौ, प्रशामः, प्रशान्भ्याम् ।

मान्त के मध्य में प्रशाम् शब्द का रूप । विष्णुपदान्त में एवं मराम अथवा वराम परे रहने से धातु के मराम के स्थान में नराम होता है । प्रशाम्-सुँ-प्रशान्, प्रशाम-औ-प्रशामौ, प्रशाम्-जस्-प्रशामः, प्रशाम्-भ्याम्-प्रशान्भ्याम् ॥११२॥

चतुरनडुहोराम् कृष्णस्थाने, बुद्धेत्वम् ॥११३॥

म् इत्, चत्वारः, चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, रषनान्तेति नुट्-चतुर्णाम् ।

चतुर् शब्द नित्य बहुवचनान्त, पुरुषोत्तम लिङ्ग में उसका रूप, कृष्ण स्थान परे रहने से चतुर शब्द एवं अनडुह् शब्द के अन्त्य सर्व्वेश्वर के पश्चात् आम् होता है, किन्तु बुद्ध परे रहने से अम् होता है, आम् एवं अम् का अराम इत् होता है ।

चतुर-जस्-चत्वारः, चतुर्-शस्-चतुरः, चतुर्-भिस्-चतुर्भिः, चतुर्-भ्यस्-चतुर्भ्यः, चतुर्-आम्-चतुर्णाम् ॥११३॥

ररामस्य न विष्णुसर्गः सुपि ॥११४॥

चतुर्षु । कृष्णप्राश्-कृष्णप्राट्, कृष्ण प्राशौ, कृष्णप्राशः, इत्यादि ।

चतुर्-सुप्-चतुर्षु, सुप् परे में होने से रराम के स्थान में विष्णुसर्ग नहीं होता है । चतुर्-सुप्-चतुर्षु, प्रछ धातु क्विप् प्रत्यय से शरामान्त कृष्णप्राश् शब्द होता है ।

कृष्णप्राश्—सुँ—कृष्णप्राट्, कृष्णप्राश्—औ—कृष्णप्राशौ, कृष्णप्राश्-जस्-कृष्णप्राशः ॥११४॥

सुजुष्—

सुजुष् आशिष् इत्यनयोरिसुसन्त-धातोश्च रो विष्णुपदान्ते, तस्य विष्णुसर्गश्च सुपि ॥११५॥

सुजुष् शब्द आशिष् शब्द एवं इसन्त धातु उसन्त धातु के अन्त्यवर्ण के स्थान में रराम होता है, यदि वह अन्त्यवर्ण विष्णु-पदान्त में रहता है तो, सुप् परे रहने से उक्त रराम के स्थान में विष्णुसर्ग होता है, अपर रराम के स्थान में नहीं होता है ॥११५॥

इरुरन्त धातोरुद्धवस्य त्रिविक्रमो विष्णुपदान्ते ॥११६॥

सजूः सजुषौ, सजुषः, सजूर्भ्यामित्यादि । सजुःषु, उरुश्रवस्-
अत्वसन्तोद्धवस्येति त्रिविक्रमः, उरुश्रवाः, उरुश्रवसौ,
उरुश्रवसः, उरुश्रवोभ्यामित्यादि । उरुश्रवःसु,
कसं हिनस्तीति कंसहिस्, कंसहिन्, कंसहिंसौ,
कंसहिंसः, कंसहिन्भ्यामित्यादि । कंसहिन्सु ।

विष्णुपदान्त में स्थित इरन्त एवं उरन्त धातु के उद्धव का त्रिविक्रम होता है । सजुष्-सुँ-सजूः, सजुष-औ-सजुषौ, सजुष्-जस्-सजुषः, सजुष्-भ्याम्-सजूर्भ्याम्, सजुष्-सुप्-सजु षु, सजुष्षु ।

उरुश्रवस्, उरुश्रवस्-सुँ 'अत्वसन्तोद्धवस्य' सूत्र से त्रिविक्रम होने पर विष्णुसर्ग होकर उरुश्रवाः, उरुश्रवस्–औ–उरुश्रवसौ, उरुश्रवस्-जस्-उरुश्रवसः, उरुश्रवस्-भ्याम्-उरुश्रवोभ्याम्, उरुश्रवस्-सुप्-उरुश्रवःसु, हे उरुश्रवः ! 'कंसं हिनस्ति' इस वाक्य से कंसहिंस् शब्द । सर्वेश्वर एवं विष्णुजन के मध्य में पाठ हेतु विष्णुचक्र एवं विष्णुसर्ग का सर्वेश्वरत्व एवं विष्णुजनत्व है । कंसहिंस्–सु, 'सत्सङ्गान्त हेतु अन्त्य सराम का हर हुआ, अनन्तर विष्णुचक्र का निमित्तापाय हेतु विष्णुचक्र की निवृत्ति हुई, अर्थात् विष्णुचक्र के स्थान में नराम हुआ । अनन्तर धातुवर्जित विशेषण हेतु त्रिविक्रम नहीं हुआ, 'राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः' सूत्र से सुँ का हर होने पर 'कंसहिन्' पद सिद्ध हुआ ।

कंसहिस्-औ-कंसहिसौ, कंसहिस्-जस्-कंसहिसः, कंसहिस्-भ्याम् 'सत्सङ्गान्तस्य हरो विष्णुपदान्ते' सूत्र से अन्त्य सराम का हर होने पर विष्णुचक्र का निमित्तापाय हेतु विष्णुचक्र नराम होने से 'कंसहिन्भ्याम्' पद हुआ। कंसहिस्-सुप्, 'सत्सङ्गान्तस्य हरो विष्णुपदान्ते' सूत्र से सराम का हर होने के पश्चात् निमित्त का अभाव हेतु विष्णुचक्र नराम हुआ,अनन्तर 'कंसहिनसु' पद हुआ।।११६

कृष्णवाह्—

हस्य ढः, नहो धः, दादेस्तु धातो र्घः, द्रुह-मुह-नश-स्नुह-स्निहां वा विष्णुपदान्ते वैष्णवे च ।।११७।।

कृष्णवाट् कृष्णवाड्, कृष्णवाहौ, कृष्णवाहः, कृष्णवाड्भ्यामित्यादि।

कृष्णवाह् शब्द—

विष्णुपद के अन्त में अथवा वैष्णव वर्ण परे में रहने से हराम ढराम, नह का हराम धराम, द-आदि शब्द का हराम-घराम, द्रुह, मुह, नश, स्नुह, स्निह के अन्त्यवर्ण विकल्प में धराम होता है।

कृष्णवाह्-सुँ-कृष्णवाट् कृष्णवाड् कृष्णवाह्-औ, कृष्णवाहौ, कृष्णवाह्-जस्-कृष्णवाहः, कृष्णवाह्-भ्याम्-कृष्णवाड्भ्याम् ।।११७।।

वाहो वा ऊठ् भगवति ।।११८।।

ठ इत्।

भगवत् संज्ञक विष्णुभक्ति परे रहने से वाह् शब्द के वा के स्थान में ऊठ् होता है, ठ्राम इत् होता है ।।११८।।

अद्वयादूठो वृष्णीन्द्रः ।।११९।।

शसि-कृष्णोहः, कृष्णौहा, कृष्णवाट्सु, हे कृष्णवाह्।

अद्वय के पश्चात् ऊठ का वृष्णीन्द्र होता है। कृष्णवाह्-शस्-कृष्णोहः, कृष्णवाह्-टा-कृष्णौहा, कृष्णवाह्-भ्याम्-कृष्णवाड्भ्याम्, कृष्णवाह्-सुप्-कृष्णवाट्सु, हे कृष्णवाह्! ।।११९।।

।। इति विष्णुजनान्ताः पुरुषोत्तमलिङ्गाः ।।

* * *

अथ विष्णुजनान्ता लक्ष्मी लिङ्गाः

तत्र चरामान्त ऋच्। चवर्गस्येति-ऋक् ऋग् ऋचौ, ऋचः, ऋचा, ऋग्भ्याम्, ऋक्षु। एवं त्वच्, वाच्, स्रज्, दिश्, दृश्, इत्यादि। स्रक् स्रग्, स्रजौ, स्रजः। समिध्-समित्-समिद्, समिदमित्यादि। सीमन्-सीमा, सीमानौ, सीमानः सीमानमित्यादि सीम्नः, सीम्ना, सीमभ्यामित्यादि। 'ईङ्योस्तु वा' सीम्नि, सीमनि।

अप्-नित्यं बहुवचनान्तः। नान्तेति त्रिविक्रमः—आपः अपः। अद्भिरित्यादि। अपाम्, अप्सु, हे आपः! तदन्तत्वात् स्वद्भिरित्यादि। ककुभ्-ककुप् ककुब्, ककुभौ, ककुब्भ्याम्, ककुप्सु।

गिर्-इरुरन्त धातोरित्यादि—गीः गिरौ, गिरः, गीर्भ्यामित्यादि, गीर्षु। एवं पुर्-पूः, पुरौ, पुरः। चतुर्स्त्रियां चतस्रादेशः-चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणां, चतसृषु। लक्ष्मीस्थयोरिति विशेषणात् समस्तस्यान्यलिङ्गत्वेऽपि तत्तदादेशः, प्रियास्तिस्रो यस्य सः-प्रियतिसा, प्रियतिस्रौ प्रियतिस्रः प्रियचतसा, प्रियचतस्रौ, प्रियचतस्रः, ङसि-ङसोः प्रियतिस्रः, प्रियचतस्रः, प्रियतिसृणामित्यादि। समस्तमात्रस्य लक्ष्मीत्वे तु—प्रियत्रिः प्रियत्री, प्रियत्रयः। अथविष्णुजनान्ता लक्ष्मीलिङ्गाः—

चरामान्त ऋच्-सुँ चवर्गस्य कवर्ग' राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोर्हरः' सूत्र से चवर्ग के स्थान में कवर्ग, एवं सुँ का हर होकर 'ऋक्' पद सिद्ध हुआ, एकबार ऋग् हुआ, ऋच्-औ, ऋचौ, ऋच्-जस्-ऋचः, ऋच्-टा-ऋचा, ऋच्-भ्याम्-ऋग्भ्याम, ऋच्-सुप्-क एवं ष होकर 'ऋक्षु' पद हुआ, इस प्रकार रूप 'त्वच्' 'वाच्' स्रज्, दिश्, 'दृश्' का होगा, स्रज्-सुँ, स्रक्, स्रग्, स्रजौ, स्रजः। समिध्-सुँ समित्, समिद्, समिध्-अम्-समिधम्, सीमन्-सुँ-सीमा, सीमन्-औ, सीमानौ, सीमन्-जस्-सीमानः, सीमन्-अम्-सीमानम्,

सीमन्–शस्–सीम्नः, सीमन्–टा–सीम्ना, सीमन्–भ्याम्–सीमभ्याम्, अन् का अराम हर, ई ङि में विकल्प में होता है। सीमन्-ङि, सीम्नि-सीमनि।

अप्-शब्द नित्य बहुवचनान्त है, 'नान्तधातुवर्जितसान्तसत्सङ्ग महदपामुद्धवस्य त्रिविक्रमः कृष्णस्थाने बुद्ध विना' सूत्र से त्रिविक्रम होकर अप्-जस् आपः, अप्-शस् अपः। भराम परे रहने से अप् शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान में दराम होता है। अप्-भिस्-अद्भिः, अप्-आम्-अपाम्, अप्-सुप्-अप्सु, हे अप्-जस्, हे आपः। अप् शब्दान्त शब्द का भी रूप इस अप् शब्द के समान होगा, स्वप्-भिस्-स्वद्भिः।

ककुभ्-शब्द, ककुभ्-सुँ ककुप् ककुब्, ककुभ्-औ ककुभौ, ककुभ्-भ्याम्-ककुब्भ्याम्, ककुभ्-सुप्-ककुप्सु।

गिर् शब्द, गिर्-सुँ गीः, 'इरुतन्त धातोरुद्धवस्य त्रिविक्रमो विष्णु पदान्ते' सूत्र से उद्धव का त्रिविक्रम, 'सररामयोर्विष्णुसर्गः' सूत्र से त्रिविक्रम एवं बिष्णुसर्ग होकर 'गीः' पद सिद्ध हुआ।
गिर्-औ-गिरौ, गिर्-जस्-गिरः, गिर्-भ्याम्-गीर्भ्याम्, गिर्-सुप्-गीर्षु। एवं पुर् शब्द। पुर्-सुँ-पूः, पुर्-औ-पुरौ, पुर्-जस्-पुरः। चतुर् शब्द–चतुर्-जस् 'लक्ष्मीस्थयोस्त्रिचतुरो स्तिसृ-चतसृ विष्णुभक्तौ' सूत्र से 'चतस्र' आदेश होकर 'चतस्रः' पद सिद्ध हुआ, चतुर्-शस्-चतस्रः, चतुर्-भिस्-चतसृभिः, चतुर्-भ्यस्-चतसृभ्यः, चतुर्-भ्यस्-चतसृभ्यः, चतुर्-आम्-चतसृणां, चतुर्-सुप्-चतसृषु। सूत्र में 'लक्ष्मीस्थ' विशेषण होने के कारण समास से अन्य लिङ्ग होने पर भी तिसृ चतसृ आदेश होगा।

'तीन प्रिया हैं जिसकी' इस अर्थ में प्रियत्रि शब्द होने से प्रियत्रि-सुँ-प्रियतिसा, प्रियत्रि-औ-प्रियतिस्रौ, प्रियत्रि-जस्-प्रियत्रिस्रः। प्रियचतुर् शब्द–प्रियचतुर्-सुँ प्रियचतसा, प्रियचतुर्-औ-प्रियचतस्रौ, प्रियचतुर्-जस्-प्रियचतस्रः।

प्रियत्रि–ङसि–प्रियतिस्रः, प्रियत्रि–ङस्–प्रियतिस्रः, प्रियचतुर्-ङसि-ङस्-प्रियचतस्रः, प्रियत्रि-आम्-प्रियतिसृणाम्।

त्रिचतुर् शब्द का लक्ष्मी संज्ञकत्व न होकर समास सम्पन्न होने से 'तिसृ चतसृ' आदेश नहीं होगा। जिस प्रकार 'प्रियाणि त्रीणि यस्या' इस वाक्य से प्रियत्रि शब्द होने पर प्रियत्रि-सुँ-प्रियत्रिः, प्रियत्रि-औ-प्रियत्री, प्रियत्रि-जस्-प्रियत्रयः ॥१२०॥

दिव्— **दिव् औ सौ ॥१२१॥**

द्यौः, दिवौ, दिवः, दिवम्, दिवौ, दिवः, इत्यादि।

दिव्-शब्द। दिव्-सुँ दिव् शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान में औ होता है। द्यौः, दिव्-औ दिवौ, दिव्-जस्-दिवः, दिव्-अम्-दिवम्, दिव्-औ-दिवौ, दिव्-शस्-दिवः ॥१२१॥

दिव् उर्विष्णुपदान्ते ॥१२२॥

द्युभ्याम्, द्युषु।

दिश-दिक् दिग्, दिशौ, दिग्भ्यामित्यादि, दिक्षु एवं दृश्, दृक्, अघद्विष्-कंसद्विड्वत् एवं विप्रुष्।

अथ आशिष्, 'सजुष्' इत्यादिना रः-आशीः, आशिषौ, आशिषः, आशीर्भ्यामित्यादि, आशीःषु, उष्णिह्-उष्णिक्, उष्णिग्, उष्णिहौ। उपानह् 'नहो धः' उपानत्, उपानद्, उपानहौ, उपानहः, इत्यादि।

विष्णुपदान्त में स्थित दिव् शब्द के अन्त्य वर्ण के स्थान में उराम होता है। दिव्-भ्याम्-द्युभ्याम्, दिव्-सुप्-द्युषु। दिश् शब्द-दिश्-सुँ-दिक् दिग्, दिश्-औ, दिशौ, दिश्-भ्याम्-दिग्भ्याम्, दिश्-सुप् दिक्षु, इस प्रकार दृश् शब्द, दृश्-सुँ-दृक् दृग्, अघद्विष् शब्द का रूप कंसद्विष् शब्द के समान होगा, अघद्विष्-सुँ-अघद्विट्-अघद्विड्। इस प्रकार विप्रुष् शब्द का रूप होगा।

आशिष्-सुँ-आशीः, आशिष्-औ-आशिषौ, आशिष्-जस्-आशीषः, आशिष्-भ्याम्-आशीर्भ्याम्, आशिष्-सुप्-आशीःषु, उष्णिह् शब्द, उष्णिह्-सुँ-उष्णिक् उष्णिग्, उष्णिह्-औ उष्णिहौ।

उपानह् शब्द। 'नहो धः' सूत्र से उपानह-सुँ उपानत् उपानद्, उपानह्-औ-उपानहौ, उपानह्-जस्-उपानहः ॥१२२॥

॥ इति विष्णुजनान्ता लक्ष्मीलिङ्गाः ॥

***

अथ विष्णुजनान्ता ब्रह्म-लिङ्गाः

तत्रापि प्रत्यच्-प्रत्यक्, प्रतीची, प्रत्यञ्चि, प्रतीचा, प्रत्यग्भ्यामित्यादि। एवं प्राच्। प्रत्यञ्च-प्राञ्चयोस्तु-प्रत्यङ्, प्रत्यञ्ची, प्रत्यञ्चि। तिर्य्यंच्-तिर्य्यक्, तिरश्ची, तिर्य्यञ्चि, तिरश्चा, तिर्य्यग्भ्यामित्यादि। ऊर्ज्-ऊर्क्, ऊर्ग्, ऊर्ज्जी, ऊर्न्जि।

जगत्, जगती, जगन्ति, भवत्, भवन्ती, भवन्ति, भवता, भवद्भ्यामित्यादि। तुदत्, तुदती, तुदन्ती, तुदन्ति, भात्, भाती, भान्ती, भान्ति, करिष्यत्, करिष्यती, करिष्यन्ती, करिष्यन्ति, महत्, महती, महान्ति, ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि, ब्रह्मणा, ब्रह्मभ्यामित्यादि।

नस्य हरो वा ब्रह्मणि बुद्धे ॥१२३॥

हे ब्रह्म, हे ब्रह्मन्! एवं शर्मन्, वर्मन्, चर्मन्।

अनन्तर विष्णुजनान्त ब्रह्मलिङ्ग–उसमें प्रत्यच् शब्द। प्रत्यच्-सुँ सुँ का हर, चवर्ग का कवर्ग– प्रत्यक्, प्रत्यच्-औ, 'राधाब्रह्मभ्यामौ ई' 'अचोऽरामहरः' अरामहर, निमित्तापाय से नैमित्तिकका अपाय, यराम इराम, पश्चात् त्रिविक्रम प्रतीची, प्रत्यच्-जस्-शि, नुम, तवर्गस्य चवर्ग-प्रत्यञ्चि। ब्रह्मलिङ्ग मात्र में ही प्रथमा के समान द्वितीया का रूप होगा।

प्रत्यच्-टा- प्रतीचा, प्रत्यच्-भ्याम्-प्रत्यग्भ्याम्। इस प्रकार प्राच् शब्द का रूप होगा। प्रत्यञ्च् एवं प्राञ्च् शब्द का रूप प्रत्यञ्च्-सुँ-प्रत्यङ्, प्रत्यञ्च्-औ प्रत्यञ्ची, प्रत्यञ्च्-प्रत्यञ्चि प्राञ्च्-सुँ-प्राङ्, प्राञ्च्-औ प्राञ्ची, प्राञ्च्-जस् प्राञ्चि।

तिर्य्यंच्–सुँ–तिर्य्यक्, तिर्य्यंच्–औ तिरश्ची, तिर्य्यंच्–जस् तिर्य्यंञ्चि, तिर्य्यंच्-टा-तिरश्चा, तिर्य्यंग्-भ्याम्-तिर्य्यग्भ्याम्।

ऊर्ज्-सुँ-ऊर्क्, ऊर्ग्, ऊर्ज-औ-ऊर्ज्जी, ऊर्ज-जस्-ऊर्न्जि।

जगत्-सु जगत्, जगत्-औ जगती, जगत्-जस् जगन्ति, भवत्-सुँ भवत्, भवत्-औ भवन्ती, भवत्-जस् भवन्ति, भवत्-टा भवता, भवत्-भ्याम् भवद्भ्याम्। तुदत्-सुँ तुदन, तुदत्-औ तुदती, तुदन्ती, तुदत्-जस् तुदन्ति। भात्-सुँ भात्, भात्-औ भाती भान्ती, भात्-जस् भान्ति, करिष्यत्-सुँ करिष्यत्, करिष्यत्-औ करिष्यती करिष्यन्ती, करिष्यत्-जस् करिष्यन्ति, महत्-सुँ-महत्, महत्-औ महती, महत्-जस् महान्ति।

ब्रह्मन्-सुँ-ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्मन्-जस्-ब्रह्माणि, ब्रह्मन्-टा ब्रह्मणा, ब्रह्मन्-भ्याम्-ब्रह्मभ्याम्।

बुद्ध परे रहने से ब्रह्म संज्ञक शब्द के अन्तस्थित नराम का हर विकल्प में होता है। हे ब्रह्मन्-सुँ हे ब्रह्म ! हे ब्रह्मन् ! इसी प्रकार रूप शर्मन्, वर्मन्, चर्मन् का होगा ॥१२३॥

अहन्—

अह्नो विष्णुसर्गो विष्णुपदान्ते ॥१२४॥

अहः, अह्नी अहनी, अहानि, अह्ना, अहोभ्यामित्यादि। हे अहः ! दीर्घाहन्-दीर्घाहा, दीर्घाहाणो, दीर्घाहाणः दीर्घाह्णः, सुपथिन्-सुपथि, सपथी, सुपन्थानि। स्वप्, स्वपी, नान्तधातुर्वजितेति त्रिविक्रमः स्वाम्पि, स्वद्भ्याम्, इत्यादि।

वार्-वाः, वारी, वारि, वार्भ्यामित्यादि।

चतुर्-चत्वारि, पयस्-पयः, पयसी, पयांसि, पयसा, पयोभ्यामित्यादि। हविस्-हविः, हविषी, हवींषि, हविषा, हविर्भ्यामित्यादि, हवि:षु, हविष्षु।

धनुष्-धनुः, धनुषी, धनुंषि।

अतिपुंस्-अतिपुम्, अतिपुंसी, अतिपुमांसि।

स्वनडुत्, स्वनडुही, स्वनड्वांहि, स्वनडुहा, स्वनडुद्भ्यामित्यादि।

अहन् शब्द–विष्णुपदान्त में अहन् शब्द के अन्त के स्थान में विष्णुसर्ग होगा, किन्तु समास में पुरुषोत्तम लिङ्ग होने से नहीं होगा, अहन्-सुँ-अहः, अहन्-औ-अह्नी-अहनी, अहन्-जस्-अहानि, अहन्-टा अह्ना, अहन्-भ्याम्–अहोभ्याम्, हे अहन्-सुँ-हे अहः। समास में पुरुषोत्तम लिङ्ग होने से रूप इस प्रकार होगा।

दीर्घाहन्-सुँ दीर्घाहा, दीर्घाहन्-औ दीर्घाहाणौ, दीर्घाहन्-जस् दीर्घाहाणः, दीर्घाहन्-शस् दीर्घाह्णः।

सुपथिन्-सुँ-सुपथि, सुपथिन्-औ सुपथी, सुपथिन्-जस् सुपन्थानि सुपथिन्-शस्-सुपन्थानि।

कंसहन्-सुँ कंसह, कंसहन्-औ-कंसहनी कंसघ्नी, कंसहन्-जस्-कंसहानि। स्वप्-सुँ स्वप्, स्वप्-औ स्वपी, स्वप्-जस् स्वाम्पि, स्वप्-भ्याम्-स्वद्भ्याम् वार्-सुँ वाः, वार्-औ वारी, वार्-जस् वारि, वार्-भ्याम्-वार्भ्याम्। चतुर्-जस्-चत्वारि, पयस्-सुँ-पयः, पयस्-औ पयसी, पयस्-जस्-पयांसि पयस्-टा पयसा, पयस्-भ्याम् पयोभ्याम्। हविस्-सुँ हविः, हविस्-औ हविषी, हविष्–जस् हवींषि, हविष्–टा हविषा, हविष्–भ्याम् हविर्भ्याम्, हविष्-सुप् हविःषु हविष्षु, धनुष्-सुँ धनुः, धनुस्-औ धनुषी, धनुस्-जस् धनूंषि।

अतिपुम्-सुँ अतिपुम्, अतिपुम्-औ अतिपुंसी, अतिपुम्-जस् अतिपुमांसि।

स्वनडुह्-सुँ स्वनडुत्, स्वनडुह-औ स्वनडुही, स्वनडुह-जस् स्वनड्वांहि, स्वनडुह-टा स्वनडुहा, स्वनडुह-भ्याम्-स्वनडुद्भ्याम् ॥१२४

॥ इति विष्णुजनान्ता ब्रह्मलिङ्गाः ॥

॥ इति लिङ्गत्रयं दर्शितम् ॥

***

अथ कृष्णनाम

सर्व्वादीनि कृष्णनामानि ॥१२५॥

सर्वनामानीत्यन्ये, सर्व्व, विश्व, उभ, उभय, अन्य, अन्यतर, ततर, ततम, यतर, यतम, कतर, कतम, एकतर, एकतम, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, 'त्यद् छान्दसः' तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस् एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ।

अनन्तर विशेषण शब्द के मध्य में कृष्णनामाख्य शब्द समूह इस प्रकार हैं—

सर्व्वादि का नाम कृष्ण नाम है, इसको सर्व्वनाम कहते हैं । सर्व्व, विश्व, उभ, उभय, अन्य, अन्यतर, ततर, ततम, यतर, यतम, कतर, कतम, एकतर, एकतम, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, 'त्यद् छान्दसः' तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ये ४१ एक चत्वारिंशत् होते हैं ॥१२५॥

तत्र पुंसि-सर्व्वः, सर्व्वौ —

कृष्णनाम-कृष्णतो जसः शीः ॥१२६॥

श् इत्, सर्व्वे, सर्व्वमित्यादि पुंवत् ।

इन सबों के मध्य में पुरुषोत्तम लिङ्ग में सर्व्व-सुँ-सर्व्वः, सर्व्व-औ सर्वौ, इत्यादि कृष्ण शब्दवत् ।

सर्व्व-जस् कृष्णनाम प्रकरण में कृष्ण संज्ञक शब्द के उत्तर जस् के स्थान में 'शी' होता है, 'श्' इत् होता है, ईराम रहता है । सर्व्वे सर्व्व-अम् सर्व्वम् । कृष्ण शब्दवत् रूप होगा ॥१२६॥

कृष्णनाम कृष्णतो ङे: स्मै, ङसेः स्मात्, ङेःस्मिन् ॥१२७॥

सर्व्वस्मै, सर्व्वस्मात्,सर्व्वस्मिन्, पञ्चम्यास्तस् प्रत्ययस्तद्धितः सर्व्वतः।

कृष्णनाम प्रकरण में कृष्ण संज्ञक शब्द के उत्तर ङे के स्थान में स्मै, ङसि के स्थान में स्मात्, ङे के स्थान में स्मिन् होता है। सर्व्व-ङे-सर्व्वस्मै, सर्व्व-ङसि स्मात्-सर्व्वस्मात्, सर्व्वतः, सर्व्व-ङि-स्मिन् सर्व्वस्मिन् सर्व्वत्र ॥१२७॥

कृष्णनाम्-कृष्ण-राधाभ्यां सुडामि ॥१२८॥

उटावितौ, सर्व्वेषाम्,(सर्व्वस्मिन्)सप्तम्यास्त्र प्रत्यय स्तद्धितः सर्व्वत्र।

कृष्णनाम–कृष्ण संज्ञक शब्द के उतर 'आम्' रहने से सुट् आगम् विष्णु होता है, सुट् का उट् इत् होकर साम रहता है। सर्व्व-आम-सर्व्वेषाम् ॥१२८॥

पूर्व्वादि च व्यवस्थायां सप्तकं कृष्णनामकम् ॥१२९॥

दिग् देश काल विभागोऽत्र व्यवस्था, तस्यां गम्यमानायाम्, पूर्व्वस्मै दिगन्तराय देशादये वा । दक्षिणाय, प्रवीणायेत्यर्थः उत्तराः, कुरवः।

दिग्देश काल अर्थ सूचित होने पर पूर्व्वादि सात शब्द कृष्ण नाम संज्ञक होते हैं। पूर्व्वस्मै दिगन्तराय इस प्रकार जानना होगा। गौणार्थ में एवं संज्ञा अर्थ में कृष्णनामत्व नहीं होगा। दक्षिणाय-प्रवीणाय, उत्तराः कुरवः, गौणार्थ एवं संज्ञार्थ का उदाहरण है॥१२९

समोऽतुल्ये कृष्णनाम ॥१३०॥

समस्मै।

अतुल्य अर्थ में समशब्द कृष्णनाम होता है। समस्मै अर्थात् सर्व्वस्मै, तुल्यार्थ में समाय अर्थात् तुल्याय ॥१३०॥

स्वमज्ञाति धनाह्वये ।।१३१।।

स्वस्मै, आत्मने, आत्मीयाय वेत्यर्थः ।

ज्ञाति, धन भिन्न अर्थ में स्व शब्द कृष्णनाम होगा, कारण, स्व शब्द से पुरुषोत्तम लिङ्ग में ज्ञाति एवं आत्मा का बोध होता है, तीन लिङ्ग में आत्मीय का बोध होता है, अस्त्रीलिङ्ग में धन का बोध होता है ।

स्वस्मै-आत्मने-आत्मीयाय, स्वाय-अर्थात् ज्ञातये धनाय वा' यहाँ कृष्णनाम नहीं हुआ ।।१३१।।

अन्तरो वाह्यपरिधानीययोर्न त्वसौ पुरि ।।१३२।।

अन्तरस्मै, वाह्यायेत्यर्थः ।

वाह्य एवं परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द कृष्णनाम होता है, किन्तु वाह्य अर्थ पुरविषयक होने से नहीं होगा । यथा-अन्तरस्मै अर्थात् वाह्याय, अथवा वस्त्रान्तर वृत परिधानीयाय । पुरि विषय में 'अन्तराय' अर्थात् वाह्य पुराय ।।१३२।।

पूर्व्वादीनि नच कृष्णनामानि जसि वा ।।१३३।।

पूर्व्वे पूर्व्वाः, स्वे स्वाः, अन्तरे अन्तराः । सर्व्ववद् विश्वादयोऽप्यरामान्ताः । उभ शब्दो नित्यं द्विवचनान्तः- उभौ, उभौ, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभयोः, उभयोः त्वत्-त्वौ अन्य पर्य्यायौ, नेमोऽर्द्धपर्य्यायः, सिमश्च सर्व्वार्थः, शक्तावबद्ध मर्य्यादाश्च ।

जस् परे रहने से पूर्व्व प्रभृति ९ का कृष्णनाम विकल्प में होता है। पूर्व्व-जस्-पूर्व्वे, पूर्व्वाः, इस प्रकार स्व-जस् स्वे, स्वाः, अन्तर्-जस् अन्तरे, अन्तराः ।

उभ शब्द-नित्य द्विवचनान्त है । उभ-औ उभौ, उभ-औ उभौ, उभ-भ्याम्-उभाभ्याम्, उभ-ओस् उभयोः ।

सर्व्वादि के मध्य में त्वत् एवं त्व शब्द का अर्थ है- 'अन्य', नेम शब्द का अर्थ है 'अर्द्ध' सिम शब्द का अर्थ है 'समस्त' मतान्तर में सिम शब्द का अर्थ है, 'शक्त, अवबद्ध एवं मर्य्यादा' ।।१३३।।

पूर्व्वादिभ्यो नवभ्यः, स्मात् स्मिनौ वा ॥१३४॥

पूर्व्वस्मात् पूर्व्वात्, पूर्व्वस्मिन् पूर्व्वे ।

पूर्व्वादि ९ शब्द का ङसि के स्थान में विकल्प में 'स्मात्' होता है, एवं 'ङि' के स्थान में स्मिन् भी विकल्प में होता है ।

पूर्व्व-ङसि-पूर्व्वस्मात्, पूर्व्व-ङसि-पूर्व्वात्, पूर्व्व-ङि-पूर्व्वस्मिन्, पूर्व्व-ङि-पूर्व्वे ॥१३४॥

प्रथम-चरम-तयायाल्पार्द्ध-कतिपय-नेमाः कृष्णनामानि जसि वा ॥१३५॥

प्रथमे, प्रथमाः, द्वितये, द्वितयाः, द्वये, द्वयाः, शेषं कृष्णवत् ।
उभयस्य द्विवचनाभावः- उभयः उभये, उभयाः ।
नेमे, नेमाः, शेषं सर्व्ववत् ।

जस् परे रहने से प्रथम, चरम, तय प्रत्ययान्त, अयप्रत्ययान्त, अल्प, अर्द्ध, कतिपय, एवं नेम, शब्द का विकल्प में कृष्णनाम होता है ।

प्रथम-जस्, प्रथमे, प्रथम-जस् प्रथमाः, तय एवं अय प्रत्यय हैं । द्वितय-जस् द्वितये, द्वितय-जस् द्वितयाः ।

उभय शब्द का द्विवचन में रूप नहीं होता है, एकवचन एवं बहुवचन में ही होता है ।

उभय-सुं-उभयः, उभय-जस्-उभये, एकबार-
उभयाः, नेम-जस्-नेमे, नेमाः, अवशिष्ट रूप सर्वशब्द के समान होगा ।

द्वय-सुँ-द्वये-द्वयाः, प्रथम, द्वितय, द्वय शब्द का अवशिष्ट रूप कृष्ण शब्द के समान होगा ॥१३५॥

तदादि-सप्तानां संसारस्यारामः स्वादौ, दस्य च मः,
तदादेस्तः सः सौ ॥१३६॥

सः, तौ, ते, तं, तौ, तानित्यादि । तद्धिते पञ्चभ्यां ततः,
सप्तभ्यां ततः, इत्यादि ।

स्वादि विष्णुभक्ति परे रहने से तद् प्रभृति सात् शब्दों के संसार के स्थान में अराम होता है, दराम के स्थान में मराम होता है, एवं 'सुँ' परे रहने से तराम के स्थान में सराम होता है ।

तद्-सुँ सः, तद्-औ तौ, तद्-जस् ते, तद्-अम् तम्, तद्-औ तौ, तद्-शस् तान्, तद्धित प्रत्यय से पञ्चमी में तस्मात् के स्थान में 'ततः' सप्तमी के तस्मिन् के स्थान में 'तत्र' पद होता है ॥१३६॥

इदमोऽयं सौ, इयन्तु लक्ष्म्याम् ॥१३७॥

अयम्, इमौ, इमे, इमम्, इमौ, इमानित्यादि ।

सुँ परे रहने से 'इदम्' शब्द के स्थान में अयम् एवं लक्ष्मी संज्ञक होने से 'इयम्' होता है ।

इदम्-सुँ अयम्, इदम्-औ, इमौ, इदम्-जस्-इमे, इदम्-अम् इमम्, इदम्-औ, इमौ, इदम्-शस् इमानित्यादि ॥१३७॥

इदमोऽकरामस्य अनष्टौसोः ॥१३८॥

टा एवं औस् परे रहने से कराम शून्य 'इदम्' शब्द के स्थान में 'अन' होता है ॥१३८॥

वैष्णवे त्वश् ॥१३९॥

वैष्णव परे रहने से 'इदम्' शब्द के स्थान में 'अश्' होता है, 'अश्' का शराम इत् होकर अ रहता है ।

अनेन, शित् सर्वस्येति सर्व्वादेशः, आभ्याम्, इमकाभ्याम् ।

इदम्-टा-अनेन, इदम्-भ्याम्, 'शित् सर्व्वस्य' इस नियम से समस्त के स्थान में 'अश्' होता है । आभ्याम् । इमकाभ्याम् यह कराम युक्त का उदाहरण है, यहाँ 'अश्' नहीं हुआ ॥१३९॥

इदमदोभ्यामकरामाभ्यां नैस् ॥१४०॥

एभिः, अस्मै, आभ्याम्, एभ्यः, अस्मात्, आभ्याम्, एभ्यः, तद्धिते पञ्चम्याम् इतः, अस्य, अनयोः, एषाम् । अस्मिन्, अनयोः, एषु । तद्धिते सप्तम्याम् इह ।

कराम शून्य इदम् एवं अदस् शब्द के उत्तर भिस् के स्थान में ऐस् नहीं होता है ।

इदम्–भिस्–एभिः, इदम्–ङे अस्मै, इदम्–भ्याम् आभ्याम्, इदम्–भ्यस् एभ्यः, इदम्–ङसि अस्मात्, इदम्–भ्याम् आभ्याम्, इदम्-भ्यस् एभ्यः । पञ्चमी में तद्धित प्रत्यय होने से 'इतः' होता है ।

इदम्-ङस् अस्य, इदम्-ओस् अनयोः, इदम्-आम् एषाम्, इदम्-ङि अस्मिन्, इदम्-ओस् अनयोः, इदम्-सुप्-एषु सप्तमी में इदम् शब्द का तद्धित होकर 'इह' होता है ॥१४०॥

अदसो दस्य सः सौ, सो रौच् ॥१४१॥

असौ ।

सुँ परे रहने से अदस् शब्द के दराम सराम होता है, एवं सुँ के स्थान में औच् होता है ।

इस सूत्र से 'असौ' पद सिद्ध हुआ ॥१४१॥

अदो मात् परस्य सर्व्वेश्वरस्य उ ऊ यथेष्ट सिद्धिः ॥१४२॥

वामनस्य वामनः, त्रिविक्रमस्य त्रिविक्रमः, अमू ।

अदस्-औ, १३६ सूत्र से 'अमौ' होने के पश्चात् १४२ सूत्र से अदस् शब्द के मराम के पश्चात् सर्व्वेश्वर के स्थान में उऊ, होता है, किन्तु स्वेच्छा से नहीं होता है, वामन के स्थान में वामन, त्रिविक्रम के स्थान में त्रिविक्रम होता है, इस सूत्र से 'अमू' पद सिद्ध हुआ ॥१४२

अदस एत ई बहुत्वे, नतु कात ॥१४३॥

अमी, अमुम्, अमू, अमून्, अमुना, अमूभ्याम्, अमीभिः, अमुष्मै,
अमूभ्याम्, अमीभ्यः, अमुष्मात्, अमूभ्याम्, अमीभ्यः । तद्धिते
पञ्चभ्यां अमुतः, अमुष्य, अमुयोः, अमीषाम्, अमुष्मिन्,
तद्धिते अमुत्र, अमुयोः, अमीषु ।

अदस् शब्द के पश्चात् बहुवचन में एराम के स्थान में ईराम होता है, किन्तु कराम के पश्चात नहीं होता है । इससे 'अमी' पद हुआ । अदस्-अम्-अमुम्, अदस्-औ-अमू, अदस्-शस्-अमून्, अदस्-टा अमुना, 'हरितष्टाना' अदस्-भ्याम् 'अमूभ्याम्' अदस्-भिस् अमीभिः, अदस्-ङे अमुष्मै, अदस्-भ्याम्-अमूभ्याम्, अदस्-भ्यस्-अमीभ्यः, अदस्-ङसि अमुष्मात्-अमुतः, अदस्-भ्याम् अमूभ्याम्, अदस्-भ्यस् अमीभ्यः, अदस्-ङस् अमुष्य, अदस्-ओस् अमुयोः, अदस्-आम् अमीषाम्, अदस्-ङि अमुस्मिन्, अदस्-ओस् अमुयोः, अदस्-सुप् अमीषु-तद्धित में अमुत्र, हे असौ ! ॥१४३॥

अथ द्वि शब्दो, नित्यं बहुवचनान्तः—

न द्वेर्मः ॥१४४॥

द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः द्वयोः, ।

द्वि शब्द नित्य द्वि वचनान्त है । द्वि शब्द के दराम के स्थान में १३६ सूत्र से प्राप्त मराम नहीं होता है। द्वि-औ द्वौ, द्वि-औ द्वौ, द्वि-भ्याम् द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम, द्वाभ्याम्, चतुर्थी, पञ्चमी में, द्वि-उस् द्वयोः, द्वयोः, षष्ठी सप्तमी के द्विवचन में रूप होगा ॥१४४॥

युष्मदस्मदोस्त्वमहमादयः स्वादिना सह ।।१४५।।

त्रिष्वपि समानौ । त्वं, युवां, यूयम्, त्वां, युवां, युष्मान्, त्वया, युवाभ्याम्, युष्माभिः, तुभ्य, युवाभ्याम, युष्मभ्यम्, त्वत्, युवाभ्यां, युष्मत्, तव युवयोः युष्माकम्, त्वयि युवयोः युष्मासु ।

अस्मच्छब्दस्य—

अहम्	मया	मत्	मयि
आवाम्	आवाभ्याम्	आवाभ्याम्	आवयोः
वयम्	अस्माभिः	अस्मत्	अस्मासु
माम्	मह्यम्	मम	
आवाम्	आवाभ्याम्	आवयोः	
अस्मान्	अस्मभ्यम्	अस्माकम्	

स्वादि विष्णु भक्ति के सहित युष्मद् अस्मद् के स्थान में त्वम् अहम् प्रभृति आदेश होते हैं, युष्मद् एवं अस्मद् शब्द का रूप तीनों लिङ्गों में एक ही प्रकार है। प्रथम युष्मद् शब्द का रूप, द्वितीय अस्मद् शब्द का रूप लिखित है ।।१४५।।

अनयोर्विष्णुपदत्वे सत्येव संसारात् पूर्वमक् प्रत्ययः ।।१४६।।

त्वकम्, युवकाम्, यूयकम्, किन्तु त्रिसर्व्वेश्वरत्वे मध्यसर्व्वेश्वरात्, पूर्व्वमक्-युवकाभ्याम्, युष्मकाभिः । युष्मकभ्यम्, युष्मकाकम्, युष्मकासु ।

युष्मद् एवं अस्मद् शब्द का विष्णुपदत्व होने से ही संसार के पूर्व्व में अक प्रत्यय होता है, 'त्वं' पद के संसार के पूर्व्व में अक् प्रत्यय होने से 'त्वकम्' पद सिद्ध होता है। इस प्रकार युवाम्-अक् युवकाम्, यूयम्-अक् यूयकम । किन्तु उक्त पद में तीन सर्व्वेश्वर होने से मध्य सर्व्वेश्वर के पूर्व्व में अक् प्रत्यय होता है।

यथा—युवाभ्याम्-अक्-युवकाभ्याम् । युष्माभिः—अक् युष्मकाभिः । युष्मभ्यम्-अक् युष्मकभ्यम्, युष्माकम्-अक् युष्मकाकम् । युष्मासु-अक् युष्मकासु ।।१४६।।

युष्मान् युष्मभ्यं युष्माकमित्येषां वस्, अस्मान् अस्मभ्यं अस्माकमित्येषां नस् ॥१४७॥

हरिर्युष्मानवतु, हरिर्वोऽवतु। हरिर्युष्मभ्यं रोचतां हरिर्वो रोचताम्। हरिर्युष्माकम् सर्व्वस्वं, हरिर्वः। हरिरस्मान् अवतु, हरि र्नं इत्यादि।

युष्मान् एवं युष्मभ्यम्, युष्माकम्, तीन के स्थान में वस् होता है। अस्मान्, अस्मभ्यम्, अस्माकम् तीन के स्थान में नस् होता है।

हरिर्युष्मान्-अवतु वाक्य में युष्मान् वस् होकर हरिर्वोऽवतु हुआ, हरिर्युष्मभ्यं रोचतां, वाक्य में हरिर्वो रोचताम्। हरिर्युष्माकम्-सर्व्वस्वं, वाक्य में हरि र्वः सर्व्वस्वम्। हरिरस्मान्-अवतु वाक्य में हरि र्नः अवतु, हरिरस्मभ्यं रोचतां वाक्य में हरिर्नो रोचतां, हरिरस्माकं सर्व्वस्वं, वाक्य में हरि र्नः सर्व्वस्वम् ॥१४७॥

तुभ्यम् तवयोस्ते मह्यं ममयोर्मे ॥१४८॥

हरि स्तुभ्यं रोचतां, हरिस्ते। एवं हरिर्मह्यं-हरिर्मे।

तुभ्यं एवं तव के स्थान में ते, एवं मह्यं, मम के स्थान में मे, होता है।

हरिस्तुभ्यं-रोचतां इस वाक्य में हरिस्ते रोचताम्, हरिस्तव-हरिस्ते, हरिर्मह्यं-हरिर्म्मे, हरिर्मम वाक्य में हरिर्म्मे ॥१४८॥

त्वां मां त्वामा ॥१४९॥

हरिस्त्वां पातु हरिस्त्वा पातु, हरिर्मां पातु. हरिर्मा पातु ॥१४९॥

युष्मदस्मद् विष्णुपदयो र्वां-नौ, द्वितीया-चतुर्थी-षष्ठी-द्वित्वे, नतु समासे ।।१५०।।

हरिर्युवां पातु, हरिर्वाम् । हरिर्युवाभ्यां रोचतां, हरिर्वाम्.
हरिर्युवयो: स्वामी, हरिर्वाम् । हरिरावां पातु, हरिर्नौ ।
हरिरावाभ्यां रोचतां, हरिर्नौ । हरिरावयो: स्वामी,
हरिर्नौ, समस्तत्वे तु-हरिरस्मत् स्वामी ।

द्वितीया चतुर्थी षष्ठी के द्विवचन में युस्मद् शब्द के विष्णुपद के स्थान में वां, एवं अस्मद् शब्द के विष्णुपद के स्थान में नौ, होता है, किन्तु समास होने पर नहीं होता है ।

'हरिर्युवां पातु' इस वाक्य में हरिर्वां पातु, हरिर्युवां रोचतां वाक्य में हरिर्वाम्, हरिर्युवयो: स्वामी वाक्य में हरिर्वां, हरिरावां पातु, हरिर्नौ, हरिरावाभ्यां रोचतां, हरिर्नौ, हरिरावयो: स्वामी, हरिर्नौ. प्रयोग होता है, किन्तु समास होने पर उस प्रकार प्रयोग नहीं होता है ।

हरिरस्मत् स्वामी, इस प्रकार प्रयोग होता है ।।१५०।।

किम: को विष्णुभक्तौ साकस्यापि ।।१५१।।

क:, कौ, के, कम्, कौ, कान्-सर्व्ववत् । तद्धिते पञ्चम्यां कुत:,
सप्तम्यां कुत्र, क ।

अथ किम् शब्द—

विष्णु भक्ति परे रहने से किम् शब्द के स्थान में 'क' होता है, अक् प्रत्यय होने पर भी उसके सहित 'क' होता है ।

किम्-सुँ क:, किम्-औ कौ, किम्-जस् के, किम्-अम् कम्, किम्-औ कौ, किम्-शस् कान् । अवशिष्ट पद सर्व्व शब्द के समान होता है, तद्धित में- पञ्चमी में कुत:, एवं सप्तमी में कुत्र, क्व, होता है ।।१५१।।

अथ लक्ष्मीलिङ्गोदाहरणम्

'कृष्णदाप् लक्ष्म्याम्' इति वक्ष्यमाण-सूत्रात् सर्व्वा,
सर्व्वे इत्यादि राधावत् ।

कृष्णनाम-राधातः स्याप् वृष्णिषु, पूर्व्वस्य च वामनः ।।१५२

सर्व्वस्यै, ङसि ङसोः-सर्व्वस्याः, आमि सर्व्वासाम् । ङि-सर्वस्याम्,
तद्धिते पूर्व्ववत् एवं विश्वादयः ।

सा, ते, ताः, ताम्, ते ताः, या ये याः । एषा एते एताः ।
इदम् 'इयन्तु लक्ष्म्याम्' इयम् इमे इमाः, इमम् इमे इमाः, अनया
आभ्याम् आभिः, अस्यै, अस्याः, अस्याः, आसाम् ।
अदस् शब्दस्य सौ पु वत्, वृष्णिषु राधावत् । एकः सर्व्ववत् ।
किम्—का के काः, काम् के काः, सर्व्ववत् ।

'कृष्णदाप् लक्ष्याम्' वक्ष्यमाण इस सूत्र से सर्व्वशब्द के उत्तर आप् होने से सर्व्वा शब्द निष्पन्न हुआ, रूप यह है ।

सर्व्वा-सुँ-सर्व्वा, सर्व्वा-औ सर्व्वे, इत्यादि । राधा शब्द के समान पद होगा, वृष्णि परे रहने से कृष्णनाम राधा संज्ञक शब्द के उत्तर स्याप् होता है, एवं स्याप् के पूर्व्व का त्रिविक्रम वामन होता है । स्याप् का पराम इत् होता है ।

सर्व्वा-ङे, उक्त सूत्र से स्याप् एवं पूर्व आराम अराम होकर विष्णुभक्ति के मिलन से सर्व्वस्यै पद हुआ ।

सर्व्वा-ङसि सर्व्वस्याः, सर्व्वा-ङस् सर्व्वस्याः, सर्व्वा-आम् 'कृष्णनाम कृष्णराधाभ्यां सुड़ामि' सूत्र से सुट् होकर सर्व्वासाम् हुआ, सर्व्वा-ङि 'नीराधाभ्यां ङे राम्' सूत्र से 'सर्वस्याम्' हुआ, तद्धित में 'सर्व्वत्र' होगा । इसी प्रकार विश्व प्रभृति शब्द का रूप होगा ।

'तदादि सप्तानां संसारस्यारामः, स्वादो,दस्य च मः, तदादेस्तः सः सौ' इस सूत्र से तदादि सात का संसार के स्थान में अराम होने के

पश्चात् आप् होता है। 'सुँ' परे रहने से तदादि शब्द का तराम सराम होता है।

तद्-सुँ उक्त सूत्र से तद् के स्थान में सराम होने के पश्चात् आप् होकर सा, हुआ, तद्-औ-अराम एवं आप् ई, ए, होकर ते, हुआ, तद्-जस्-अराम् एवं आप होकर 'ताः' हुआ। यद्-सुँ-या, यद्-औ-ये, यद्-जस् याः, एतद्-सुँ-एषा, एतद्-औ एते, एतद्-जस् एताः। इदम् शब्द, लक्ष्मीलिङ्ग में इयम् होता है, इदम्-सुँ इयम्, इदम्-औ इमे, इदम्-जस् इमाः, इदम्-अम्-इमाम्, इदम्-औ इमे, इदम्-शस् इमाः, इदम्-टा 'इदमोऽकरामस्य अनष्टौसोः' सूत्र से इदम् के स्थान में अन, अनन्तर आप् होकर अनया, इदम्-भ्याम्-आभ्याम्, इदम्-भिस् आभिः, इदम्-ङे अस्यै, इदम्-ङसि अस्याः, इदम्-आम् आसाम्।

अदस्-सुँ पुरुषोत्तमलिङ्गवत् असौ होगा, वृष्णि परे रहने से राधा शब्द के समान रूप होगा। एक शब्द का रूप सर्व शब्द के समान होगा। किम् शब्द का रूप—

किम्-सुँ का, किम् औ के, किम्-जस् काः, किम्-अम्-काम्, किम्-औ के, किम्-शस् काः, सर्व शब्द के तुल्य रूप होगा ॥१५२॥

अथ ब्रह्माणि

सर्व्वं, सर्व्वे, सर्व्वाणि, पुनस्तद्वत्। तृतीयादौ पुरुषोत्तमवत्। अनन्तर ब्रह्मलिङ्ग, सर्व-सुँ-सर्व्वम्, सर्व-औ सर्व्वे, सर्व-जस् सर्व्वाणि, द्वितीया में इसी प्रकार होगा, तृतीयादि में पुरुषोत्तमवत् होगा।

अन्यादिभ्यस्तुक् स्वमोर्ब्रह्मणि ।।१५३।।

उकावितौ, अन्यद् अन्यद् अन्ये, अन्यानि। पुनस्तद्वत्। तत् ते तानि। इदम् इमे, इमानि। अदः अमू, अमूनि। किं के कानि, पुनस्तद्वत्।

ब्रह्म संज्ञक होने पर अन्य प्रभृति शब्द के उत्तर सुँ एवं अम् के स्थान में तुक् होता है, तुक् का उक् इत् होता है।

अन्य-सुँ अन्यत्-अन्यद्, अन्य-औ अन्ये। अन्य-जस् अन्यानि। द्वितीया में भी इस प्रकार रूप होगा। एकतर शब्द भिन्न एकादश शब्द अन्यादि हैं।

तद्-सुँ तत्, तद्-औ ते, तद्-जस् तानि, इदम्-सुँ इदम्, इदम्-औ इमे, इदम्-जस् इमानि । अदस्-सुँ अदः, अदस्-औ अमू, अदस्-जस् अमूनि। किम्-सुँ किम्, किम्-औ के, किम्-जस् कानि, द्वितीया में इस प्रकार रूप होगा ॥१५३॥

अव्ययात् स्वादे र्महाहरः ॥१५४॥

स्वरादि, चादि, वदापि । अव्ययाः खलु वाचका, द्योतकाश्च ।

तत्र वाचकाः- स्वः प्रातरित्यादयः ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्व्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्व्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

(इति प्राचीनोक्तम्)

सुन्दरं स्वः, सुन्दरे स्वः, सुन्दराणि स्वः, इत्यादयः खलु सर्व्वे निश्चिताः, द्योतकाः- च, वा, ह, वै, इत्यादयः ।

अव्यय के पश्चात् स्वादि विष्णुभक्ति का महाहर होता है । 'स्वर्' प्रभृति, 'वत्' प्रभृति, च प्रभृति, एवं तद्धित प्रत्ययान्त, क्तवा प्रत्ययान्त मान्तकृत् प्रत्ययान्त शब्द समूह अव्यय हैं । अव्यय- दो प्रकार हैं, वाचक एवं द्योतक । स्वः प्रातः प्रभृति वाचक हैं, लिङ्ग वचन एवं विभक्ति समूह में जिसका रूप एक ही प्रकार होता है, जिसकी विक्रिया नहीं होती है, उसको अव्यय कहते हैं, यह कथन प्राचीन विद्वानों का है ।

वाचक अव्यय स्वः प्रभृति हैं, अव्यय का विशेषण में ब्रह्मलिङ्ग होता है । सुन्दरं स्वः, यहाँ 'स्वः' सुँप्रत्ययान्त है ।

सुन्दरे स्वः, स्वः औ प्रत्ययान्त है, सुन्दराणि स्वः, स्वः जस् प्रत्ययान्त है । च, वा, ह, अह, वै, तु, अपि, प्रभृति अव्यय एवं प्रादि द्योतक होते हैं । चादि की निपात संज्ञा होती है, इसमें द्योत्यता निमित्त अर्थ समूह विद्यमान हैं ॥१५४॥

इति श्री संक्षेप हरिनामामृताख्ये वैष्णव व्याकरणे विष्णुपद प्रकरणं द्वितीयं सम्पूर्णम् ॥२॥

[तृतीयम्]

अथ आख्यात-प्रकरणम्

प्रवर्त्तन्ते क्रियाःसर्व्वा यतोऽर्व्वाचीन वस्तुषु ।

हरेस्तस्यैव लीलास्ता निरूप्यन्ते यथामति ॥

अथ धातु जानि विष्णुपदानि भू-सनन्ताद्या धातवः ॥१॥

धातोः ॥२॥

अधिकारोऽयम् । पूर्व्वोत्तर-प्रकरण व्यापी अधिकारः, इति । प्राङ्निमित्तादि भेदेन चतुर्व्विधः । तत्र कार्य्यश्च संज्ञा-विधि-निषेध भेदेन त्रिविध मिति षड् विधः । स च सजातीय-विजातीयानेकाधिकार व्यापी वासुदेव संज्ञः । तदवान्तरानेकाधिकार व्यापी 'विभु' संज्ञः । केवलः 'प्रभु' संज्ञः, तत्र वासुदेवोऽयम् ॥२॥

आख्यात प्रकारण-तृतीय प्रकरण है ।

जिन परमेश्वर से आधुनिक वस्तु समूह में क्रिया समूह अवस्थित होती रहती हैं, उन श्रीहरि की लीला रूप क्रिया समूह का साधन यथामति करते हैं ।

अनन्तर धातुजात विष्णुपद समूह का निरूपण करते हैं । भ्वादिगण एवं सनादि प्रत्ययान्त की धातु संज्ञा होती है । यहाँ तक धातु का अधिकार है, यह अधिकार-चतुर्व्विध हैं, प्राङ् निमित्त, कार्य्यी, कार्य्य, एवं पर निमित्त । इसके मध्य में कार्य्याधिकार, संज्ञा विधि निषेध भेद से त्रिविध हैं, समष्टि में ये षड् विध हैं । इसके मध्य में सजातीय विजातीय अनेकाधिकार व्यापी अधिकार का नाम वासुदेव है, वासुदेव के अवान्तर अनेकाधिकार व्यापी अधिकार का नाम विभु है । केवल अधिकार का नाम प्रभु है । इसके मध्य में धातु का अधिकार वासुदेव संज्ञक है, किन्तु २ सूत्र में 'धातोः' सम्बन्ध सामान्य निर्द्देश हेतु यथासम्भव पञ्चम्यादि अर्थ को जानना होगा ॥२॥

तत्र प्रायो वर्त्तमानकाले तिवादयोऽष्टादशाच्युत नामानः ।।३।।

तिप्, तस्, अन्ति, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस् । ते आते अन्ते
से आथे ध्वे, ए वहे महे । एते वर्त्तमान इत्यन्ये, लटित्येके ।

धातु के उत्तर प्रायशः वर्त्तमान काल में तिवादि १८ प्रत्यय होते हैं। तिवादि इस प्रकार हैं– तिप् तस् अन्ति, सिप् थस् थ, मिप् वस् मस् ।

ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे । अपर के मत में इसका नाम 'वर्त्तमान' एवं 'लट्' है ।।३।।

विधिसम्भावनादौ यादादयो विधिनामानः ।।४।।

यात् याताम् युस्, यास् यातम् यात, याम् याव् याम ।
ईत ईयाताम् ईरन्, ईथास् ईयाथाम्, ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि ।
एते सप्तमीत्यन्ये, विधि लिङित्येके ।

विधि एवं सम्भावनादि अर्थ में विधि नामक यादादि अष्टादश प्रत्यय होते हैं । यादादि यथा—

यात् याताम् युस्, यास् यातम् यात, याम् याव याम ।
ईत ईयाताम् ईरन्, ईथास् ईयाथां ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि, अन्य के मत में इसका नाम 'सप्तमी' एवं 'विधिलिङ्' है ।।४।।

आशीः प्रेरणादौ तुवादयो विधातृ नामानः ।।५।।

तुप् ताम् अन्तु, हि तम् त, आनिप्, आवप् आमप्, ताम् आताम्
अन्ताम्, स्व आथाम् ध्वम्, ऐप्, आवहैप्, आमहैप् ।
एते पञ्चमीत्यन्ये, लोडित्येके ।

आशीर्व्वाद एवं प्रेरणादि अर्थ में विधातृ नामक तुवादि १८ प्रत्यय होते हैं । तुप् ताम् अन्तु, हि, तम्, त, आनिप् आवप् आमप् । ताम् आताम् अन्ताम्, स्व आथाम् ध्वम्, ऐप् आवहैप् आमहैप् । अपर के मत में पञ्चमी एवं 'लोट' संज्ञा है ।।५।।

अनद्यतनभूते दिवादयो भूतेश्वर-नामानः ॥६॥

दिप् ताम् अन्, सिप् तम् त, पम्, व, म । त आताम् अन्त,
थास आथाम् ध्वम्, इ, वहि महि । एते ह्यस्तनी, लङित्येके ।

अनद्यतन भूतकाल में भूतेश्वर नामक दिवादि १८ प्रत्यय होते हैं ।
दिप् ताम् अन् । सिप् तम् त । पम व म । त आताम् अन्त । थास्
आथाम् ध्वम् इ वहि महि । अपर के मत में ह्यस्तनी,एवं लङ् है॥६॥

भूते दिवादयो भूतेश-नामानः ॥७॥

एते अद्यतनीत्यन्ये, लुङित्येके ।

भूतकाल में भूतेश नामक उक्त दिवादि अष्टादश प्रत्यय होते हैं ।
अन्य के मत में अद्यतनी एवं लुङ् संज्ञा है ॥७॥

परोक्षभूते णलादयोऽधोक्षज-नामानः ॥८॥

णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म । ए, आते, इरे,
से आथे, ध्वे, ए वहे महे । एते परोक्षेत्यन्ये, लिडित्येके ।

परोक्ष भूतकाल में अधोक्षज नामक णलादि १८ प्रत्यय होते हैं ।
णल् अतुस् उस् । थल् अथुस् अ । णल् व म । ए आते इरे । से आथे
ध्वे । ए वहे महे । अपर के मत में परोक्ष एवं लिट् संज्ञा है ॥८॥

आशिषि यात् यास्तामित्यादयः कामपाल-नामानः ॥९॥

यात् यास्ताम् यासुस्, यास् यास्तम् यास्त, यासम्, यास्व यास्म ।
सीष्ट, सीयास्ताम् सीरन्, सीष्ठास्, सीयास्थाम् सीध्वम्, सीय,
सीवहि, सीमहि । एते आशीरित्यन्ये, आशी लिङित्येके ।

आशीर्व्वादापि अर्थ में कामपाल नामक 'यात् यास्ताम्' इत्यादि
१८ प्रत्यय होते हैं ।

यात् यास्ताम् यासुस् । यात् यास्तम् यास्त् । यासम् यास्व यास्म ।
सीष्ट सीयास्ताम् सीरन् । सीष्ठास् सीयास्तां सीध्वम् । सीय सीवहि
सीमहि । अन्य मत में आशीः एवं आशी लिङ् संज्ञा है ॥९॥

अर्हार्थेऽनद्यतन-भविष्यति च तादयो बालकल्कि नामानः॥१०

ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् तास्मस् ।
ता तारौ तारस्, तासे ता साथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे ।
एते श्वस्तनीत्यन्ये, लुटित्येके ।

योग्यार्थे एवं अनद्यतन भविष्यत् काल में बालकल्कि नामक अष्टादश प्रत्यय होते हैं ।

ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ । तास्मि तास्वस् तास्मस् । ता तारौ तारस्, तासे तासाथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे । अन्य मत में 'श्वस्तनी' एवं लुट् संज्ञा है ॥१०॥

भविष्यत् काले स्यत्यादयः कल्कि नामानः ॥११॥

स्यति स्यतस् सन्ति, स्यसि स्यथस् स्यथ, स्यामि स्यावस् स्यामस् ।
स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे ।
एवे भविष्यन्ती इत्यन्ये, लृटित्येके ।

भविष्यत् काले कल्कि नामक स्यत्यादि १८ प्रत्यय होते हैं, स्यति स्यतस् स्यन्ति । स्यसि स्यथस् स्यथ । स्यामि स्यावस् स्यामस् । स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे । स्ये स्यावहे स्यामहे । अपर के मत में भविष्यति एवं लृट् नाम है ॥११॥

साकाङ्क्षं यत्र क्रियातिक्रमो निर्दिश्यते, तत्र कार्य्यकारणयोः स्यदादिका अजित-नामानो भूते भविष्यति च ॥१२॥

स्यत् स्यतां स्यन्, स्यस् स्यतं स्यत, स्यम् स्याव स्याम ।
स्यत, स्येतां स्यन्त, स्यथास् स्येथां स्यध्वम्, स्ये स्यावहि स्यामहि ।
एते क्रियातिपत्तिरित्यन्ये, लृङित्येके ।

जहां आकांक्षा के सहित क्रिया की अनिष्पत्ति सूचित होती है, वहाँ कार्य्य कारण सूचित होने से अतीत काल में अजित नामक अष्टादश प्रत्यय होते हैं ।

स्यत् स्यतां स्यन्, स्यस् स्यतम् स्यत। स्यम् स्याव स्याम। स्यत स्येताम् स्यन्त, स्यथास् स्येथाम् स्यध्वं, स्ये स्यावहि स्यामहि। अपर मत में क्रियातिपत्ति एवं लृङ् संज्ञा है।

अच्युताद्यस्तिङित्येके, आख्यातमिति सर्व्वे। सर्व्वत्र पराम इत्, णलौच, दिप् सिपोरिरामश्च।

अच्युतादि दशलकार को तिङ् कहते हैं, किन्तु सभी व्यक्ति आख्यात कहते हैं। सर्व्वत्र पराम इत होता है, एवं णराम, लराम भी इत् होता है। दिप् सिप् का इराम भी इत होता है ॥१२॥

पित् पृथुः ।१३। णित् नृसिहः ।१४। कित् कपिलः ।१५। ङिन्निर्गुणः ।१६। किच्च ङिच्च कंसारिः ।१७। शित् शिवः॥१८

तिवादि-नव नवानां पूर्व पूर्वाणि परपद-संज्ञानि ।१९।

तिप् तस् अन्ति-इत्यादीनि।

उत्तरोत्तराण्यात्मपद-संज्ञकानि ॥२०॥

ते आते अन्ते-इत्यादीनि।

पित्-पृथु संज्ञक होता है ।१३। णित्-नृसिह संज्ञक होता है ।१४। कित्-कपिल होता है।१५। ङित्-निर्गुण होता है ।१६। कित् एवं ङित् कंसारि संज्ञक होता है ।१७। शित् शिव होता है ।१८।

पूर्व्व पूर्व्व तिप् प्रभृति ९ की पदपद संज्ञा होती है, अपर व्यक्ति परस्मै पद कहते हैं, जैसे—तिप् तस् अन्ति इत्यादि ९ परपद एवं यात् यातां युस् इत्यादि ९ परपद हैं, इस प्रकार अन्य लकार में जानना होगा ॥१९॥

उत्तरोत्तर ते प्रभृति ९ का नाम आत्मपद है, अपर के मत में आत्मने पद नाम है। जैसे- ते आते अन्ते, इत्यादि ९ आत्मपद, एवं ईत ईयाताम् ईरमु ९ आत्मपद है ॥२०॥

नवकेषु त्रीणि त्रीणि प्रथम-मध्यमोत्तम-पुरुष-संज्ञकानि ।।२१।।

यथा-तिप्, तस्, अन्ति, इति प्रथम पुरुषः, सिप् थस्, थ, इति मध्यमः, मिप्, वस् मस्, इति उत्तमः ।

उक्त परपद एवं आत्मपद के ६, ६, के मध्य में तीन, तीन की प्रथम, मध्यम, उत्तम सज्ञा होती है । जिस प्रकार, तिप् तस् अन्ति की प्रथम पुरुप संज्ञा है । सिप् थस् थ, की मध्यम पुरुष संज्ञा है । मिप्, वस्, मस् की उत्तम पुरुष संज्ञा है, इस प्रकार-ते, आते, अन्ते, इत्यादि को भी जानना होगा ।।२१।।

अच्युतादयः पञ्च शिवश्च कृष्ण धातुकाः ।।२२।।

सार्व्वधातुकानीत्येके ।

अच्युतादि के ५ एवं शिव संज्ञक प्रत्यय का नाम कृष्णधातुक है, अपर के मत में 'सार्व्वधातुक' नाम है ।।२२।।

अन्ये प्रत्यया राम-धातुकाः ।।२३।।

आर्द्ध धातुकानीत्येके ।

उपरोक्त प्रत्यय भिन्न प्रत्यय का नाम रामधातु है । अन्य मत में इसका नाम 'आर्द्धधातु' है ।।२३।।

परपदानि कर्त्तरि ।।२४।।

कर्त्तृ वाच्य में धातु का परपद होता है ।।२४।।

आत्मपदिभ्य आत्मपदानि ङितश्च ।।२५।।

आत्मपदि धातु के उत्तर एवं ङित् धातु के उत्तर आत्मपद प्रत्यय होता है ।।२५।।

उभयपदिभ्य उभयपदानि ञितश्च ।।२६।।

उभयपदि धातु के उत्तर एवं ञित् धातु के उत्तर उभय पद होता है ।।२६।।

आत्मपदान्येव कर्म्मणि ।।२७।।

कर्म्मणि वाच्य में केवल आत्मनेपद होता है ।।२७।।

आत्मपद-प्रथम पुरुषैक वचनमेव भावे ॥२८॥

भावो धात्वर्थः। कर्त्तृ कर्म्मणी वक्ष्येते। अत्र भुवादिगणे परपदिनां पदानि दर्श्यन्ते। भू-सत्तायाम्, सत्ता-विद्यमानता। तत्र कर्त्तरि एक वचनादयः स्वादिवज् ज्ञेयाः।

भाव वाच्य में आत्मपद के प्रथम पुरुष का एकवचन होता है। केवल धात्वर्थ का नाम भाव है। कर्त्ता एवं कर्म्म का विवरण कहेंगे। इसके मध्य में भुवादिगण में परपदि धातु समूह के पदों का वर्णन करते हैं। भू-सत्तायां, सत्ता-विद्यमानता, उसके मध्य में कर्त्तरि वाच्य में एकवचनादि स्वादि प्रकरण के समान जानना होगा ॥२८॥

भू-तिप् इति स्थिते प् इत्—

शप् कृष्ण धातुके ॥२९॥

शपावितौ। अराम शेषः।

भू-तिप्- 'प्' इत् होता है।

कृष्ण धातु परे रहने से शप् होता है। इसका नाम-विकरण है। 'शप्' इत् होता है, अराम अवशेष रहता है ॥२९॥

धातोरन्तस्य गोविन्दः प्रत्यये ॥३०॥

भवति, भवतः।

प्रत्यय परे रहने से धातु के अन्त सर्व्वेश्वर का गोविन्द होता है। गोविन्द—'इद्वयस्य ए' सूत्र से होता है। 'ओ अव्' होकर 'भवति' पद हुआ। भू-तस् शप्, गोविन्द, अव्, विष्णुसर्ग होकर 'भवतः' पद हुआ ॥३०॥

अरामहर ए—अयोरविष्णुपदान्ते ॥३१॥

भवन्ति।

भू-अन्ति, शप्-गोविन्द अव्, के पश्चात्—अविष्णुपदान्त में एराम एवं अराम परे रहने से अराम का हर होता है। इस सूत्र से 'भवन्ति' पद सिद्ध हुआ ॥३१॥

अ आ वमोः ।।३२।।

भवामि, भवावः, भवामः, अकर्म्मकोऽयम्, यत.—

सत्ता वृद्धि विशुद्धि सिद्धि शयन स्थानासने भाषणे
लज्जा जीवन रोदने च हदने नृत्ये विलासे क्रुधि ।
त्रास स्यन्द निवास शोष मरण स्पर्द्धा विहारेष्वपि
ज्ञातो धातुरकर्म्मकः क्षयमदोद्वेग–प्रकम्पेष्वपि ।।
उपलक्षणञ्चैतत् ।

वराम एवं मराम परे रहने से अराम आराम होता है ।

भू-मिप्-भवामि, भू-वस्-भवावः, भू-मस् भवामः ।

भू धातु अकर्मक है, कारण जिस धातु का अर्थ विद्यमानता है, वह अकर्म्मक है, एवं वृद्धि, शुद्धि, सिद्धि. शयन, अवस्थान, दीप्ति, लज्जा, जीवन, क्रन्दन, मल त्याग करना, नृत्य करना, स्खलन, क्रोध, त्रास, क्षरण, वासकरण, शोषण, मरण, स्पर्द्धा करना, विहार, क्षय, मद, उद्वेग, कम्प अर्थ युक्त धातु अकर्म्मक है, यह उपलक्षण है । जागरणादि अर्थ युक्त धातु भी अकर्म्मक है ।।३२।।

यक् कृष्णधातुके भाव-कर्म्मणोः ।।३३।।

क् इत् ।

भाव वाच्य एवं कर्म्म वाच्य में कृष्ण धातु परे रहने से धातु के उत्तर यक् होता है । यक् का क् इत् होता है । भू-ते इस सूत्र से यक् हुआ है ।।३३।।

ईशस्य न गोविन्द-वृष्णीन्दौ कंसारिषु ।।३४।।

भूयते ।

कंसारि परे रहने से ईश के गोविन्द एवं वृष्णीन्द्र नहीं होते हैं, इस सूत्र से गोविन्द नहीं हुआ । अनन्तर 'भूयते' पद निष्पन्न हुआ ।।३४।।

अत आ ईस्तथयोः ।।३५।।

भूयेते, भूयन्ते, भूयेसे, भूयेथे, भूयध्वे, भूये, भूयावहे, भूयामहे ।

तराम एवं थराम परे रहने से अराम के पश्चात् आराम ईराम होता है । भू–आते–भूयेते, भू–अन्ते–भूयन्ते, भू-से भूयसे, भू-आथे-भूयेथे, भू-ध्वे भूयध्वे, भू-ए भूये, भू-वहे भूयावहे, भू-महे भूयामहे ।।३५।।

अतो विधौ कर्त्तरि—

अतो या ईः ।।३६।।

भवेत्, भवेताम् ।

अनन्तर विधि अर्थ में कर्त्तरि प्रयोग ।
अराम के उत्तर या ईराम होता है ।
भू-यात्-भवेत्, भू-याताम् भवेताम् ।।३६।।

अत इट् युसि ।।३७।।

भवेयुः भवेः, भवेतम्, भवेत ।

युस् परे रहने से अराम के उत्तर इट् होता है ।
भू-युस भवेयुः, भू-यास् भवेः, भू-यातम् भवेतम्, भू-यात भवेत ।।३७।।

अतो याम इयम् ।।३८।।

भवेयम्, भवेव, भवेम । भावे-भूयेत, भूयेयाताम्, भूयेरन्, भूयेथाः, भूयेयाथाम्, भूयेध्वम्, भूयेय, भूयेवहि, भूयेमहि ।

अराम के पश्चात् याम इयम् होता है ।

भू-याम् भवेयम्, भू-याव भवेव, भू-याम भवेम ।

भाव वाच्य में—भू-ईत भूयेत । भू-ईयाताम् भूयेयाताम्, भू-ईरन्-भूयेरन्, भू-ईथास् भूयेथाः, भू-ईयाथाम् भूयेयाथाम्, भू-ईध्वम् भूयेध्वम्, भू-ईय भूयेय, भू-ईवहि भूयेवहि, भू-ईमहि भूयेमहि ।।३८।।

अथ विधातरि कर्त्तरि-भवतु—

तुह्योस्तातङाशिषि वा सर्व्वत्र ।।३६।।

भवतात् वा, भवताम्, भवन्तु ।

अनन्तर विधातृ के कर्तृवाच्य में रूप—

भू-तुप्-भवतु, आशीर्व्वाद अर्थ में सर्व्वत्र तुप् एवं हि के स्थान में विकल्प में तातृङ होता हैं। इससे एकबार तातङ् होकर 'भवतात्' पद हुआ। भू-ताम् भवताम्, भू-अन्तु भवन्तु ।।३६।।

अतो हे र्हरः ।।४०।।

भव, भवतात् वा, भवतम्, भवत, भवानि, भवाव, भवाम ।

अराम के उत्तर हि का हर होता है।

भू-हि भव, भवतात्, भू-तम् भवतम्, भू-त भवत, भू-आनिप् भवानि, भू-आवप्-भवाव, भू-आमप्-भवाम ।।४०।।

प्रादय उपेन्द्र-संज्ञा धातुयोगे, ते च प्राक् ।।४१।।

प्रपरापसमन्ववनिर्दुरभि-
व्यधिसूदति निप्रति पर्य्यपयः ।
उप-आङिति विंशतिरेष सखे
उपसर्गविधिः कथितः कविना ।।

प्राद्यव्ययात् 'स्वादेर्महाहरः प्रभवति ।।

धातु के योग से प्रादि की उपेन्द्र संज्ञा होती है। प्रादि का प्रयोग धातु के पूर्व में होता है। प्राचीन के मत में प्रादि की उपसर्ग संज्ञा है।

प्रादिगण यथा— प्र, परा, अप, सम्, अनु अव्, निर् दुर् अभि, वि, अधि, सु, उद्, अति, नि, प्रति, परि,अपि, उप, आङ्। ये विंशति हैं, आङ् का ङ् इत् होता है, भू धातु का प्रपूर्व्वत्व होने से प्रादि हेतु अव्यय के उत्तर स्वादि का महाहर होता है- प्र-भवति-प्रभवति, प्रभवतः, इत्यादि ।।४१।।

उपेन्द्रात् णोपदेशस्य णत्वम् ।।४२।।

हिनु मीनानिपाञ्च ।।४३।।

प्रभवाणि, दुरुपसर्गस्य प्रतिषेध इति भाष्यम्-दुर्भवानि ।

भाव कर्मणोः—

भूयताम्, भूयेतां, भूयन्ताम्, भूयस्व, भूयेथाम्, भूयध्वम्, भूयै, भूयावहै, भूयामहै ।।४२-४३।।

उपेन्द्र स्थित णत्व का निमित्त होने से णोपदेश नराम का णत्व होता है। उपेन्द्र स्थित णत्व का निमित्त होने से हिनु एवं मीना एवं आनिप् प्रत्यय का णत्व होता है।

प्र-भवानि-प्रभवाणि, दुर् उपसर्ग पश्चात् पूर्वोक्त णत्व नहीं होता है, यही भाष्यकार का मत है। दुर्भवानि ।

भाव एवं कर्मणि वाच्य में रूप इस प्रकार है- भू-ताम् भूयताम्, कर्मणि वाच्य में- भू-ताम् भूयताम्, भू-आताम्, भूयेताम्, भू-अन्ताम्-भूयन्ताम्, भू-स्व भूयस्व, भू-आथाम् भूयेथाम्, भू-ध्वम् भूयध्वम्, भू-ऐप् भूयै, भू-आवहैप् भूयावहै, भू-आमहैप्-भूयामहै ।।४२-४३।।

धातोः पूर्वमत् भूतेश्वर-भूतेशाजितेषु ।।४४।।

अभवत् अभवताम् अभवन्, अभवः, अभवतम्, अभवत, अभवम् अभवाव, अभवाम। भावे कर्म्मणि च-अभूयत, अभूयेताम् अभूयन्त, अभूयेथाः अभूयेथाम्, अभूयध्वम्, अभूये अभूयावहि, अभूयामहि ।

भूतेश्वर भूतेश एवं अजित परे रहने से धातु के पूर्व में अत् होता है। भू-दिप्-अभवत् भू-ताम् अभवताम्, भू-अन् अभवन्, भू-सिप् अभवः, भू-तम् अभवतम्, भू-त अभवत, भू-पम् अभवम्, भू-व अभवाव, भू-म अभवाम। भाव वाच्य एवं कर्म्मणि वाच्य में- भू-त अभूयत, भू-आताम् अभूयेताम्, भू-अन्त, अभूयन्त, भू-थास् अभूयथाः, भू-आथाम् अभूयेथाम्, भू-ध्वम् अभूयध्वम्, भू-इ अभूये, भू-वहि अभूयावहि, भू-महि अभूयामहि ।।४४।।

भूतेशे कर्त्तरि—

सि र्भूतेशे ।।४५।।

भूतेश का कर्त्तृ वाच्य में रूप— भू-दिप् अदागम भूतेश परे रहने से धातु के उत्तर में सि होता है, सि का इराम इत् होता है, अतएव सराम रहता है। इससे 'सि' हुआ ।।४५।।

इण् स्था-पिबति दामोदर-भूभ्यः से र्महाहरः परपदे ।।४६।।

इण् गतौ, स्था, गतिनिवृत्तौ, पा पाने, दामोदर अर्थात् दा, धा, एवं भू-सतायाम्, इन सब धातु के उत्तर में स्थित परपद में 'सि' का महाहर होता है ।।४६।।

दाप् दैप् दीङो विना दा धा दामोदर संज्ञाः ।।४७।।

दाप् दैप् दीङ् व्यतीत दा धा का नाम दामोदर है ।।४७।।

भुवो न गोविन्दः सिलुकि ।।४८।।

अभूत्, अभताम् ।

सिलुक्-अर्थात् सि का महाहर होने से भू धातु का गोविन्द नहीं होता है। अभूत्, भू-ताम् अभूताम् ।।४८।।

भुवो भुव् भूतेशाधोक्षज-सर्व्वेश्वरे ।।४९।।

अभूवन्, अभूः, अभूतम्, अभूत, अभूवम्, अभूव, अभूम ।

भूतेश एवं अधोक्षज के सर्व्वेश्वर परे रहने से भू धातु के स्थान में भूव् होता है । भू-अन् अभूवन्, भू-सिप्-अभूः, भू-तम्-अभूतम्, भू-त अभूत, भू-पम-अभूवम्, भू-व अभूव, भू-म-अभूम ।।४९।।

इण् भूतेश-ते भावकर्म्मणोः ।।५०।।

भाव वाच्य में एवं कर्म्मणि वाच्य में भूतेश का 'त' परे रहने से इण् होता है ।।५०।।

अन्तस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे ।।५१।।

नृसिंह परे रहने से अन्त सर्वेश्वर का वृष्णीन्द्र होता है ।।५१।।

इणस्तो हरः ।।५२।।

भू-त-अभावि ।।५०-५२।।

इट् रामधातुके ।।५३।।

राम धातु परे रहने से धातु के उत्तर इट् होता है ।।५३।।

सहज-सर्व्वेश्वरान्त-हन-ग्रह-दृशिभ्य इण्वदिङ् वा

स्यसि-कामपाल-कालकल्किषु भाव-कर्म्मणोः ।।५४।।

अभाविषाताम्, अभविषाताम् ।।५३-५४।।

भाव एवं कर्म्मवाच्य में स्य सि कामपाल एवं बालकल्कि परे रहने से हन् ग्रह् दृश, एवं सहज सर्व्वेश्वरान्त धातु के उत्तर विकल्प में इण्वत् इट् होता है । भू-आताम् अभाविषाताम्, अभविषाताम् ।।५३-५४।।

अरामान्यवर्णादन्ते अन्तामन्तानां नस्य हरः ।।५५।।

अराम भिन्न वर्ण के पश्चात् अन्ते अन्ताम् अन्त, इन सबके नराम हर होता है ।।५५।।

शीङो रुट् च ।।५६।। वेत्ते रुट् तु वा ।।५७।।

उक्त नराम का हर होने से शीङ् धातु के उत्तर रुट् होता है ।।५६।।

उक्त नराम का हर होने से विद् धातु के उत्तर रुट् विकल्प में होता है ।

अभाविषत, अभविषत, अभाविष्ठाः, अभविष्ठाः, अभाविषाथाम् अभविषाथाम् ।

भू-अन्त अभाविषत, अभविषत, भू-थास् अभाविष्ठाः, अभविष्ठाः, भू-आथाम् अभाविषाथाम् अभविषाथाम् ।।५७।।

सस्य हरो धे ॥५८॥

ईश्वर हरिमित्र-हकारेभ्यः सीध्वं भूतेशाधोक्षजानां धस्य ढः॥५९

इट् व्यवधाने तु वा ॥६०॥

अभाविढ्वम्, अभाविध्वम्, अभविढ्वम्, अभविध्वम्, अभाविषि, अभविषि, अभाविष्वहि अभविष्वहि, अभाविष्महि अभविष्महि ॥५८-६०॥

धराम परे रहने से सराम का हर होता है ॥५८॥

ईश्वर हरिमित्र एवं हकार के पश्चात् षीध्वं, भूतेशाधोक्षजक का धराम ढराम होता है ॥५९॥

इट् का व्यवधान होने पर उक्त ढरामादेश विकल्प में होता है। भू-ध्वम्-अभाविढ्वम् अभाविध्वम्, अभविढ्वम् अभविध्वम्। भू-इ अभाविषि, अभविषि, भू-वहि अभाविष्वहि, अभविष्वहि, भू-महि अभाविष्महि अभविष्महि ॥५८-६०॥

अधोक्षजे कर्त्तरि—

धातोर्द्विर्व्वचनमधोक्षज-सन्नङ् यङ्षु ॥६१॥

पूर्व्वो नरः, परो नारायणः ॥६२॥

भू नरस्य भोऽधोक्षजे ॥६३॥

हरि खड्गस्य हरिकमलं, हरिघोषस्य हरिगदा नरस्य ॥६४॥

बभूव, बभूवितुः बभूवुः, बभूविथ, बभूवथुः, बभूव, बभूव, बभूविव, बभूविम। भाव कर्मणोः–बभूवे, बभूवाते बभूविरे, बभूविषे, बभूवाथे, बभूविढ्वे बभूविध्वे, बभूवे, बभूविवहे, बभूविमहे ॥६१-६४॥

अनन्तर अधोक्षज के कर्त्तृ वाच्य में रूप—

भू-णल् णल् इत् होता है, अराम रहता है। तत्पश्चात् 'भुवोभूव्' सूत्र से भू स्थान में भूव् हुआ।

अधोक्षज, सन्, अङ् एवं यङ् परे रहने से धातु का द्विर्वचन होता है ॥६१॥

धातु का जो द्विर्वचन होता है, वह नर संज्ञक वर्ण भिन्न, अर्थात् द्विरुक्त वर्ण भिन्न सर्व्वेश्वर पर्य्यन्त आदि भाग का होता है। द्विर्वचन युक्त धातु का पूर्वभाग अर्थात् द्विरुक्त भाग नर संज्ञक होता है। द्विरुक्ति का पर भाग नारायण संज्ञक होता है ॥६२॥

अधोक्षज परे रहने से भू धातु के नर के स्थान में भ होता है ॥६३॥

इस सूत्र से द्विरुक्त भू-भ हुआ।

नर, हरि खड्ग के स्थान में हरिकमल होता है, एवं हरिघोष के स्थान में हरिगदा होता है ॥६४॥

इस सूत्र से द्विरुक्त भराम का बराम हुआ।

भू-णल्-अ, बभूव, भू-अतुस् बभुवतुः, भू-उस् बभूवुः।

भू-थप् बभूविथ, भू-अथुस् बभूवथुः, भू-अ. बभूव।

भू-णल् बभूव, भू-व बभूविव, भू-म बभूविम।

भाव कर्मणि वाच्य में—

भू-ए बभूवे, भू-आते बभूवाते, भू-इरे बभूविरे, भू-से बभूविषे, भू-आथे बभूवाथे, भू-ध्वे बभूविढ्वे वभूविध्वे, भू-ए बभूवे, भू-वहे-बभूविवहे, भू-महे बभूविमहे ॥६१-६४॥

कामपाले कर्त्तरि—

कामपाल—परपदं कपिलः ॥६५॥

कपिलत्वान्निर्गुणः।	भूयात्,	भूयास्तां,	भूयासुः।
	भूयाः,	भूयास्तम्,	भूयास्त,
	भूयासम्	भूयास्व,	भूयास्म।

भावे—भाविषीष्ट भाविषीयास्ताम् भाविषीरन्, भाविषीष्ठा भाविषीयास्थाम् भाविषीढ्वम् भाविषीध्वम् भाविषीय, भाविषीवहि भाविषीमहि। पक्षे भविषीष्टेत्यादि।

बालकल्कौ कर्त्तरि—

भविता भवितारौ भवितारः, भवितासि भवितास्थः भवितास्थ, भवितास्मि भवितास्वः भवितास्मः । भावे-भाविता भविता । कर्मणि-भाविता भावितारौ भावितारः, भावितासे भावितासाथे भाविताध्वे, भाविताहे भावितास्वहे भावितास्महे । पक्षे-भवितेत्यादि ।

कल्कौ कर्त्तरि—

भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति, भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ, भविष्यामि भविष्यामि भविष्यावः, भविष्यामः । भावे-भाविष्यते भविष्यते । कर्मणि–भाविष्यते भाविष्येते भाविष्यन्ते, भाविष्यसे भाविष्येथे, भाविष्यध्वे, भाविष्ये, भाविष्यावहे भाविष्यामहे । पक्षे भविष्यते इत्यादि ।

अजिते कर्त्तरि—

अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन्, अभविष्यः अभविष्यतम् अभविष्यत, अभविष्यम् अभविष्याव अभविष्याम । भावे-अभाविष्यत, अभविष्यत, कर्मणि–अभाविष्यत अभाविष्येताम् अभाविष्यन्त, अभाविष्यथाः, अभाविष्यथाम् अभाविष्यध्वम्, अभाविष्ये अभाविष्यावहि, अभाविष्यामहि । पक्षे–अभविष्येत्यादि ।।६५।।

अनन्तर कर्त्तृ वाच्य में कामपाल का रूप—

कामपाल का परपद कपिल संज्ञक होता है। कपिलत्व प्रयुक्त निर्गुणत्व होता है।

भू-यात् भूयात् इत्यादि। भाव वाच्य में– भू-षीष्ट-भाविषीष्ट भविषीष्ट इत्यादि।

बालकल्कि के कर्त्तरि वाच्य में रूप—

भू-ता भविता इत्यादि। भाव वाच्य में– भाविता, भविता । कर्मणि में भाविता, भविता इत्यादि।

कल्कि में कर्त्तरि–भू-ष्यति-भविष्यति, इत्यादि।
भावे में—भाविष्यते, भविष्यते। कर्मणि—भाविष्यते, भविष्यते, इत्यादि। अजित में कर्त्तरि—भू-ष्यस् अभविष्यत्, इत्यादि। भावे–अभाविष्यत, अभविष्यत। कर्मणि–अभाविष्यत, इत्यादि ॥६५॥
चिती संज्ञाने, संज्ञानम्–चैतन्यम्—

द्व्यक्षर–धातोरन्तः पूर्व्वश्च सर्व्वेश्वरः सविष्णुचापः, जागृकथादि वर्ज्जं चकासृ-प्रभृतिनामन्तः, ओवैं-ओश्वि-प्रभृतीनां पूर्व्वः ॥६६॥

तत ईराम इत्।

चिती-संज्ञान अर्थात् चैतन्य, अतएव जागरण से अभिन्नार्थ हेतु यह धातु अकर्मक है, स्थल विशेष में ज्ञान अर्थ भी होता है। वहाँ सकर्मक होता है। यथा चिचेत रामस्तं क्लेशम्' भट्टि काव्य में प्रयोग है।

जागृकथ प्रभृति भिन्न धातु का अन्त सर्वेश्वर वर्ण एवं पूर्व सर्वेश्वर वर्ण सविष्णु चाप होता है। उसके मध्य में चकासृ प्रभृति का अन्त सर्वेश्वर सविष्णुचाप होता है। ओवैं ओश्वि प्रभृति का पूर्व सर्वेश्वर सविष्णुचाप है, अतः चिती का ईराम इत् होकर चित् रहता है ॥६६॥

लघूद्धवस्य गोविन्दः ॥६७॥

अच्युते कर्त्तरि–चेतति। भावे-चित्यते। विधौ-चेतेत्। भावे चित्येत।
विधातरि-चेततु, चित्यताम्, भूतेश्वरे-अचेतत्, अचित्यत।
लघु उद्धव संज्ञक शब्द का गोविन्द होता है।

अच्युत के कर्त्तृ वाच्य में रूप—

चित्-तिप् प् इति, तिप् शप् गोविन्द चेतति। भाव वाच्य में–चित्-ते-यक् चित्यते। विधि में चित्-यात्-चेतेत्। भाव वाच्य में–चित्येत। विधातृ में– चित्-तुप् चेततु-चेततात्, भाव वाच्य में–चित्-ताम् चित्यताम्। भूतेश्वर के कर्त्तृ वाच्य में–चित्-दिप्-अचेतत्, चित्-त अचित्यत ॥६७॥

भूतेशे-दिप्, सिः, इट्, गोविन्दः—

अस्ति-सिभ्यामीड् दिप् शिपोः ।।६८।।

इटः सिलोप ईटि ।।६९।।

अचेतीत्, अचेतिष्टाम् ।।६८-६९।।

भूतेश के कर्त्तृ वाच्य में रूप– चित्-दिप्-अत्-सि, इट, गोविन्द, अनन्तर दिप् एवं सिप् परे रहने से अस् धातु एवं सि के उत्तर में ईट् होता है ।।६८।।

ईट् परे रहने से इट् के पश्चात् स्थित सि का लोप होता है । इससे अचेतीत् पद निष्पन्न हुआ । चित्-ताम् अचेतिष्टाम् ।।६८-६९।।

सि नारायण-वेत्तिभ्यो अन उस् ।।७०।।

अचेतिषुः । भावे-अचेति । अधोक्षजे-चिचेत ।

सि के पश्चात् एवं नारायण के पश्चात् एवं ज्ञानार्थ विद् धातु के बाद अन् उस् होता है । चित्-अन् अचेतिषुः, भाव वाच्य में– चित्-त-अचेति । अधोक्षज में चित्-णल् चिचेत ।।७०।।

असंयोगादलिदधोक्षजः कपिलः ।।७१।।

असंयोग के पश्चात् लिद् भिन्न अधोक्षज कपिल संज्ञक होता है ।।७१।।

स्वञ्जेर्वा ।।७२।। श्रन्थि ग्रन्थिदम्भिभ्य स्थल च वा ।

चिचिततुः, भावे-चिचिते । कामपाले-चित्यात् । भावे-चेतिषीष्ट । बालकल्कौ-चेतिता, भावे-चेतिता । कल्कौ-चेतिष्यति, भावे-चेतिष्यते ।

अजिते-अचेतिष्यत्, भावे-अचेतिष्यत ।

स्वनज् धातु के पश्चात् लिद् भिन्न अधोक्षज कपिल संज्ञक विकल्प में होता है । श्रन्थ, ग्रन्थ, दन्भ, धातु के पश्चात् लिद् भिन्न अधोक्षज एवं थल् प्रत्यय, कपिल संज्ञक विकल्प में होता है ।

चित्-अतुस् चिचिततुः, भाव में– चित्-ए-चिचिते । कामपाल के कर्त्तृ वाच्य में–चित्-यात् चित्यात्, भाव में–चेतिषीष्ट, बालकल्कौ–चित्-ता चेतिता, भावे–चेतिता, कल्कौ–चित्-ष्यति, चेतिष्यति, भावे-चित्-ष्यते चेतिष्यते । अजिते-चित्-ष्यत्-अचेतिष्यत्, भावे–चित्-ष्यत अचेतिष्यत ।।७२।।

स्फुटिर् विशरणे, विशरणम्-विदारणम्, विसरण इति पाठे विकाशः। धातोरन्त इरित् । कर्त्तरि-स्फोटति । कर्म्मणि-स्फुट्यते ।

अराम हरस्य निमित्तमरामः पूर्व्ववच्च ॥७३॥

ततो न नस्य हरः, स्फुट्यन्ते । विध्यादौ स्फोटेत्, स्फुट्येत ।

स्फोटतु, स्फुट्यताम् । अस्फोटत्, अस्फुट्यत ।

अराम हर के निमित्त जो अराम है, वह पहले के अराम के सदृश होता है । अतएव 'अरामान्यवर्णादन्ते, अन्तामन्तानां नस्य हरः' सूत्र से नराम का हर नहीं होता है । स्फुट-अन्ते-स्फुट्यन्ते । विध्यादि के कर्त्तृ वाच्य में- स्फुट्-यात् स्फोटेत् । स्फुट्-ईत स्फुट्येत । स्फुट्-तुप्-स्फोटतु, स्फुट्-ताम्-स्फुट्यताम् । स्फुट्-दिप् अस्फोटत्, स्फुट्-त, अस्फुट्यत ॥७३॥

भूतेशे—

इरनुबन्धात् ङो वा भूतेश-परपदे ॥७४॥

ङ् इत् । अस्फुटत्, अस्फोटीत्, अस्फुटताम्, अस्फोटिष्टाम् ।

भूतेश के परपद में इरनुबन्ध धातु के उत्तरमें विकल्प में ङ होता है । 'ङ' इत् होकर अराम शेष रहता है । स्फुट्-दिप् अस्फुटत्, अस्फोटीत् । स्फुट्-ताम्-अस्फुटताम्-अस्फोटिष्टाम् ॥७४॥

अधोक्षजे—

नरविष्णुजनानामादिःशिष्यते ॥७५॥

शौरि-शिरस्कस्तु सात्वतः ॥७६॥

अन्यो विष्णुजनो न रक्ष्यते । पुस्फोट, पुस्फुटे ।

कामपाले-स्फुट्यात्, स्फोटिषीष्ट ।

बालकल्कौ-स्फोटिता, कल्कौ-स्फोटिष्यति, स्फोटिष्यते ।

अजिते-अस्फोटिष्यत् अस्फोटिष्यत । एवं श्च्युतिर् क्षरणे ।

एवं च्युतिर् आसेचने ।

अघोक्षज में—नर संज्ञक अर्थात् जो सब द्विरुक्त वर्ण हैं, उन सबके मध्य में आदि वर्ण अवशेष रहता है, अपर वर्ण नहीं रहता है ॥७५॥

एवं शोरि मस्तक स्थित सात्वत वर्ण द्विरुक्त के मध्य में होने से वही अवशेष रहता है, अपर वर्ण नहीं रहता है। स्फुट्-णल्-पुस्फोट। भावे-पुस्फुटे। कामपाले-स्फुट्-यात् स्फुट्यात्, स्फुट्-षीष्ट स्फोटिषीष्ट। बालकल्कौ-स्फोटिता। कल्कौ-स्फोटिष्यति, स्फुट्-ष्यते स्फोटिष्यते। अजित में—अस्फोटिष्यत् स्फुट्-ष्यत अस्फोटिष्यत। इस प्रकार श्चुतिर्-क्षरण अर्थ में धातु है, इसका रूप भी होगा, श्चुतिर्-आसेचनार्थक धातु का रूप भी इस प्रकार होगा ॥७६॥

मन्थ विलोडने मन्थति—

अनिरामेतां विष्णुजनान्तानामुद्धव नराम-हरः कंसारौ ॥७७

मथ्यते। भूतेशे-अमन्थीत्। ममन्थ। मथ्यात्, मन्थिषीष्ट।

मन्थ-विलोडनार्थक धातु है। इसका रूप-मन्थ-तिप् मन्थति। कंसारि प्रत्यय परे रहने से इराम इत् भिन्न विष्णुजनान्त धातु के उद्धव नराम का हर होता है। मन्थ्-ते, यक्-नराम हर होकर मथ्यते पद हुआ। भूतेश में—मन्थ-दिप्-अमन्थीत्।

अघोक्षज में—मन्थ्-णल्-ममन्थ। कामपाले-मन्थ्-यात्-मथ्यात्। आत्मपदे-मन्थ-षीष्ट-मन्थिषीष्ट ॥७७॥

कुथि हिंसा-संक्लेशयोः—

इरामेद्धातोर्नुम् ॥७८॥

कुन्थति।

कुथि धातु हिंसार्थ एवं क्लेशार्थ है, इसका इराम इत् होता है। इराम इत् होने वाले धातु के उत्तर नुम् होता है। यह नुम् धातु के उच्चारण मात्र से ही होता है। कुथि-तिप् कुन्थति। कुथि-ते-कुन्थ्यते ॥७८॥

कवर्ग-नरस्य चवर्गः ॥७९॥

चुकुन्थ गति गतौ-विलग्यते। कपि-चलने, विकप्यते।

कवर्ग नर के स्थान में चवर्ग होता है।

कुथि-णल्-चुकुन्थ। लगि गत्यर्थक धातु है- भाव वाच्य में लगि-ते विलग्यते। कपि-चलनार्थक धातु है, इराम इत् होता है। विपूर्व कपि-भाव वाच्य में ते प्रत्यय-विकप्यते ॥७९॥

षिधु-गत्याम्, उराम इत्। षिधू-शास्त्रे माङ्गल्ये च। ऊराम इत्।

धात्वादेः षः सः ॥८०॥

सेधति।

षिधु गत्यर्थक धातु है। उराम इत् होता है। षिधू-शास्त्र एवं माङ्गल्यार्थक धातु है। इसका ऊराम इत् होता है। धातु के आदि में स्थित षराम सराम होता है। षिधु-तिप् सेधति ॥८०॥

स्वरति सूति-सूयति-धूञूदित इड् वा ॥८१॥

असेधीत्।

स्वृ अदादि, सूङ् दिवादि, सूङ, धूञ एवं ऊ इत् धातु के उत्तर में इट् विकल्प में होता है। षिधू-भूतेश के दिप् एकपक्ष में षिधू-दिप्-असेधीत् ॥८१॥

विष्णुजनान्तानामनिटां वृष्णीन्द्रः सौ परपदे ॥८२॥

असैत्सीत्।

परपद में सि परे रहने से अनिट् विष्णुजनान्त धातु का वृष्णीन्द्र होता है। षिधू-दिप्-असैत्सीत् ॥८२॥

वामन-वैष्णवाभ्यां से र्हरो वैष्णवे, नत्विटः ॥८३॥

वैष्णव परे रहने से वामन वैष्णव के उत्तर में सि का हर होता है। किन्तु इट् के पश्चात् नहीं होता है ॥८३॥

हरिघोषात्तथो र्धो धा-वर्जम् ।।८४।।

असैद्धामित्यादि ।

धा धातु भिन्न हरिघोष के पश्चात् तराम एवं थराम के स्थान में धराम होता है। सिधू-ताम् अनिट् पक्ष में असैद्धाम् ।।८४।।

गद-व्यक्तायां वाचि—

विष्णुजनादे लंघोररामस्य वृष्णीन्द्र इडादौ सौ वा परपदे ।।८५

अगादीत् अगदीत् ।

परपद में इट् आदि युक्त सि रहने पर विष्णुजनादि धातु के लघु अराम का वृष्णीन्द्र होता है।

गद्-दिप्-अगदीत्-अगादीत् ।।८५।।

उद्धवारामस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे ।।८६।।

भावे-अगादि । जगाद ।

नृसिंह परे रहने से उद्धव अराम का वृष्णीन्द्र होता है।

भावे-गद्-त-अगादि । गद्-णल्-जगाद ।।८६।।

अट् गतौ—

सर्व्वेश्वरादे र्वृष्णीन्द्रोऽत् प्रसङ्गमात्रे ।।८७।।

आटत् । आटीत् ।

अत् प्रसङ्ग मात्र में अर्थात् 'धातोः पूर्वमत् भूतेश्वर-भूतेशाजितेषु' से जो अत् होता है, उसके परिवर्त्त में सर्व्वेश्वरादि धातु के आदि सर्व्वेश्वर का वृष्णीन्द्र होता है। अट्-भूतेश्वर का दिप्-आटत् । अट्-भूतेश का दिप् आटीत् ।।८७।।

नरादेररामस्य त्रिविक्रमः ॥८८॥

तस्मान्नुड् द्विविष्णुजने धातौ ॥८९॥

आट, अटतुः।

यदि अराम आदि नर होता है, तो उसके स्थान में त्रिविक्रम होता है ॥८८॥

एवं उस त्रिविक्रम के पश्चात् द्विविष्णुजन धातु होने से नुट् होता है। अट्-णल्, आट्, अट्-अतुस् आटतुः ॥८९॥

रद्, विलेखने-रराद—

आदेशहीन-नराद्यक्षरस्य धोतोरसंयुक्त-विष्णुजनमध्यस्यारामस्य एत्वं नरादर्शनञ्च, कपिलाधोक्षजे सेट् थलि च ॥९०॥

रेदतुः, रेदुः, रेदिथ। णद-अव्यक्त शब्दे-नदति। ननाद, नेदतुः। अर्द गतौ याचने च-अर्दति। आर्दत्। आनर्द। इदि परमैश्वर्य्ये, 'इरामेद्धातोर्नुम्'-इन्दति। ऐन्दत्।

रद्-धातु, विलेखनार्थ है। रद्-णल्-रराद।

कपिल अधोक्षज अथवा सेट् थलि परे रहने से, आदेशहीन नराद्यक्षर होने से असंयुक्त विष्णुजन मध्य धातु के अराम का एत्व होता है, एवं नर का अदर्शन भी होता है।

रद्-अतुस् रेदतुः, रद्-उस् रेदुः, रद्-थल् रेदिथ।

णद-अव्यक्त शब्दार्थक है, नद्-तिप् नदति, नद्-णल्-ननाद। अर्द धातु, गति एवं याचन अर्थ में होता है, अर्द-तिप् अर्दति, अर्द-भूतेश्वर का दिप् आर्दत्। अर्द-णल्-आनर्द, इदि धातु परमैश्वर्य्यार्थ है। इराम इत् होकर इद् रहता है, इद्-तिप् इन्दति। इद् भूतेश्वर का दिप् ऐन्दत् ॥९०॥

ऋच्छ-वर्जितगुर्व्वीश्वरादे रामधोक्षजे ॥९१॥

आमो मस्येत्व निषेधः।

अधोक्षज परे रहने से ऋच्छ भिन्न गुरु ईश्वरादि धातु के उत्तर में आम होता है। आम का मराम इत नहीं होता है ॥९१॥

आमः कृभ्वस्तयोऽनु प्रयुज्यन्ते ॥९२॥

नर-ऋरामस्यारामः ॥९३॥

इन्दाञ्चकार।

पूर्वोक्त आम के पश्चात् कृ, भू, अस्, इसके मध्य में एकतम का अनु प्रयोग होता है ॥९२॥

नर संज्ञक ऋराम के स्थान में अराम होता है।
इदि-णल् आम के उत्तर कृञ् धातु का अनु प्रयोग होकर इन्दाञ्चकार पद हुआ।

उख गतौ-ओखति। अन्चु गति-पूजनयोः-अञ्चति, अच्यते। पूजायाम्-अञ्च्यते। आछि आयामे-आञ्छति।

उख-धातु गमनार्थ है, उख-तिप् ओखति, अन्चु-गत्यर्थ एवं पूजनार्थ है, उकार इत् होता है, अन्च् रहता है। अन्च्-तिप् अञ्चति। कर्म्मवाच्य में-अच्यते। पूजा अर्थ में-अञ्च्यते, आछि-आयामे, दैर्घ्य, आयाम, आरोह अर्थ प्रकाशक है। आछि-तिप्-आञ्छति॥९३॥
षस्ज् गतौ—

सस्य जो जे, नतु वैष्णवे ॥९४॥

सज्जति। वज-गतौ-वजति। व्रज गतौ व्रजति।

षस्ज धातु-गत्यर्थक है।

जराम परे रहने से सराम के स्थान में जराम होता है, किन्तु जराम के पश्चात् यदि वैष्णव वर्ण होता है तो जराम नहीं होता है। षस्ज-तिप् सज्जति। वज धातु गत्यर्थक है। वज-तिप् वजति। व्रज गत्यर्थक है-व्रज-तिप्-व्रजति ॥९४॥

वदव्रजयो र्वृष्णीन्द्रः सौ परपदे ॥९५॥

भूतेशे अव्राजीत् ।

परपद का सि रहने से वद धातु एवं व्रजधातु का वृष्णीन्द्र होता है। भूतेश का दिप् प्रत्यय, अव्राजीत् ॥९५॥

अज गतौ-अजति—

अजेर्वी घणं विना रामधातुके ॥९६॥

वीयते ।

अजधातु गत्यर्थक है, अज-तिप्-अजति ।
घण् भिन्न रामधातु परे रहने से अज धातु के स्थान में 'वी' होता है। अज-भाव वाच्य में ते प्रत्यय, वीयते ॥९६॥

अथानिटः

ऊ ॠ रामान्त-रु-स्नु क्ष्णु, शी, यु, नु, क्षु, श्वि, डी, श्रिभिः ।
वृङ् वृञ्भ्यां च विनैकाचः, स्वरान्ता धातवोऽनिटः ॥
अनिडेकः शक्लृः कान्ते चान्ते पचि वची विचिः ।
सिचि मुचि रिची चंकं, छान्ते प्रच्छि रुदाहृतः ॥

भजि भञ्जि यजि त्यजि रञ्जि रुजो,
भुजि सञ्जि सृजोऽप्यथ मज्जिरपि ।
युजि भृज्जि निजि विजिरश्च तथा,
स्वजिरुद्धवणे जगणेऽप्यनिटः ॥

अदि हदि स्कन्दि भिदि च्छिदि क्षुदीन्,
शदि सदि स्विद्यति पद्यती खिदिम् ।
तुदि नुदि विद्यतिकं विनत्तिकं,
प्रतीहि दान्तान् दश पञ्च चानिटः ॥

क्रुधि राधि रुधि क्षुधि बुध्यतयो,
व्यधि-शुद्धयति सिध्यति बन्धि-युधः ।

सह साधय इत्यनिटो ध गणे,
हनि मन्यति चेत्यपि नान्तगणे ॥
स्वपि वपि तिपि तपि तृप्यापि शपोऽपि,
क्षिपि सृपि लिपि लुम्प च्छुपि दृपयः ।
पान्त गणेष्वथ भान्ते-लभि रभि जभि,
यभयो मगणे-यमि रमि णमि गमयश्च ॥
शिषि श्लिषी दुष्य विषि त्विषि द्विषीन्,
पिषि कृषि पुष्यति शुष्य तुष्यतीन् ।
दिशि दृशि दंशि मृशी रिशि रुशि,
लिशि स्पृशि क्रोशविशेऽनिटो जगुः ॥
घसिश्च वसतिः सान्ते, हान्ते दहति मेहती ।
दिहि दुंहि लिही रोहि, वहि नहि रिमेऽनिटः ॥

अनिट् धातु समूह का विवरण—

दीर्घ ऊ रामान्त एवं दीर्घ ॠ रामान्त रु स्नु क्ष्णु णी यु नु क्षु श्वि डी श्रि वृञ् वृङ् धातु व्यतीत एक सर्व्वेश्वरान्त धातु अनिट् होता है। कान्त धातु के मध्य में केवल शक् लृ धातु अनिट् होता है।

चान्त धातु के मध्य में पच वच विच सिच मुच रिच अनिट् हैं।

छान्त धातु के मध्य में एक प्रच्छ धातु अनिट है।

जान्त धातु के मध्य में भज, भन्ज यज् त्यज् रन्ज, रुज भुज सन्ज सृज मस्ज युज भ्रस्ज निज विज स्वन्ज धातु अनिट है।

दान्त धातु के मध्य में अद हद स्कदि भिद छिद क्षुद शद सद स्विद खिद तुद नुद दिवादि विद एवं रुधादि विद धातु अनिट हैं।

धान्त धातु के मध्य में क्रुध राध रुध क्षुध बुध व्यध शुध सिध बन्ध युध साध धातु अनिट हैं।

नान्त धातु के मध्य में हन मन धातु आनिट हैं।

पान्त धातु के मध्य में स्वप वप तिप तप तृप आप शप क्षिप सृप लिप लुप छुप दृप धातु अनिट है।

भान्त धातु के मध्य में- लभ रभ जभ यभ धातु अनिट हैं। मान्त धातु के मध्य में- यम रम णम गम धातु अनिट हैं। मूर्द्धन्य षान्त धातु के मध्य में-शिष श्लिष दुष विष त्विष द्विष पिष क्रुष पुष शुष तुष घातु अनिट हैं।

तालव्य शान्त धातु के मध्य में दिश दृश दन्श मृश रिश रुश लिश स्पृश क्रुश विश धातु अनिट है।

दन्त्य सान्त धातु के मध्य में- घस वस धातु अनिट हैं। हान्त धातु के मध्य में- दह मिह दिह दुह लिह रुह वह नह धातु अनिट हैं।

ईशान्तस्य वृष्णीन्द्रः सौ परपदे ॥९७॥

ऊर्णोतेर्वा ॥९८॥

अवैषीत्, आजीत् ॥९७-९८॥

परपद में सि होने पर ईशान्त धातु का वृष्णीन्द्र होता है। परपद में सि होने पर ऊर्णु धातु का वृष्णीन्द्र विकल्प में होता है। अज्-भूतेश का दिप्- अवैषीत्, पक्षान्तर में आजीत् ॥९७-९८॥

नरस्य वामनः ॥९९॥

विवाय।

नर संज्ञक त्रिविक्रम का वामन होता है। अज्-णल् विवाय ॥९९॥

धातोश्चतुःसनस्येयुवौ सर्व्वेश्वरे ॥१००॥

सर्व्वेश्वर परे रहने से धातु के चतुःसन के स्थान में इय्, उव्, होता है, इद्वय के स्थान में इय् होता है, एवं उद्वय के स्थान में उव् होता है ॥१००॥

संयुक्त श्नोश्च ॥१०१॥

सर्वेश्वर परे रहने से संयुक्त श्नु के स्थान में उव् होता है ॥१०१॥

असंयोग पूर्वस्यानेक-सर्वेश्वर स्येद्वयस्य तु यः ।।१०२।।

अनेक सर्व्वेश्वर धातु के असंयुक्त पूर्व्व इद्वय के स्थान में 'य' राम होता है ।।१०२।।

एति-हुवोर्यवौ कृष्णधातुक एव ।।१०३।।

विव्यतुः । पक्षे द्वित्वम्- विव्व्यतुः ।

कृष्ण धातुक सर्व्वेश्वर परे रहने से इन धातु का इराम यराम होता है, एवं हु धातु का उराम वराम होता है ।

अज्-अतुस् विव्यतुः । पक्ष में विव्व्यतुः यहाँ दित्व हुआ ।।१०३।।

विवेथ, विवयिथ । पक्षे- आजिथ ।

थल् परे होने से सर्व्वेश्वरान्त सहज अनिट् धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है। अज्-थल् विवेथ, पक्ष में विवयिथ । वी आदेश न होने पर 'आजिथ' होता है ।

क्षि-क्षये-क्षयति, क्षयतः, क्षयन्ति । क्षीयते । अक्षैषीत् । चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः, चिक्षयिथ, चिक्षेथ । लगे-सङ्गे-अलगीत् ।

क्षि-धातु क्षयार्थक है, क्षि-तिप् क्षयति । क्षि-तस् क्षयतः । क्षि-अन्ति क्षयन्ति । क्षि-भाव वाच्य में ते प्रत्यय-क्षीयते । क्षि-दिप्-अक्षैषीत् । क्षि-णल् चिक्षाय, क्षि-अतुस् चिक्षियतुः, क्षि-उस् चिक्षियुः, क्षि-थल् चिक्षयिथ, चिक्षेथ ।

लगे धातु सङ्गार्थक है, एराम इत् होकर लग् रहता है । लग्-भूतेश का दिप्-अलगीत् ।।१०४।।

गुपू-रक्षणे—

गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः ।।१०५।।

गोपाय । सन् क्यन् क्यङश्च काम्यश्च क्यङर्थं क्विप् च णिस्तथा । कण्डादि यक् तथैवाय ईयङ् यङ् स्युः सनादयः । तिप्, शप्-गोपायति ।

गुप् धातु रक्षार्थक है, ऊराम इत् होकर गुप् रहता है । गुपू धातु धुप् धातु, विच्छ धातु, पण धातु, पन धातु के उत्तर में आय

होता है। गुपू-आय गोपाय। अनन्तर गोपाय की धातु संज्ञा हुई, कारण भू आदि एवं सनादि की धातु संज्ञा होती है। सनादि प्रत्यय यह है- सन्, क्यन्, क्यङ्, काम्य, क्यङर्थ क्विप्, णिच्, कण्ड्वादि यक् आय्, ईयङ्, यङ् सनादि हैं। धातु संज्ञा, तिप् शप् होकर पूर्वोक्त गोपाय-गोपायति हुआ ॥१०५॥

अराम हरो रामधातुके ॥१०६॥

गोपाय्यते, गुप्यते वा, अगोपायीत्, अगोपीत् वा।

रामधातु परे रहने से अराम हर होता। गोपाय-भाव वाच्य में- ते-गोपाय्यते। रामधातु परे रहने से आय् ईयङ् एवं कम धातु के उत्तर में विहित णि विकल्प में होता है। गुप्-ते गुप्यते। भूतेश में गुप्-दिप् अगोपायायीत्। आय् न होने से गुप्-दिप्-अगोपीत् पद हुआ ॥१०६॥

अनेक-सर्व्वेश्वर-कासिभ्यामामधोक्षजे ॥१०७॥

कृञादे रनु प्रयोगः-गोपायाञ्चकार, जुगोप वा।
धूप सन्तापे-धूपायति। अधूपायीत्, अधूपीत् वा।
चुलुम्प लोपे-चुलुम्पाञ्चकार। तप सन्तापे-तपति।

अधोक्षज परे रहने से अनेक सर्व्वेश्वर विशिष्ट धातु एवं कासृ धातु के उत्तर में आम् होता है।

आम् के उत्तर कृञ् आदि धातु का अनुप्रयोग होता है। गोपाय-णल् गोपायाञ्चकार, आप् न होने से गुप्-णल्-जुगोप। धूप धातु सन्तापार्थक है। धूप्-तिप् धूपायति, भूतेश का दिप्-धूप्-दिप् अधूपायीत्, आय् के अभाव से धूप्-दिप् अधूपीत्।

चुकुम्प-धातु लोप अर्थ में होता है। चुलुम्प-णल्-चुलुम्पाञ्चकार। तप् धातु सन्तापार्थक है-तप्-ति तपति ॥१०७॥

चमु अदने—

ष्ठिव्वाचमु-क्लमां त्रिविक्रमः शिवे ॥१०८॥

आचामति । आचम्यते । इणि-आचामि । क्लमु ग्लानौ-क्लामति । क्लाम्यते । यमु-उपरमे । क्रमु-पादविक्षेपे-क्रामति ।

चमु-धातु भक्षणार्थक है, इसका उराम इत् होकर चम् रहता है । शिव् प्रत्यय परे रहने से ष्ठिवु धातु आङ् पूर्व चमु धातु एवं क्लमु धातु का त्रिविक्रम होता है ।

आ-चमु-तिप् आचामति । आ-चम्-भाव वाच्ये ते-आचम्यते । आ-चम् भाव वाच्ये भूतेश का 'त' 'चम् भूतेश ते भावकर्मणोः' सूत्र से इण् होने पर 'आचामि' पद हुआ ॥१०८॥

इषुगमियमां छः शिवे ॥१०९॥

इच्छति, गच्छति, यच्छति ।

शिव परे रहने से इषु गम् लृ यमु धातु के अन्त्यवर्ण के स्थान में छराम होता है । इषु इच्छायाम्, गम्लृ गतौ, यमु उपरमे, धातु के अन्त्य वर्ण के स्थान में छ होता है, शिव परे रहने से इषु-ति-इच्छति, गमल्-तिप गच्छति, यमु-तिप् यच्छति ॥१०९॥

यम-रम-नमारामान्तेभ्यः सुगिटौ सौ परपदे ॥११०॥

अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयामि ।

परपद में सि परे रहने से यमु, रमु, णम, एवं आरामान्त धातु के उत्तर में सुक् के सहित इट् होता है, सुक् का उक् इत् होकर स्राम रहता है ।

यम्-भूतेश का दिप्-अयंसीत् । यम्-भूतेश का ताम् अयंसिष्टाम् । यम्- भाव वाच्य में भूतेश का 'त' अयामि ॥११०॥

सूचनार्थाद् यमः सिः कपिल आत्मपदे, स्वीकारार्थाद्वा ॥१११॥

हरिवेण्वन्त सहजानिटां तनु-क्षणु-क्षिणु-तृणु-वनु-मनुनामपि

हरिवेणु हरो वैष्णवादि कंसारौ ॥११२॥

उदायसाताम्, उपायसाताम्, उपायंसाताम् वा, स्वीकृतावित्यर्थः ।

नय हय गतौ—अनयीत् ॥११२॥

वैष्णवादि कंसारि परे रहने से हरिवेण्वन्त सहज अनिट् धातु समूह के एवं तनु, क्षिणु, तृनु, वनु, मनु धातु के अन्त स्थित हरिवेणु का हर होता है ।

उद्-आ-यम्-भूतेश का आताम् उदायसाताम्, अर्थात् सूचित हुआ है । उप-आ-यम् भूतेश का आताम्-उपायसाताम् । एकबार उपायंसाताम्-अर्थात् स्वीकृत हुआ ।

नय धातु एवं हय धातु गमनार्थ है । नय् भूतेश का दिप्-अनयीत् ॥११२॥

दल विदारणे—

अरलित्यन्तस्य वृष्णीन्द्रः सौ परपदे ॥११३॥

अदालीत् ।

दलधातु विदारणार्थ है । परपद में सि परे रहने से अरन्त एवं अलन्त धातु का वृष्णीन्द्र होता है । दल्-भूतेश का दिप्-अदालीत् ॥११३॥

जि जये-जयति, जीयते, विधातरि—

जेस्त्वन्त्वो स्त्यन्तो ॥११४॥

जयति, जयन्ति ।

जि धातु जयार्थ है, जि-तिप्-जयति, जि-भावे ते-जीयते । विधातृ में जि धातु के उत्तर में 'तु' के स्थान में 'ति' एवं अन्तु के स्थान में 'अन्ति' होता है ॥११४॥

जेर्गिः सन्नधोक्षजयोः, चेः किर्वा ॥११५॥

जिगाय ।

सन् एवं अधोक्षज परे रहने से जि धातु के स्थान में 'गि' होता है, एवं चिञ् धातु के स्थान में विकल्प में 'कि' होता है। जि-णल्-जिगाय ।।११५।।

कृष्-स्पृश्-मृश्-तृप्-दृप्-सृपः सिर्वा । षढोः कः से ॥११६॥

षत्वम्–अकार्क्षीत्, अकार्ष्टाम्, अक्रुक्षन्, अकर्षि, अक्रुक्षाताम्, अक्रुक्षत, अक्रुक्षन्त, अक्रुक्षथाः, अक्रुक्षि । चकर्ष, चकृषे । कृष्यात्, कृक्षीष्ट ।

रुष रिष हिंसायाम् । इड् वा-रोषिता रोष्टा । उष दाहे, आम् वा अधोक्षजे– उषाम्बभूव । उवोष । मिह सेचने, दिप्-अमिक्षत् । बालकल्की–मेढा । दह-भस्मीकरणे-दहति । अधाक्षीत । अदाग्धाम्, अधग्ध्वम् । रह त्यागे-अरहीत् । रहि गतौ-रंहति, रंहाणि । वृहि वृद्धौ-वृंहति । 'अनिटि वा नलोपः'–वर्हति । कृवि हिंसायाम्-कृण्वति । आनिप्-कृण्वानि । तृण् हू हिंसायाम्-तृंहति ।।११६।।

कृष्ण धातु का अर्थ– आकर्षण एवं विलेखन है । कृष्-तिप् कर्षति । भूतेश परे रहने से कृष–विलेखने, स्पृश-संस्पर्शने, मृश-आमर्शने, तृप-प्रीणने, दृप-हर्ष, विमोचनार्थ में, सृप् लृ गति अर्थ में धातु के उत्तर में सि विकल्प में होता है ।

दन्त्य सराम परे रहने से मूर्द्धण्य षराम एवं ढराम के स्थान में कराम होता है। भूतेश में–कृष्-दिप् अकार्क्षीत् । कृष-ताम्-अकार्ष्टाम्, कृष्–दिप्–अक्रुक्षत्, कृष्–त–अकर्षि, कृष्–आताम्–अक्रुक्षाताम् । कृष्-अन्त अक्रुक्षत । कृष्-थास् अक्रुक्षथाः, अकृष्टाः । कृष्-इ-अक्रुक्षि, कृष्-णल् चकर्ष, कृष्-ए चकृषे । कृष्-यात्-कृष्यात् (कामपाले) कृष्-षीष्ट-कृक्षीष्ट ।

रुष् एवं रिष् धातु हिंसा अर्थ में होते हैं। इषु सह लुभ रुष रिष धातु के उत्तर में तराम रहने से इट् विकल्प में होता है। रुष्-ता रोषिता, रुष्-ता रोष्टा। उष् धातु दाहार्थ है, अधोक्षज में आम विकल्प में होता है, उष् णल्-ओषाम्बभूव। उवोष। मिह्-सेचने, मिह्-दिप् अमिक्षत्।

बालकल्कि में मिह्-ता मेढ़ा दह्-भस्मीकरणे, दह्-तिप् दहति। दह्-दिप्-अधाक्षीत्। दह्-ताम् अदाग्धाम्, दह्-ध्वम्-अधग्ध्वम्। रह्-त्यागे-रह्-दिप् अरहीत्। रहि-गतौ-रह्-तिप् रंहति। रह्-आनिप् रंहाणि। वृहि वृद्धौ-वृहि-तिप् वृंहति।

कलाप व्याकरण के मत में इट् भिन्न सर्व्वेश्वर परे रहने से वृन्ह् धातु का नराम हर विकल्प में होता है, इस मत में वृहि-तिप् वर्हति। कृवि धातु हिंसार्थ है, इराम इत् होकर कृव् रहता है, यह धातु हरिमित्रान्त है। कृवि-तिप् कृण्वति। कृवि-आनिप् कृणवानि। तृण्हू धातु हिंसार्थक है-तृण्हू-तिप् तृंहति ॥११६॥

ग्लै हर्षक्षये ग्लायति—

चतुर्व्यूहान्तामान्तपाठोऽशिवे ॥११७॥

यक्-ग्लायते, अग्लासीत्, अग्लासिष्टाम्।

ग्लै-धातु हर्षक्षयार्थ हैं। ग्लै-तिप् ग्लायति। अशिव प्रत्यय परे रहने से चतुर्व्यूहान्त धातु समूह का आरामान्त पाठ होता है। अर्थात् चतुर्व्यूह के स्थान में आराम होता है। यक्-ग्लै-ते-ग्लायते। ग्लै-भूतेश का दिप्-अग्लासीत्। ग्लै-भूतेश का ताम्-अग्लासिष्टाम्॥११७

आतोयुगिणि नृसिंह-कृति च ॥११८॥

अग्लायि।

इण् नृसिंह एवं कृत् परे रहने से आ के उत्तर में युक् का उक् इत् होता है। ग्लै-भूतेश का भाव वाच्य में 'त'-अग्लायि ॥११८॥

आरामाण्णल औ ॥११९॥

जग्लौ ।

अरामान्त धातु के उत्तर णल् के स्थान में औ होता है। ग्लै-णल् जग्लौ ॥११९॥

आरामहरः कंसारि-सर्व्वेश्वर रामधातुके इटि उसिच॥१२०॥

जग्लतुः ।

कंसारि सर्वेश्वर राम धातुक एवं इट उस् परे रहने से आराम का हर होता है। किन्तु आराम का स्थानित्वत्व हेतु द्विर्वचन होता है। ग्लै-अतुस् जग्लतुः ॥१२०॥

सत्सङ्गादेरात एरामः कपिल कामपाले वा ॥१२१॥

ग्लेयात्, ग्लायात्, ग्लासीष्ट, ग्लायिषीष्ट ।

एवं ग्लै गात्र-विनामे-ग्लायति ।

कामपाल परे रहने से सत्सङ्गादि का आराम का विकल्प में एराम होता है।

ग्लै-कामपाल का यात्-ग्लेयात्, ग्लायात्, ग्लै-सीष्ट-ग्लासीष्ट, ग्लायिषीष्ट। इस प्रकार ग्लै-धातु गात्र विनामार्थ, अर्थात् कान्ति क्षयार्थ है। इसका रूप ग्लै धातु के तुल्य होगा। ग्लै-ति-ग्लायति॥१२१॥

गै शब्दे गायति—

दामोदर-मा-स्था-गा-पिबति-जहाति-स्यतोनामीरामो,
विष्णुजन-रामधातुक-कंसारौ ॥१२२॥

गीयते ।

विष्णुजन रामधातु कंसारि परे रहने से दामोदर संज्ञक धातु मा, स्था, गा, पा, हा, एवं सो धातु के अन्त्य सर्वेश्वर के स्थान में ईराम होता है। गै-भावे ते-गीयते ॥१२२॥

दामोदरादीनामेरामः कपिल-कामपाले ॥१२३॥

गेयात्—

दैप्-शोधने, पराम इत्-दायति, दायते, अदासीत्, अदायि, दायात् ।

कपिल एवं कामपाल परे रहने से पूर्वोक्त दामोदर संज्ञक धातु समूह के अन्त्य सर्वेश्वर के स्थान में एराम होता है ।

गै-कामपाल का यात्-गेयात् । दैप्-शोधनार्थक है, पराम इत् होकर दै रहता है, दैप्-तिप् दायति ।

कर्म्म वाच्य में–दैप्-ते दायते, दैप्–भूतेश का दिप् अदासीत् दैप्–भूतेश के आत्मपद में ते, दैप्-ते-अदायि । दैप्-कामपाल का यात् दायात् ॥१२३॥

धेट् पाने-ट् इत्, धयति, धीयते—

धेट्-श्विभ्यामङ् वा भूतेशे कर्त्तरि ॥१२४॥

ङ् इत्, अराम शेषः, अदधीत् अदधत्, अदधताम्, अदधन् ।

पानार्थक धेट् धातु, ट् इत् होकर धे रहता है, धेट्-तिप् धयति । धेट्-भावे ते-धीयते । कर्त्तृ वाच्य में भूतेश परे रहने से धेट् धातु एवं श्वि धातु के उत्तर में विकल्प में अङ् होता है, अङ् का ङ् इत् होकर अराम शेष रहता है । धेट्-भूतेश का दिप् अदधत्-अदधीत्, धेट्-भूतेश का ताम्-अदधताम्, धेट्-भूतेश का अन् अदधन् ॥१२४॥

सि पक्षे—

ध्रा-धेट्-शा-छा-साभ्यः सेर्महाहरो वा परपदे ॥१२५॥

अधात्, अधाताम् ।

अङ् न होकर सि होने से रूप इस प्रकार होगा ।

परपद परे रहने से घ्रा धातु धेट् धातु, शो, छो, सो धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है । धेट्-भूतेश का दिप्-अधात् । धेट्-ताम् अधाताम् ॥१२५॥

अधुः पक्षे—

आरामादन उस्, भूतेश्वरस्य तु वा ॥१२६॥

अधासीत् । अधायि, अधायिषाताम् ।

आराम के उत्तर भूतेश के स्थान में नित्य उस् होता है, किन्तु भूतेश्वर के अन् के स्थान में उस् विकल्प में होता है ।

धेट्-भूतेश का अन् अधुः, सि का अलोप पक्ष का उदाहरण-धेट्-दिप् अधासीत् कर्म वाच्य में- धेट-त अधायि । धेट्-आताम्-अधायिषाताम् ॥१२६॥

इण्वदिडभाव पक्षे—

स्था-दामोदरयोरिरामो वैष्णवादिसावात्मपदे, सिश्च कपिलः ॥१२७॥

इण्वदिट् के अभाव पक्ष में रूप-आत्मने पद में वैष्णवादि सि परे रहने से स्था धातु एवं दामोदर संज्ञक धातु के अन्त के स्थान में इराम होता है, एवं सि कपिल होता है । धेट्-भूतेश का आताम्-अधिषाताम् ॥१२७॥

पा पाने—

पः पिबः, घ्रो जिघ्रः, ध्मो धमः, स्थ स्तिष्ठः, म्नो मनः, दानो यच्छः, दृशेः पश्यः, अर्त्ते ऋच्छः, सर्त्ते जंवार्थस्य धावः, शदेः शीयः, सदेः सीदः शिवे ॥१२८॥

शिव परे रहने से पा धातु के स्थान में पिब, घ्रा जिघ्र, ध्मा धम, स्था तिष्ठ, म्ना मन, दान यच्छ, दृश पश्य, ऋ ऋच्छ, वेगार्थ सृ धाव, शद शीय, एवं सद सीद होता है ॥१२८॥

अन्तहरे न गोविन्दवृष्णीन्द्रौ ॥१२९॥

पिबति, पीयते भूतेशे—
'इन्-स्था' इति अपात्। घ्रा गन्धोपादाने-जिघ्रति, घ्रायते। ध्मा शब्दाग्नि संयोगयोः-धमति, ध्मायते। ष्ठा-गति निवृत्तौ तिष्ठति, स्थीयते।

'अन्त' का हर होने से गोविन्द एवं वृष्णीन्द्र नहीं होता है। पा-तिप्-पिबति, पा-ते पीयते। पा भूतेश का दिप्-अपात्। घ्रा-तिप्-जिघ्रति, घ्रा-ते-घ्रायते, ध्मा-तिप्-धमति, ध्मा-ते-ध्मायते, ष्ठा-तिप् तिष्ठति, ष्ठा-ते स्थीयते ॥१२९॥

उदः स्थास्तम्भोः सस्य हरः ॥१३०॥

उत्थीयते, द्वित्वे-उत्तथीयते। 'इण् स्था' इति से महाहरः-अस्थात्। अस्थित, अस्थिषाताम्, 'आरामण्णल औ'-तस्थौ, स्थेयात्, स्थाता। उत्थाता। म्ना अभ्यासे-मनति। दान-दाने न इत्-यच्छति, दीयते।

उद् उपसर्ग के उत्तर स्था धातु एवं स्तन्भू धातु का सराम हर होता है। उद्-स्था भावे-ते उत्थीयते, 'विष्णुजने विष्णुजनो वा हरौ विना' सूत्र से द्वित्व होने से 'उत्तथीयते' हुआ।

'इन् स्था पिबति' सूत्र के द्वारा सि का महाहर होने से भू-दिप्-अस्थात् हुआ। स्था-भूतेश के आत्मपद में 'त' अस्थित, स्था-भूतेश के आताम्-अस्थिषाताम्। स्था-णल् 'आरामण्णल औ' सूत्र से तस्थौ। स्था धातु का दामोदर संज्ञत्व हेतु नित्य एत्व होता है। स्था-कामपाल का यात्-स्थेयात्। स्था-ता स्थाता, उद्-स्था-ता-उत्थाता। म्ना-अभ्यासे-म्ना-तिप् मनति, दान-दाने नराम इत्, न रहता है, दा-तिप् यच्छति, दा-ते दीयते ॥१३०॥

स्मृ चिन्तायाम्-स्मरति—

अर्त्ति-सत्सङ्गाद्यृदन्तयो र्गोविन्दो यक्
कामपाल-यथोर्यङि च ॥१३१॥

स्मर्य्यते, दिप्-अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मारि ।

चिन्तार्थं स्मृ धातु–स्मृ-तिप् स्मरति ।

कामपाल का य एवं यङ् परे रहने से ऋ धातु एवं सत्सङ्गादि ऋदन्त धातु का गोविन्द होता है। स्मृ-ते स्मर्य्यते, स्मृ-दिप्-अस्मार्षीत्, स्मृ-ताम् अस्मार्ष्टाम्, स्मृ-त, अस्मारि ॥१३१॥

ॠराम-वृ-सत्सङ्गाद्यृदन्तेभ्य इड्वा,
सि कामपालयो रात्मपदे ॥१३२॥

अस्मरिषाताम्, अस्मारिषाताम्, अस्मृषाताम् सस्मार ।

आत्मपद में सि एवं कामपाल परे रहने से दीर्घ ॠ रामान्त धातु, वृ धातु, एवं सत्सङ्गादि ऋरामान्त धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है । स्मृ–भूतेश का आताम्, अस्मरिषाताम्, एकबार–अस्मृषाताम्, अस्मारिषाताम्, पद होता है । स्मृ-णल् सस्मार ॥१३२॥

सत्सङ्गाद्यृदन्तस्य ऋच्छे ऋॅ रामान्तानाञ्च गोविन्दोऽधोक्षज
मात्रे नतु वृष्णीन्द्रे ॥१३३॥

सस्मरतुः, सस्मरुः, नित्यं नेट्-सस्मर्थ, नित्यमिट्-सस्मरिव,
सस्मरिम, सस्मरे, स्मर्य्यात्, स्मृषीष्ट । स्मर्त्ता ।

यदि वृष्णीन्द्र न हो तो अधोक्षज परे रहने से सत्सङ्गादि ऋदन्त धातु, ऋ धातु ऋच्छ धातु एवं दीर्घ ॠरामान्त धातु का गोविन्द होता है। स्मृ-अतुस् सस्मरतुः, स्मृ-उस् सस्मरुः। थल् परे रहने से ऋराम के उत्तर नित्य इट् नहीं होता है, स्मृ-थल् सस्मर्थ । 'कृ सृ भृ वृ' सूत्र से नित्य इट् होता है–स्मृ-व सस्मरिव, स्मृ-म-सस्मरिम, स्मृ-ए-सस्मरे। स्मृ-कामपाल का यात् स्मर्य्यात् । स्मृ-षीष्ट-स्मृषीष्ट, यहाँ गोविन्द नहीं हुआ । स्मृ-ता-स्मर्त्ता ॥१३३॥

ऋराम-हनिभ्यामिट् स्ये स्वरतेश्च ॥१३४॥

स्मरिष्यति—

स्वृ-शब्दोपतापयोः-स्वरति, स्वर्य्यते, स्वर्य्यात् । 'स्वरति सूति' इति वेट्-अस्वारीत्, अस्वार्षीत् । 'स्वरिष्यति' इति तु नित्यम् ।

प्रत्यय का स्य परे रहने से ऋराम एवं हन धातु के उत्तर इट् होता है, एवं स्वृ धातु के उत्तर स्य रहने से भी इट् होता है ।

स्मृ-स्यति स्मरिष्यति । स्वृ धातु का अर्थ शब्द एवं उपताप है । 'स्वरति सूति' सूत्र से इसका इट् विकल्प में होता है । स्वृ-भूतेश का दिप्-अस्वारीत्, अस्वार्षीत् । स्वृ तिप् स्वरति, स्वृ-ते-स्वर्य्यते, स्वृ-यात् स्वर्य्यात् । स्वृ-ष्यति-स्वरिष्यति-इति तु नित्यमिट् ॥१३४॥

सृ गतौ-धावति । अजवार्थे-सरति—

ऋरामस्य रिः श-यक्-कामपाल-येषु, न च त्रिविक्रमः ॥१३५॥

स्रियते ।

सृ धातु गत्यर्थक है, १२८ सूत्र से इस धातु के स्थान में धाव आदेश होता है । सृ-तिप् धावति, वेगार्थ न होने से धाव आदेश नहीं होता है । सृ-तिप् सरति । श, यक्, एवं कामपाल का यराम परे रहने से ऋराम के स्थान में रि होता है और रि का त्रिविक्रम नहीं होता है । सृ-ते भाववाच्ये, स्रियते ॥१३५॥

सर्त्ति-शास्त्यर्त्तिभ्यो ङो भूतेशे कर्त्तरि ॥१३६॥

सृ, शासु, ऋ, धातु के उत्तर में कर्त्तृ वाच्य में भुतेश परे रहने से ङ आगम होता है ॥१३६॥

ऋद्वयान्त-दृशयो र्गोविन्दो ङे ॥१३७॥

असरत्, स्रियात्, सर्त्ता, सरिष्यति ।

ङ परे रहने से ऋद्वयान्त धातु एवं दृशि धातु का गोविन्द होता है । सृ-भूतेश का दिप्-असरत्, कामपाल का यात् सृ-यात्-स्रियात् । सृ-ता सर्त्ता, सृ-स्यति सरिष्यति ।

ऋ गतौ प्रापणे च-ऋच्छति, प्राच्छंति, अर्य्यते । आच्छंत, आरत् । समारत । 'नरादेररामस्य त्रिविक्रमः' आर, आरतुः, आरुः, आरिथ ।

ऋ धातु गत्यर्थ एवं प्राप्त्यर्थ है । ऋ-तिप् ऋच्छति, प्रऋच्छति प्राच्छंति, ऋ-भावे ते अर्य्यते । ऋ-भूतेश्वर का दिप्-आच्छंत् ।

ऋ-भूतेशे का दिप् आरत् । सम् उपसर्ग के उत्तर ऋधातु का आत्मपद होता है, अतएव सम् ऋ-भूतेश का आत्मपद में 'त' समारत । नर ऋ-णल् वृष्णीन्द्र, ऋराम का द्विर्वचन, नर अराम का त्रिविक्रम होकर आर पद निष्पन्न हुआ ।

ऋ-अतुस् अर्, द्विर्व्वचन, त्रिविक्रम, विष्णुसर्ग होकर आरतुः पद हुआ । ऋ-उस् आरुः, ऋ-थल् 'अत्यर्त्तिवृ व्येञ्भ्यो नित्यं' सूत्र से थल् परे रहने से इट् होकर आरिथ पद हुआ ॥१३७॥

श्रु-श्रवणे—

श्रुवः शपः श्नु स्तस्य शृश्च ॥१३८॥

श् इत् ।

श्रु धातु श्रवणार्थ है, श्रु धातु के शप् के स्थान में श्नु एवं श्रु धातु के स्थान में शृ होता है । श् इत् होता है, नु रहता है ॥१३८॥

उ-श्न्वो र्गोविन्दः ॥१३९॥

शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति, शृणोषि, शृणुथः, शृणुथ, शृणोमि ।

उ एवं श्नु का गोविन्द होता है । श्रु-तिप् शृणोति, श्रु-तस् शृणुतः, श्रु-अन्ति शृण्वन्ति । श्रु-सिप् शृणोषि, श्रु-थस् शृणुथः, श्रु-थ शृणुथ । श्रु-मिप् शृणोमि ॥१३९॥

असंयोग पूर्व्वस्य प्रत्ययोरामस्य हरो वा निर्गुण-वमोः॥१४०॥

करोतेस्तु नित्यं ये च ॥१४१॥

शृण्वः, शृणुवः, शृण्मः शृणुमः, श्रूयते, शृणुयात्, शृणोतु।

निर्गुण वराम एवं मराम परे रहने से असंयोग पूर्व जो प्रत्यय उराम उसका हर विकल्प में होता है। एवं निर्गुण वराम, मराम एवं यराम परे रहने से कृञ् धातु के उत्तर में स्थित उराम का नित्य हर होता है ॥१४०॥

श्रु-वस् शृण्वः, पक्षे शृणवः, श्रु-मस् शृण्मः, शृणुमः।

श्रु-भावे ते श्रूयते। श्रु-यात् 'विधि' शृणुयात्। श्रु-तुप् शृणोतु ॥१४१

उ रामात् प्रत्यादसंयोग पूर्व्वाद हे र्हरः ॥१४२॥

शृणु, शृणवानि, शृणवाव, शृणवाम। अशृणोत्। अश्रौषीत्,

शुश्राव, शुश्रुवतुः। थल्यपि नेट्-शुश्रोथ। श्रूयात्।

श्रोता, श्रोष्यति। अश्रोष्यत्। षु-प्रसवे-असावीत्।

असंयोग पूर्व प्रत्यय के उराम के परस्थित हि प्रत्यय का हर होता है। श्रु-हि-शृणु, श्रु-आनिप्-शृणवानि, शृ-आवप्-शृणवाव, श्रु-आमप्-शृणवाम। श्रु-दिप्-अशृणोत्, श्रु-भूतेश का दिप् अश्रौषीत्, शृ-णल्-शुश्राव, श्रु-अतुस्-शुश्रुवतुः, थल परे रहने से इट् नहीं होता है, शृ-थल्-सुश्रोथ। शृ-कामपाल का यात् शृयात्, श्रु-ता-श्रोता। श्रु-स्यति-श्रोष्यति। श्रु-स्यत्-अश्रोष्यत्।

षु धातु प्रसवार्थ में होता है। भूतेश के परपद में सि रहने से षु धातु के उत्तर में इट् होता है। षु-भूतेश का दिप्-असावीत् ॥१४२

स्रु गतौ—

णि-श्रि-द्रु-स्रु-कमिभ्योऽङ् भूतेशे कर्त्तरि ।।१४३।।

'धातोश्चतुःसनस्येयुवौ' असुस्रुवत् ।

स्रु धातु का अर्थ गमन है। ण्यन्त धातु श्रिञ् धातु, द्रुधातु एवं कम् धातु के उत्तर कर्त्तृ वाच्य में भूतेश परे रहने से अङ् होता है। तत् पश्चात् 'धातोश्चतुः सनस्येयुवौ सर्व्वेश्वरे' इस सूत्र का कार्य्य होगा। स्रु-भूतेश का दिप् असुस्रुवत् ।।१४३।।

गम् लृ गतौ, 'इषु गमि' इति च्छः-गच्छति, गम्यते—

पुषादि-द्युतादि लृदितो ङो भूतेश-परपदे ।।१४४।।

अगमत्, अगामि । अगसाताम्, अगंसाताम्, अगसत, अगंसत, अगथाः, अगंस्थाः । जगाम ।

गमनार्थ-गम् लृ धातु है, इसका लृ इत् होता है, गम् रहता है। 'इषु गमि यमां छः शिवे' इस सूत्र से गम्धातु के अन्त्य वर्ण के स्थान में छ होता है। गम्-तिप् गच्छति। गम्-भावे ते-गम्यते। भूतेश का परपद परे रहने से पूषादि द्युतादि एवं लृदित् धातु के उत्तर में ङ होता है। गम्-भूतेश का दिप्-अगमत्, गम्-भावे भूतेश का त, अगामि। गमेस्तु वा सूत्र से गम् धातु के उत्तर सि का कपिलत्व विकल्प में होता है। एवं 'हरिवेण्वन्त' सूत्र से हरिवेणु का हर होगा। गम्-भूतेश का आताम्-अगसाताम्, कपिलत्व न होने से अगंसाताम्, गम्-भूतेश का अन्त, अगसत, सि का कपिलत्व न होने से अगंस्थाः। गम्-णल् जगाम ।।१४४।।

गम-हन-जन-खन-घसामुद्धवादर्शनं,
कंसारिसर्व्वेश्वरे ङ विना ॥१४५॥

जग्मतुः, जग्मुः, जगमिथ, जगन्थ ।

ङ भिन्न कंसारि सर्व्वेश्वर परे रहने से गम, हन, जन, खन, घस, धातु के उद्धव का अदर्शन होता है ।

गम्-अतुस् जग्मतुः गम्-उस् जग्मुः । गम्-थल् जगमिथ, अनिट पक्ष में जगन्थ ॥१४५॥

गमेरिट् सरामादि-रामधातुके, नात्मपदे ॥१४६॥

गमिष्यति, गंस्यते ।

सरामादि रामधातुक परे रहने से गम धातु के उत्तर इट् होता है, किन्तु आत्मपद परे रहने से नहीं होता है ।

गम्-स्यति गमिष्यति, गम्-स्यते गंस्यते । स्कन्दिर् गति-शोषणयोः, 'ङो वा' नस्य हरः- अस्कदत्, पक्षे-अस्कान्त्सीत् ।

गत्यर्थ एवं शोषणार्थ स्कन्दिर् धातु है, इसका इर् इत् होकर स्कन्द रहता है । इरनुबन्ध हेतु ङ विकल्प में होता है, 'अनिरामेताम्' सूत्र से नराम का हर होता है । स्कन्द-भूतेश का दिप् अस्कदत्, ङ का अभाव पक्ष में अस्कान्त्सीत् ॥१४६॥

तॄ प्लवन-तरणयोः तरति—

ॠ रामस्येर कंसारौ ॥१४७॥

तीर्य्यते । अतारीत्, अतारि, अतरीषाताम्, अतरिषाताम्, अतारिषाताम्, पक्षे-नेट्-अतार्षाताम्, ततार, तेरतुः । तीर्य्यात्, तरिषीष्ट, तीर्षीष्ट, तारिषीष्ट, तरिषीध्वम्, तरिषीढ्वम्, तारिषीढ्वम्, तीर्षीढ्वम्, अतीढ्र्वम् । तरिता, तरीता, तारिता । दॄ-भये-दरति; दर्य्यते, दर्य्यात् । गोविन्दारामत्वान्नेत्वादि-ददरतुः, ददरिथ ।

प्लवनार्थ एवं तरणार्थ तॄ धातु है, तॄ-तिप्-तरति, कंसारि परे रहने से ॠ राम के स्थान में इर् होता है, 'धातोरव प्राक्, सूत्र

से त्रिविक्रम होगा। तॄ-भावे ते-तीर्य्यते। तॄ-भूतेश का दिप् अतारीत्, तॄ भूतेश का 'त' अतारि। तॄ-भूतेश का आताम्-अतरीषाताम्, दीर्घ न होने से अतरिषाताम्, इट् न होने से अतारिषाताम्, इट् विकल्प में होने से इट् का अभाव पक्ष में अतीर्षाताम्। तॄ-णल् ततार। तॄ-अतुस् तेरतुः, तॄ-कामपाल का यात् तीर्य्यात्, तॄ-सीष्ट, तरिषीष्ट, इट् न होने से तीर्षीष्ट, इण् पक्ष में तारिषीष्ट। तॄ-सीध्वम् तरिषीध्वम्, ढत्व पक्ष में तरिषीढ्वम्, इण् पक्ष में तारिषीध्वम्, तारिषीढ्वम्, अतॄ-भूतेश का ध्वम् अतीर्ढ्वम्। तॄ-ता तरिता, एकबार तरीता, इण् पक्ष में तारिता।

दॄ-यथार्थक है, दॄ-तिप् दरति, दॄ-ते दर्य्यते, दॄ-यात् दर्य्यात्, अधोक्षज परे रहने से गोविन्द होने से तज्जन्य अराम हेतु एत्वादि नहीं होगा। दॄ-अतुस् ददरतुः, दॄ-थल् ददरिथा ॥१४७॥

षन्ज् सङ्गे —

दन्श-रन्ज-षन्ज-स्वञ्जां नस्य हरः शपि ॥१४८॥

सजति, सज्यते, असाङ्क्ताम्, ससञ्ज, ससञ्जतुः, दृशिर् प्रेक्षणे—

पश्यति, दृश्यते, अदर्शत्।

सङ्ग अर्थ में षन्ज् धातु का प्रयोग होता है।

सङ्गार्थ षन्ज् धातु है। शप् परे रहने से दन्श, रन्ज, स्वनज, धातु के नराम का हर होता है। सन्ज्-तिप् सजति। सन्ज-ते-सज्यते। सन्ज भूतेश का दिप्-आसाङ्क्षीत्, सन्ज भूतेश का ताम् असाङ्क्ताम्। सन्ज-णल् ससञ्ज। सन्ज-अतुप् ससञ्जतुः, दृशिर् प्रेक्षण अर्थ में प्रयोग होता है, इसका इर् इत् होता है, दृश् रहता है, दृश्-तिप् पश्यति, दृश् भावे ते-दृश्यते, इरनुबन्ध धातु के उत्तरे 'ङ' विकल्प में होता है। दृश्-दिप्-अदर्शत् ॥१४८॥

सि पक्षे—

सृजि-दृशोरमकपिल वैष्णवे ॥१४८॥

भ् इत् । अद्राक्षीत्, अद्राष्टाम्, भावे–अदर्शि । अदृक्षाताम्, अदर्शिषाताम्, ददर्श, दर्दशिथ, दद्रष्ठ, दृश्यात्, दृक्षीष्ट, दर्शिषीष्ट, द्रष्टा, द्रक्ष्यति, अद्रक्ष्यत् । दन्श्-दंशने-दशति ।

सि पक्ष में–अकपिल वैष्णव परे रहने से सृज धातु दृश के अन्त्य स्वर के उत्तर में अम् होता है, अम् का मराम इत् होकर अराम रहता है।

ऋद्वयं र, वृष्णीन्द्र, छशोराज् सूत्र से षत्व, 'षढो: क: से' सूत्र का भी कार्य्य होगा। दृश्–भूतेश का दिप् अद्राक्षीत्, दृश्-भूतेश का ताम्, अद्राष्टाम्, दृश् भावे–भूतेश का 'त' अदर्शि, दृश-आताम् अदृक्षाताम्, एकबार अदर्शिषाताम्, दृश्-णल् ददर्श, दृश्-थल्-दर्दशिथ, दद्रष्ठ, दृश कामपाल का यात्-दृश्यात्, दृश्-सीष्ट दृक्षीष्ट, एकबार दर्शिषीष्ट, दृश्-ता द्रष्टा, दृश्-स्यति द्रक्ष्यति, दृश्-स्यत्-अद्रक्षत् । दंशनार्थ दन्श धातु है। दन्श्-तिप् दशति ॥१४९॥

कित् निवासे, रोगापनयने च—

गुप्-तिज्-किद्भ्य: सन् ॥१५०॥

कित् धातु का अर्थ निवास एवं रोगापनयन है। गुप् धातु, तिज धातु, एवं कित् धातु के उत्तर में सन् होता है ॥१५०॥

नेट् स्वार्थे सनि ॥१५१॥

निन्दार्थ में गुप् धातु के उत्तर सन् होता है एवं वध धातु के निन्दार्थ में सन् होता है, क्षमार्थ में तिज् धातु के उत्तर में सन् होता है, सन्देहार्थ में एवं रोग प्रतीकार अर्थ में कित् धातु के उत्तर में सन् होता है, विचारार्थ में मान धातु के उत्तर में सन् होता है, स्वार्थ सन् परे रहने से १५१ सूत्र से इट् नहीं होता है ॥१५१॥

ईश-समीपाद्विष्णुजनादनिट् सन् कपिलः ।।१५२।।

ईश के समीपवर्त्ती विष्णुजन के उत्तर में अनिट सन् कपिल होता है ।।१५२।।

ईशाच्च ।।१५३।।

पूर्व्व धातुवत् सनः परपदादि-विचिकित्सति ।

ईश के उत्तर अनिट् सन् कपिल होता है। जिस धातु के उत्तर में सन् होता है, सनन्त होने पर भी वह धातु परपदी वा आत्मपदी में जैसा था वैसा होगा ।

वि-कित् तिप् विचिकित्सति ।।१५३।।

।। इति भ्वादि-परपद प्रक्रिया ।।

अथ--भ्वादि आत्मपदप्रक्रिया

रधि-जभोर्नुम् सर्व्वेश्वरे ।।१५४।।

एध् वृद्धौ, एधते । तिज् निशाने, क्षमायाञ्च, निशानम् तीक्ष्णीकरणम्, तत्र तेजते, क्षमायाम्–तितिक्षते । जभ् गात्र विनामे, अर्थात् जृम्भण, जृम्भते । पण, पन व्यवहारे, स्तुतौ च पणायति, एभं पनायति; पणते ।।१५४।।

वृद्धि अर्थ में एध धातु प्रयुक्त होता है। एध-ते एधते, तिज् धातु तीक्ष्णीकरणार्थ एवं क्षमार्थ प्रयुक्त होता है, तिज्-ते तेजते, क्षमार्थ में तितिक्षते । जभ् धातु जृम्भणार्थ है ।

सर्व्वेश्वर परे रहने से रध धातु एवं जभ् धातु के सम्बन्ध में नुम होता है । जभ्-ते जम्भते, पण, एवं पन धातु व्यवहारार्थ एवं स्तुत्यर्थ है, आय् होने से पण-तिप् पणायति। पन-तिप् पनायति, पण-ते पणते ।।१५४।।

कमु कान्तौ, कान्तिरिच्छा—

कमेर्णिङ् ॥१५५॥

कामयते ।

इच्छार्थ कमधातु है। कमधातु के उत्तर में णिङ् होता हैं। कम्-ते, वृष्णीन्द्र होकर कामयते ॥१५५॥

णे र्हरोऽनिडादौ रामधातुके ॥१५६॥

काम्यते, कम्यते ।

इडादि रामधातु भिन्न रामधातु परे रहने से णिङ् का हर होता है ।

कम्-भावे ते काम्यते, एकबार आय् ईयङ् णिङ् रामधातु में विकल्प में होने पर कम्-ते कम्यते ॥१५६॥

अशास्वृदित उद्धवस्य वामनः ॥१५७॥

शासु धातु एवं ऋदित् धातु भिन्न अन्य धातु के उद्धव का वामन होता है ॥१५७॥

लघुयुक्त धात्वक्षर परस्य नरस्य सन्निमित्त-कार्य्यम् ॥१५८॥

जिस नर का लघुयुक्त धात्वक्षर है, उसका सन् निमित्त कार्य्य होता है ॥१५८॥

नरारामस्येरामः सनि ॥१५९॥

सन् परे रहने से नर के अराम के स्थान में इराम होता है ॥१५९॥

तत् परस्य नर-लघोस्त्रिविक्रमः ॥१६०॥

जिस नर का लघुयुक्त धात्वक्षर है, उस नर संज्ञक लघु का त्रिविक्रम होता है ॥१६०॥

अङ्-परे णौ, नतु दशावतारादर्शने ।।१६१।।

'णे र्हर:' अचीकमत, पक्षे अचकमत, कामयाञ्चक्रे ।

अय् गतौ–अयते, प्लायते, पलायते, पल्ययते ।

जिसके परे में अङ् है, तादृश णिङ् परे रहने से वामनादि होते हैं, किन्तु दशावतार के अदर्शन से वामनादि नहीं होते हैं ।

अनन्तर १५६ सूत्र से णिङ् का हर होता है, कम्-भूतेश का 'त' अचीकमत । णिङ् के अभाव पक्ष में अचकमत पद होता है, अधोक्षज में–कम्-ए, कामयाञ्चक्रे ।

अय धातु गमनार्थक है, अय-ते अयते । अय धातु परे होने से प्र-अयते-प्लायते, परा-अयते पलायते, परि-अय-ते पल्ययते होता है ।।१६१।।

ओ प्यायी वृद्धौ, ओ-ई-रामावितौ, प्यायते—

दीप्-जनी-बुध्यति-पुरी-तायि-प्यायिभ्य इण् वा भूतेश-ते कर्त्तरि ।।१६२।।

'इणस्तो हर:' अप्यायि, अप्यायिष्ट ।

वृद्धि अर्थ में ओप्यायी धातु होता है, इसका ओराम एवं ईराम इत् होता है । प्याय रहता है । प्याय-ते प्यायते ।

कर्त्तृ वाच्ये भूतेश का त परे रहने से दीप्, जनी, बुध, पुरी, तायी, प्यायी धातु के उत्तर में विकल्प में इण् होता है ।

इण् के उत्तर में 'त' का हर होता है । प्यायी-त-अप्यायि, अप्यायिष्ट ।।१६२।।

प्याय: पीर्यङधोक्षजयो: ।।१६३।।

पिप्ये, पिप्याते, पिप्यिरे ।

काशृ दीप्तौ-काशते । काशाञ्चक्रे । कासृ-कास रोग शब्दे-कासते ।

गाङ् गतौ, गाते, गाते, गासे, गीयते ।

यङ् एवं अधोक्षज परे रहने से प्याय धातु के स्थान में पी आदेश होता है । पी आदेश होने से 'असंयोग पूर्वस्यानेक-सर्वेश्वरस्येद्वयस्य तु य:' सूत्र द्वारा ईराम का 'यत्व' होगा । प्यायी अधोक्षज का ए-पिप्ये । प्यायी-अधोक्षज का आते पिप्याते । प्यायी-इरे-पिप्यिरे । कासृ-धातु का अर्थ है दीप्ति, इसका ऋराम इत् होकर कास रहता है । कास्-ते कासते । गाङ् धातु का अर्थ गमन है, इसका ङराम इत् होता है, गा रहता है ।

गा-ते गाते, गा-आते-गाते, गा-अन्ते गाते, गा-से गासे । गी, भावे-ते-गीयते ।।१६३।।

देङ् पालने-दयते, दीयते । अदित, अदिषाताम्—

देङ: सनरस्य दिगि रधोक्षजे ।।१६४।।

दिग्ये । गुप्-गोपन-कुत्सनयो: गोपते, कुत्सायाम्-जुगुप्सते ।

देङ् धातु का अर्थ पालन है, ङराम इत् होकर दे रहता है । दे-ते दयते, दे-भावे ते दीयते । दे भूतेश का त, अदित, दे-भूतेश का आताम् अदिषाताम् । अधोक्षज परे रहने से नर के सहित देङ् धातु के स्थान में दिगी होता है । दे-अधोक्षज का 'ए' दीग्ये, गुप् धातु गोपन एवं कुत्सनार्थ का है, गुप्-ते-गोपते, कुत्सार्थ में जुगुप्सते ।।१६४।।

मान-विचारणे, पूजायाञ्च—

मान-बध-दान-शान्भ्यः सन्नीरामश्च नरस्य ।।१६५।।

मीमांसते । पूजायाम्-मानते । बध बन्धने-निन्दायाञ्च-बधते, निन्दायाम्-बीमत्सते । बीमत्साञ्चक्रे । पक्षे-बेधे ।

मान-धातु, बध धातु, दान धातु एवं शान धातु के उत्तर में सन् होता है एवं नर के अन्त के स्थान में ईराम होता है ।

मान-ते मीमांसते, पूजा अर्थ में मानते । बध-बन्धनार्थ एवं निन्दार्थ है, बध-ते बधते, निन्दार्थ में बध-ते बीमत्सते । बध-अधोक्षज में ए-बीमत्साञ्चक्रे । पक्ष में बेधे ।।१६५।।

रभ्-कौतुके, आङ्-पूर्व्वस्त्वारम्भे—

रभि-लभोर्नुम् शवधोक्षजवर्ज्जित-सर्व्वेश्वरे ।।१६६।।

आरभते, आरभ्यते । आरब्ध, आरम्भि ।

रभ धातु कौतुकार्थ में प्रयुक्त होता है । किन्तु आङ् पूर्व में होने से आरम्भ अर्थ होता है । शप् एवं अधोक्षज भिन्न सर्व्वेश्वर परे रहने से रभ एवं लभ धातु का नुम् होता है ।

आङ्-रभ-ते-आरभते । आङ्-रभ-कर्मवाच्य में ते-आरभ्यते । आङ्-रभ-भूतेश के आत्मपद में त, आरब्ध ।

भाववाच्ये—आङ्-रभ-त आरम्भि ।।१६६।।

डुल भष् प्राप्तौ, डु षावितौ, लभते, लभ्यते—

लभेर्नुम् णम्बिणोर्व्वा, सोपेन्द्रस्य तु नित्यम् ।।१६७।।

अलब्ध, अलम्भि, अलाभि, प्रालम्भि ।

प्राप्ति अर्थ में डुलभष धातु है, इसका डु-ष इत होता है, लभ् रहता है । लभ्-ते लभते । लभ्-भावे ते लभ्यते, लभ्-भूतेश के आत्मपद में 'त' अलब्ध ।

जमु एवं इण् परे रहने से लभ धातु के उत्तर में विकल्प में नुम् होता है, किन्तु उपेन्द्र के सहित वर्त्तमान होने से नित्य नुम् होता है । लभ्-भूतेश के आत्मपद में 'त' अलम्भि पक्ष में अलाभि, प्र-लभ् त प्रालम्भि ।।१६७।।

द्युत दीप्तौ, द्योतते। 'पुषादि द्युतादि' इति ङः अद्युतत् अद्योतिष्ट।

स पर सर्व्वेश्वर-य-व-राणामि-उ-ऋ-रामादेशः

सङ्कर्षण-संज्ञः ॥१६८॥

'सं प्रसारणम्' इत्यन्ये।

पर सर्व्वेश्वर के सहित यराम के स्थान में इराम, वराम के स्थान में उराम एवं ऋराम के स्थान में रराम आदेश सङ्कर्षण संज्ञक होता है। अन्य के मत में संप्रसारण संज्ञक है ॥१६८॥

द्युति-ण्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः ॥१६९॥

दिद्युते।

द्युत धातु एवं ण्यन्त ष्वप धातु के नर का सङ्कर्षण होता है। द्युत-अधोक्षज के 'ए' दिद्युते ॥१६९॥

वृतु वर्त्तने-वर्त्तते। अवृतत्, अवर्त्तिष्ट—

वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दूभ्यो नेट् सरामे आत्मपदाभावे ॥१७०॥

वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते।

वृत् धातु का अर्थ है, वर्त्तन, इसका उराम इत् होकर वृत् रहता है। वृत्-ते, वर्त्तते, द्युतादि होने के कारण विकल्प में भूतेश का परपद होता है। वृत्-भूतेश का दिप्-अवृतत्, पक्षान्तर में भूतेश के आत्मपद का त, अवर्त्तिष्ट, स्य वा स्यन् होने पर वृतु प्रभृति धातु का विकल्प में परपद होता है। वृतु, वृधु, शृधु, स्यन्दु धातु के उत्तर में इट् नहीं होता है, आत्मपद भिन्न सराम परे रहने से, वृत्-स्यति-वर्त्स्यति, वृत्-स्यते वर्त्तिष्यते ॥१७०॥

कृपू सामर्थ्ये—

कृपेरृ लृ ।।१७१।।

कल्पते । अक्लृपत्, अक्लृप्त, अकल्पिष्ट । 'नर ऋ-रामस्यारामः'
चक्लृपे । कल्प्ता । आत्मपदे-कल्प्ता, कल्पिता ।

कृपू सामर्थ्ये, इसका ऊराम इत् होकर कृप् रहता है। कृप धातु के ऋराम के स्थान में लृराम होता है ।

कृप्-ते कल्पते, कृप्–भूतेश का दिप्, अक्लृपत, कृप्–भूतेश के आत्मपद में त-अकल्पिष्ट । अक्लृप्त । नर ऋराम का अराम आराम होकर कृप्-ए-चक्लृपे । कृप्-ता कल्प्ता, आत्मपद में कृप्-ता कल्प्ता एवं कल्पिता ।।१७१।।

व्यथ् दुःखे, भये, चलने च–व्यथते । भूतेशे तु अव्यथिष्ट,
भावे–अव्याथि, विव्यथे ।

व्यथो नरस्य सङ्कर्षणोऽधोक्षजे ।।१७२।।

व्यथ-धातु-दुःखार्थ, भयार्थ एवं चलनार्थ में प्रयुक्त होता है। व्यथ्-ते, व्यथते । व्यथ भूतेश के आत्मपद में 'त' अव्यथिष्ट, भावे–भूतेश के आत्मपद में त-अव्याथि ।

अधोक्षज परे रहने से व्यथ धातु के नर का सङ्कर्षण होता है। किन्तु एकबार सङ्कर्षण होने से पुनर्वार सङ्कर्षण नहीं होता है। व्यथ–अधोक्षज का ए विव्यथे ।।१७२।।

ऊह वितर्के-ऊहते, ऊह्यते—

उपेन्द्रादूहते र्वामनः कपिल-ये ।।१७३।।

समुह्यते, समोह्यते, समोह्यत ।

ऊह धातु वितर्कार्थ है। ऊह-ते ऊहते, ऊह-भावे ते ऊह्यते । कपिल यराम परे रहने से ऊह धातु का वामन होता है। सम्-ऊह भावे-ते समूह्यते । आ-ऊह्यते, ओह्यते, समोह्यत । वृष्णीन्द्र का नित्यत्व हेतु वामन न होकर वृष्णीन्द्र होता है। सम्-ऊह-भाव वाच्य में भूतेश के आत्मपद का 'त' समोह्यत ।।१७३।।

।। इति भ्वादि-आत्मपद प्रक्रिया ।।

अथ भ्वादि-मिश्र प्रक्रिया

पत् लृ गतौ-पतति—

पतः पुम् ङे ॥१७४॥

उमावितौ, अपप्तत् ।

गत्यर्थक पतलृ धातु है, इसका लृराम इत् होकर पत् रहता है । पत् लृ-तिप् पतति । ङ परे रहने से पत धातु के उत्तर में पुम् होता है । इसका उम् इत् होता है । पत्-भूतेश का दिप्-अपप्तत्॥१७४

सह मर्षणे-सहते—

सहि वहोररामस्य ओरामो ढ-लोपे ॥१७५॥

सोढ़ा, सहिता । षद् लृ विशरण-गत्यवसादनेषु, सीदति ।

सह धातु मर्षणाथक है । सह-ते-सहते । ढ लोप होने से सह धातु एवं वह धातु के अराम के स्थान में ओराम होता है । सह-ता सोढ़ा, एकबार सहिता षद् लृ धातु का अर्थ विशरण, गमन, एवं अवमादन है, इसका लृराम इत् होता षद् रहता है । षद् धातु के स्थान में १२८ सूत्र से सीद आदेश होता है । षद्-तिप् सीदति । नि-षद्-तिप्-निषीदति ॥१७५॥

शद् लृ शातने, शातनम् छेदनम्—

शदेरात्मपदं शिवे ॥१७६॥

'शदेः शीय' शीयते । फण-गतौ, फणति । पफाण, फेणतुः, ।

राजृ-दीप्तौ, राजति, राजते । रेजतुः, रराजतुः ।

टु भ्राजृ-दीप्तौ-भ्राजते । भ्रेजे, बभ्राजे ।

शद् लृ धातु का अर्थ- छेदन है, इसका लृराम इत् होता है । १२८ सूत्र से शद् धातु के स्थान में शोप आदेश होता है । शिव परे रहने से शद धातु के उत्तर में आत्मपद होता है । शद्-ते शोयते । गमनार्थक फण धातु है । फण्-तिप्-फणति, फण्-णल्-पफाण,

फण्-अतुस् फेणतुः, पक्षे–पफणतुः। राजृ धातु का अर्थ दीप्ति है, इसका ऋराम इत् होता है, राज् रहता है, राज्-तिप् राजति, राज्-ते राजते, राज्-अतुस् रेजतुः, पक्षे–रराजतुः। टु भ्राजृ का अर्थ-दीप्ति है। टु एवं ऋ इत् होता है, भ्राज् रहता है, भ्राज्-ते-भ्राजते। भ्राज्-अधोक्षज का ए भ्रेजे, पक्ष में–बभ्राजे ॥१७६॥

खनु–अवदारणे–खनति, खनते—

जन-खन-सनामारामो वा कंसारि-ये ॥१७७॥

खायते, खन्यते चखान, चख्नतुः। खायात् खन्यात्।

अवदारण अर्थ में खनु धातु का प्रयोग होता है। इसका उराम इत् होकर खन रहता है। खन्-तिप् खनति, खन्-ते खनते। कंसारि यराम परे रहने से जन खन एवं सन धातु का अन्तवर्ण आराम विकल्प में होता है।

खन्–भावे ते–खायते, पक्षे खन्यते। खन्–णल् चखान, खन्-अतुस् चख्नतुः, खन् कामपाल का यात् खायात, पक्षे खन्यात्॥१७७

दुह्-लिह्-दिह्-गुहेभ्यः सको हरो वादन्त्याद्यात्मपदे ॥१७८॥

गुहू संवरणे। ऊराम इत्, गूहति, गूहते, अगूहीत्, अघुक्षत्, अगूहिष्ट। अगूढ़, अघुक्षत, इत्यादि।

संवरणार्थ गुहू धातु है, ऊराम इत् होकर गुह् रहता है। सर्व्वेश्वर परे रहने से गुह धातु के उराम जात ओराम के स्थान में ऊराम होता है। गुह्-तिप् गूहति, गुह्-ते गूहते। गुह–भूतेश का दिप्-अगूहीत्, पक्षे–अघुक्षत्, गुह–भूतेश का 'त' अगूहिष्ट।

दन्त्यादि आत्मपद परे रहने से दुह लिह दिह गुह धातु के उत्तर में सक् का हर विकल्प में होता है। गुह भूतेश का त अगूढ़, एकबार अघुक्षत ॥१७८॥

हृञ् हरणे हरति, हरते, अहार्षीत्—

हृस्य जो नरस्य ।।१७८।।

जहार । भज्-सेवायाम्-भजति, भजते । बभाज, भेजतुः, भेजुः, भेजिथ बभक्थ । श्रिञ् सेवायाम् 'णि-श्रि' इति अङ् अशिश्रियत् । रञ्ज् रागे-रजति, रज्यते ।

हरणार्थ हृञ् धातु, इसका ञराम इत् होकर हृ रहता है। हृ-तिप् हरति, हृ-ते हरते, हृ भूतेश का दिप् अहार्षीत्। नर हराम के स्थान में जराम होता है। हृ-णल् जहार, सेवार्थ भज धातु, भज्-तिप् भजति, भज्-ते भजते, भज्-णल-बभाज, भज्-अतुस् भेजतुः, भज्-उस् भेजुः, भज्-थल् भेजिथ, बभक्थ सेवनार्थ श्रिञ् धातु, इसका ञराम इत् होकर श्रि रहता है, इसमें 'णि श्री' सूत्र से अङ होता है। श्रि—भूतेश का दिप् अशिश्रियत्। रागार्थ रञ्ज् धातु, रञ्ज्-तिप्-रजति, रञ्ज् ते रज्यते ।।१७९।।

यज् देवपूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु-यजति यजते—

वचि-स्वपि-यजादीनां सङ्कर्षणः कपिले ।।१८०।।

यजो वपो वह श्चैव वेञ् व्येञो ह्वयति स्तथा ।
वद्-वसो श्वयतिश्चैव नवैते स्युर्यजादयः ।।
इज्यते, ऐज्यत ।

यज् धातु का देवपूजार्थ सङ्गति करणार्थ, एवं दानार्थ है। यज्-तिप् यजति, यज्-ते यजते ।

कपिल परे रहने से वच स्वप् एवं यजादि धातु का सङ्कर्षण होता है। यजादि धातु यथा—यज वप वह वेञ् व्येञ ह्वेञ वद वस एवं श्वि ये ९ यजादि हैं। यज्-भावे ते, इज्यते, यज्-भूतेश का त, सङ्कर्षण एवं अत् प्रसङ्ग मात्रे वृष्णीन्द्र होकर ऐज्यत पद हुआ।।१८०।।

वच्यादीनां ग्रहादीनाञ्च नरस्य सङ्कर्षणोऽधोक्षजे ।।१८१।।

इयाज, ईजतुः, ईजुः । डुवप् वीज तन्तु सन्ताने-वपति, वपते, उप्यते । वह प्रापणे–वहति वहते, उह्यते । वेञ् तन्तु सन्ताने-वयति, वयते, ऊयते । ववौ, ववतुः ।

अधोक्षज परे रहने से वच्यादि धातु एवं ग्रहादि धातु के नर का सङ्कर्षण होता है । यज्-णल् इयाज, यज्-अतुस् ईजतुः, यज्-उस्-ईजुः । डु वप् धातु, वीज सन्तानार्थ है, एवं तन्तु सन्तानार्थ है, इसका डुराम इत् होकर वप् रहता है । वप्-तिप् वपति, वप्-ते वपते, वप् भावे ते उप्यते । वह प्रापणार्थ है, वप्-तिप् वहति, वह-ते वहते, वह भावे ते-उह्यते ।

वेञ् धातु का अर्थ–तन्तु सन्तान है, इसका ञराम इत् होता है, वे रहता है । वे-तिप्-वयति । वे-ते वयते, वेञ्-भावे ते ऊयते । अधोक्षज परे रहने से वेञ् धातु का सङ्कर्षण नहीं होता है । वेञ्-णल् ववौ, वेञ्-अतुस् ववतुः ।।१८१।।

ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वशि-व्यचि-व्रश्चि-प्रछि-भ्रस्जीनां सङ्कर्षणः कंसारौ ।।१८२।।

वयोयस्य वो वा कपिले ।।१८३।।

ऊयतुः, ऊवतुः, व्येञ् संवरणे ह्वेञ् स्पर्द्धायाम् वस् निवासे । वद व्यक्तायां वाचि ।

टु ओश्वि गति–वृद्धचोः । 'टु ओ' इतौ, श्वयति, श्वयते, शूयते ।

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, वच, व्रश्च, प्रछि एवं भ्रस्ज का सङ्कर्षण होता है, कंसारि परे रहने से ।।१८२।।

कपिल परे रहने से वय धातु के यराम के स्थान में वराम विकल्प में होता है । वेञ्-अतुस् ऊयतुः, पक्षे ऊवतुः । व्येञ् धातु का

अर्थ सम्वरण है, इसका ञराम इत् होकर व्ये रहता है। ह्वेञ् धातु का अर्थ स्पर्द्धा है, इसका ञराम इत् होकर ह्वे रहता है। वस धातु निवासार्थ है, वद धातु का अर्थ–व्यक्त वाक्यार्थ है।

गत्यर्थ एवं वृद्धयर्थ में टु ओश्वि धातु प्रयुक्त होता है। इसका टु ओ इत होकर श्वि रहता है। श्व-तिप्-श्वयति, श्वि-ते-श्वयते, शिय-भावे ते-शूयते ॥१८३॥

जॄ स्तन् भू-भ्रुचु म्लुचु, ग्लुञ्चु ग्लुचु-श्विभ्यो ङो वा भूतेश परपदे ॥१८४॥

अश्वत्, अश्वयीत्, पक्षे–अङ-अशिश्वियत्। शुशाव, शुशुवतुः शुशविथ। शिश्वाय, शिश्वयतुः, शिश्वयिथ।

भूतेश का परपद परे रहने से जॄ स्तन् भू भ्रुचु म्लुचु ग्रुचु ग्लुन्चु ग्लुचु श्वि धातु के उत्तर में ङ विकल्प में होता है। ङ परे रहने से श्वि धातु का इराम हर होता है। श्वि-भूतेश का दिप्-अश्वत्, पक्षे–अङ् अशिश्वियत्। श्वि-णल् शुशाव, श्वि-अतुस् शुशुवतुः, श्वि-थल्-शुशविथ, श्वि-णल् शिश्वाय, श्वि-अतुस् शिश्वियतुः, श्वि-थल् शिश्वयिथ ॥१८४॥

॥ इति भ्वादि मिश्रपद-प्रक्रिया भुवादिगणः समाप्तः ॥

अथ अदादिः

अद भक्षणे—

अदादेः शपो महाहरः ॥१८५॥

अत्ति, अत्तः, अदन्ति, अद्यते, अद्यात् अत्तु।

अद धातु भक्षणार्थ। अदादि धातु के उत्तर में शप का महाहर होता है।

अद्-तिप् अत्ति, अद्-तस् अत्तः, अद्-अन्ति-अदन्ति। अद्-भावे ते अद्यते। अद्-यात् अद्यात्। अद्-तुप् अत्तु ॥१८५॥

हु-वैष्णवाभ्यां हे धिः ॥१८६॥

अद्धि ।

हु धातु के पश्चात् एवं वैष्णव के पश्चात् हि के स्थान में धि होता है। अद्-हि अद्धि ॥१८६॥

अदेरट् भूतेश्वर-दि-स्योः ॥१८७॥

आदत, आदः ।

भूतेश्वर के दिप एवं सिप् परे रहने से अद् धातु के उत्तर में अट् होता है, अट् का टराम इत् होकर अराम रहता है।
अद्-भूतेश्वर के दिप् आदत्, अद्-भूतेश्वर के सिप् आदः ॥१८७॥

अदोघस् लृ भूतेश-सनोरधोक्षजे तु वा ॥१८८॥

'पूषादि' इति ङः-अघसत् । अघासि । अघत्साताम् । जघास, जक्षतुः, जघसिथ । पक्षे-आद, आदतुः । प्सा भक्षणे-प्साति । वश् कान्तौ, कान्तिरिच्छा । वष्टि, उष्टः उशन्ति, वक्षि, उश्यते, वष्टु, षस्य डः-उड्ढि ।

अद धातु के स्थान में भूतेश एवं सन् परे रहने से घस्लृ आदेश होता है। अधोक्षज परे रहने से विकल्प में होता है, घस्लृ का इत् होता है घस् रहता है। पूषादि सूत्र से भूतेश के परपद में ङ होता है । अद्-भूतेश का दिप्-अघसत् अद्-भावे भूतेश का 'त' अघासि । अद्-भूतेश का आताम् अघत्साताम्, अद्-णल-जघास, अद्-अतुस् जक्षतुः । अद्-थल् जघसिथ । पक्षे-अद्-णल आद, अद्-अतुस् आदतुः, अद्-थल्-आदिथ ।

प्सा भक्षणार्थ है, प्सा-तिप् प्साति । इच्छार्थ वश् धातु, वश्-तिप् वष्टि, वश्-तस् उष्टः, वश्-अन्ति-उशन्ति, वश्-सिप् वक्षि, वश्-भावे ते-उश्यते । वश्-तुप् वष्टु षराम के स्थान में डराम होता है, वश्-हि-उड्ढि ॥१८८॥

विष्णुजनाद्दिस्यो र्हरः ॥१८९॥

अवट्, औष्टाम् । हन् हिंसा-गत्योः हन्ति, हतः । 'हनो हस्य घो णिन्नयोः'-घ्नन्ति, हसि, हथः, हथ, हन्मि, हन्वः हन्मः ।

विष्णुजन के पश्चात् दिप् एवं सिप् का हर होता है। वश्-दिप् अवट्। वश-भूतेश्वर का आताम् औष्टाम् । हिंसा एवं गमनार्थ में हन धातु का प्रयोग होता है। हन्-तिप् हन्ति, हरिवेणु का हर होने से हन्-तस् हतः, उद्धव का अदर्शन एवं 'हनोहस्य घो-णिन्नयोः' सूत्र से हराम घराम होने पर हन्-अन्ति घ्नन्ति होता है। हन्-सिप्-हंसि, हन्-थस् हथः, हन्-थ हथ, हन्-मि हन्मि, हन्-वस्-हन्वः हन्-मस् हन्मः ॥१८९॥

हन्हे र्जहि ॥१९०॥

जहि पक्षेतु–हतात् ।

हि परे रहने से उसके सहित हन धातु के स्थान में जहि होता है। हन्-हि-जहि । पक्षे–तातङ्-हतात् ॥१९०॥

हनो बधो भूतेश–कामपालयोः ॥१९१॥

भूतेशात्मपदे तु वा ॥१९२॥

अबधीत्, अबधि, अघानि ।

भूतेश एवं कामपाल परे रहने से हन धातु के स्थान में बध आदेश होता है ॥१९१॥

भूतेश के आत्मपद में हन धातु के स्थान में विकल्प में बध आदेश होता है । हन्-भूतेश का दिप्-अबधीत् । हन् धातु भूतेश के आत्मपद में 'त' अबधि, बध आदेश न होने पर अघानि पद होगा ।१९२॥

नराद्धन्ते हंस्य घः ।।१६३।।

जघान, जघ्नतुः जघ्नुः । बध्यात् । हनिष्यति । इण् गतौ,
ण इत्, एति, इतः, ईयते, इयात् ।

नर के उत्तर में हन धातु के हराम के स्थान में घराम होता है। हन्-णल् जघान। हन्-अतुस् जघनतुः, हन्-उस् जघ्नुः। हन्-कामपाल का यात् बध्यात्। हन्-स्यति-हनिष्यति। इण् गतौ, 'न' इत् होता है, इन्-तिप्-एति, इण्-तस् इतः, इण्-भावे ते-ईयते। इन् विधि का यात्-इयात् ॥१६३॥

इनो गा भूतेशे ।।१६४।।

अगात् इण् स्थेति सेर्महाहरः । वृष्णोन्द्रः द्विर्वचनं, इयादेशः, इयाय ।
ततो द्विर्वचने इयादेशे च कृते ईयतुः, ईयुः ।

भूतेश परे रहने से इण् धातु के स्थान में गा होता है। इण् स्था सूत्र से सि का महाहर होता है। इन् भूतेश का दिप् अगात्। वृष्णीन्द इयादेश होने पर इन्-णल् इयाय इन्-अतुस् ईयतुः, इन्-उस्-ईयुः ॥१६४॥

इक् स्मरणे—

इकिङौ नित्यमधि-पूर्व्वौ ।।१६५।।

अध्येति, अधीतः, अधियन्ति, अध्ययात् । मा माने-माति,
मीयते, मेयात् ।

स्मरण अर्थ में इक् धातु होता है। इक् धातु एवं इन् धातु नित्य अधिपूर्व होता है। अधि इक् तिप् अध्येति। अधि इक् तस् अधीतः। अधि-इक्-अन्ति अधियन्ति। अधि-इक्-भूतेश का दिप् अध्यगात्।

मानार्थ में मा धातु है। मा-तिप् माति, मा-भावे ते-मीयते, मा-यात् मेयात् ॥१६५॥

ख्या प्रकथने, ख्याति, ख्यीयते, ख्येयात्—

अस्यति-वक्ति ख्यातिभ्यो ङ भूतेशे कर्त्तरि ।

आरामहरः-अख्यत्, या प्रापणे-याति, यायते । वा गति गन्धनयोः, गन्धनम्-हिंसा, सूचनं वा, वाति । द्रा कुत्सायाम्, निपूर्वो निद्रायाम्-निद्राति ॥१९६॥

ख्या धातु का अर्थ प्रकृष्ट रूप से कथन है । ख्या-तिप् ख्याति, ख्या-ते-ख्यीयते, ख्या-यात् ख्येयात् । कर्त्तृ वाच्य में भूतेश परे रहने से अस्धातु, वच धातु, एवं ख्या धातु के उत्तर में ङ होता है । ख्या–भूतेश का दिप् अख्यत्, आराम का हर हुआ । प्रापणार्थ या धातु, या-तिप्-याति । या-भावे ते यायते । वा-धातु गत्यर्थ एवं गन्धनार्थ है, गन्धन शब्द से हिंसा एवं सूचन अर्थ जानना होगा । वा-तिप् वाति, कुत्सार्थ द्राधातु है, निपूर्व होने से निद्रा अर्थ होता है । नि-द्रा-तिप्-निद्राति ॥१९६॥

विद् ज्ञाने-वेत्ति, वित्तः, विदन्ति इत्यादि ।

वेत्ति-प्रभृतीनां वेदादयो नव निपाता वा ॥१९७॥

वेद, विदतुः, विदुः, वेत्थ, विदथुः, विद, वेद, विद्व, विद्म ।

ज्ञानार्थ विद् धातु है, विद्-तिप् वेत्ति, विद्-तिप् तस् वित्तः, विद्-अन्ति विदन्ति । वेत्ति प्रभृति ९ पद के स्थान में वेद प्रभृति ९ निपात विकल्प में होते हैं । वेत्ति वेद, वित्तः विदतुः, विदन्ति विदुः । वेत्सि वेत्थ, वित्थः विदथुः, वित्थ विद, वेद्मि वेद, विद्वः विद्व, विद्मः विद्म । अन्तिम पद द्वय में विष्णुसर्ग न होकर निपात हुआ है ॥१९७॥

वेत्तु-प्रभृतीनां विदाङ्कुरोतु-प्रभृतीनि वा ॥१६८॥

विदाङ्कुरोतु विदाङ्कुरुताद्वा, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु, विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुताद्वा, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत, विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाम, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम इति ।

वेत्तु प्रभृति के स्थान में विदाङ्कुरोतु प्रभृति विकल्प में निपात होते हैं ।

वेत्तु-विदाङ्कुरोतु विदाङ्कुरुतात, वित्तां विदाङ्कुरुताम, विदन्तु विदाङ्कुर्वन्तु । विद्धि विदाङ्कुरु विदाङ्कुरुतात्, वित्त विदाङ्कुरुतम् । वित्त विदाङ्कुरुत, विदानि विदाङ्करवाणि, वेदाव विदाङ्करवाव, वेदाम विदाङ्करवाम ॥१६८॥

अवेत्, अवित्ताम् अविदुः—

द-धोरुः सिपि वा ॥१६६॥

अवेः, अवेत्, अवेदीत् ।

विद्-भूतेश्वर का दिप्-अवेत्, विद्-भूतेश्वर का ताम् अवित्ताम्, विद्-भूतेश्वर का अन्-अविदुः । सिप् परे रहने से दराम एवं धगाम के स्थान में विकल्प में रु होता है, रु का उराम इत् होकर रराग रहता है । विद्-भूतेश्वर का सिप् अवेः, पक्षे अवेत्, विद्-भूतेश का दिप् अवेदीत् ॥१६६॥

'उष-वेत्ति' इति आम्—

विदेरामि न गोविन्दः ॥२००॥

विदाञ्चकार, विवेद ।

विद धातु के उत्तर में 'उषवेत्तीत्यादि' सूत्र से आम् होगा । आम् परे रहने से विद् धातु का गोविन्द नहीं होता है ।

विद्-णल् विदाञ्चकार, विवेद ॥२००॥

अस् भुवि, सत्तायामित्यर्थः अस्ति—

श्नमस्त्योरराम हरो निर्गुणे ॥२०१॥

स्तः, सन्ति ।

अस् धातु भू धात्वर्थ है, अर्थात् सत्तार्थ है । अस्-तिप् अस्ति, निर्गुण प्रत्यय परे रहने से श्नम् का एवं अस् धातु का अराम हर होता है । अस्-तस् स्तः, अस्-अन्ति सन्ति ॥२०१॥

अस्तेः स-लोपः से ॥२०२॥

असि, स्थः, स्थ, अस्मि, स्वः, स्मः ।

सराम परे रहने से अस् धातु का सराम लोप होता है ।

अस्-सिप् असि, अस्-थस् स्थः, अस्-थ स्थ, अस्-मिप् अस्मि, अस्-वस् स्वः, अस्-मस् स्मः ॥२०२॥

अस्ते र्भूः ब्रुवो वचो रामधातुके ॥२०३॥

भूयते, स्यात्, स्याताम्, अस्तु, स्ताद्वा ।

रामधातु परे रहने से अस् धातु के स्थान में भू एवं ब्रूञ् धातु के स्थान में वच् आदेश होता है । अस्-भावे-ते-भूयते । अस्-विधि का यात्, स्यात्, अस्-विधि का याताम् स्याताम् । अस्-तुप् अस्तु; पक्षे स्तात् ॥२०३॥

अस् हे रेधि ॥२०४॥

एधि । पक्षे-स्तात् । असानि, आसीत् ।

अस् धातु के उत्तर में 'हि' प्रत्यय होने से 'अस्-हि' रहता है, इस प्रकृति प्रत्यय के स्थान में 'एधि' आदेश होता है । अस्-आशीर्वाद अर्थ में हि 'एधि' पक्ष में 'हि' के स्थान में 'तात्' होकर एवं अस् धातु का लोप होकर 'स्तात्' पद हुआ । अस्-आनिप्-असानि, अस्-भूतेश्वर का दिप्-आसीत् ॥२०४॥

अस्ते र्नारामहरो भूतेश्वरे ॥२०५॥

आस्ताम्, आसन्, अभूत, मृजूष-शुद्धौ, ऊषावितो, वृष्णीन्द्रः—
मार्ष्टि, मृष्टः, मृजन्ति, मार्जन्ति, मार्क्षि, मृज्यते, मृड्ढि, अमार्ट्, अमार्जीत्, अमार्क्षीत्, ममृजतुः, ममार्जतुः ममृजुः। वच् परिभाषणे-
वक्ति, वक्तः, उच्यते।

भूतेश्वर परे रहने से अस् धातु का आरामहर नहीं होता है। अस्-भूतेश्वर का ताम् आस्ताम्, अस्-अन् आसन्। अस्-भूतेश का दिप् अभूत्। मृजूष् धातु का अर्थ शुद्धि, ऊ एवं ष इत् होता है, मृज् रहता है। मृज् धातु का वृष्णीन्द्र होता है। मृज्-तिप् मार्ष्टि, मृज का वृष्णीन्द्र न होने से मृज्-तस् मृष्टः, मृज्-अन्ति मृजन्ति, मार्जन्ति, वृष्णीन्द्र विकल्प में होता है, भाष्यकार के मत में- मृज्-सिप् मार्क्षि, मृज्-भावे ते मृज्यते, मृज्-हि मृड्ढि। मृज्-भूतेश्वर का दिप् अमार्ट। मृज्-भूतेश का दिप् अमार्जीत, पक्षे-अमार्क्षीत्, मृज्-अतुस् ममृजतुः, ममार्जतुः, एक सर्वेश्वर रहने से मृज धातु का वृष्णीन्द्र नहीं होता है, मृज्-उस् ममृजुः।

वच्-परिभाषणे-अर्थात सम्यक् कथनार्थ। इसका चवर्ग के स्थान में कवर्ग होता है। वच्-तिप् वक्ति, वच्-तस् वक्तः, वच् धातु का अन्ति प्रत्यय में वचन्ति रूप नहीं होता है, एवं अन्तु-अन् में भी वचन्तु, अवचन् प्रयोग नहीं होता है। वच्-भावे ते उच्यते ॥२०५॥

'अस्यति-वक्ति' इति ङः—

वच उम ङे ॥२०६॥

अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्, उवाच, ऊचतुः, ऊचुः।

भूतेश के परपद में अस्यति वक्ति ख्यातिभ्यः ङ भूतेश परपदे' सूत्र से ङ होगा। ङ परे रहने से वचधातु के उत्तर में उम् होगा। वच्-भूतेश का दिप्-अवोचत्, वच्-ताम्-अवोचताम्, वच्-अन् अवोचन्, वच्-णल् उवाच, वच्-अतुस् ऊचतुः, वच्-उस् ऊचुः ॥२०६॥

रुदिर् अश्रु विमोचने—

रुदादिभ्य इट् कृष्णधातुके ॥२०७॥

रोदिति, रुदितः, रुदन्ति, भावे-रुद्यते, अरोदीत्, अरोदत् अरुदिताम्, इरनुबन्धात् ङो वा-अरुदत्, अरोदीत्। ञिष्वप् शये-स्वपिति, सुप्यते, स्वप्ता अन्, श्वस् प्राणने-श्वसिति, अनिति।

अश्रु विमोचन अर्थ में रुदिर् धातु का प्रयोग होता है। इर् भाग हर होकर रुद् रहता है। कृष्ण धातु परे रहने से रुदादि धातु के उत्तर में इट् होता है। रुद्-तिप् रोदिति, रुद्-तस् रुदितः। रुद-अन्ति रुदन्ति। रुद्-भावे ते रुद्यते। रुद्, स्वप्, श्वस्, अन्, जक्ष् रुदादिगण हैं।

दिप् एवं सिप् परे रहने से रुदादि धातु के उत्तर में ईट्, एवं शप् होता है। रुद्-भूतेश्वरे का दिप् अरोदीत्। पक्ष में अरोदत्, रुद्-भूतेश्वर का ताम् अरुदिताम्। रुद् धातु का इर् अनुबन्ध हेतु 'इरनुबन्धात् ङो वा भूतेश परपदे' सूत्र से विकल्प में ङ होगा।

रुद्-भूतेश का दिप् अरुदत्, अरोदीत् ॥२०७॥

जक्ष-भक्षहसनयोः-जक्षिति—

जक्षादि रपि नारायणः ॥२०८॥

जक्ष, जागृ, दरिद्रा, चकासृ, शासु-जक्षादिः। जागृ-निद्राक्षये-जागर्त्ति, जागृतः, जाग्रति।

जक्ष धातु भक्षणार्थ एवं हसनार्थ है। जक्ष-तिप् जक्षिति। जक्षादि धातु भी नारायण संज्ञक होता है। यक्षादि-यथा, जक्ष, जागृ, दरिद्रा, चकासृ, शासु-जागृ धातु का अर्थ निद्राक्षय। जागृ-तिप् जागर्त्ति, जागृ-तस् जागृतः, जागृ-अन्ति जाग्रति ॥२०८॥

द्ररिद्रा दुर्गतौ-दरिद्राति—

दरिद्रातेरिरामो निर्गुण-विष्णुजने ॥२०९॥

दरिद्रितः।

दरिद्रा धातु का अर्थ-दुर्गति है, दरिद्रा-तिप् दरिद्राति। निर्गुण विष्णुजन परे रहने से दरिद्रा धातु का अन्त इराम होता है। दरिद्रा-तस्-दरिद्रितः ॥२०९॥

श्ना-नारायणयोरारामहरो निर्गुण कृष्णधातुके ॥२१०॥

दरिद्रति।

निर्गुण कृष्ण धातु परे रहने से श्ना एवं नारायण का आराम हर होता है। दरिद्रा-अन्ति दरिद्रति ॥२१०॥

दरिद्रातेराराम हरो वैष्णवादि-सन् युक् टन् वर्जित रामधातुके ॥२११॥

भूतेशे तुवा ॥२१२॥

दरिद्यते अदरिद्रीत्, अदरिद्रासीत्, चकासृ दीप्तौ चकास्ति हौ—चकाधि, अचकात्, अचकाः, अचकात्।

सन् युक् टन् भिन्न वैष्णवादि रामधातु परे होने से दरिद्रा धातु का आराम हर होता है ॥२११॥

भूतेश परे रहने से दरिद्रा धातु का आराम हर विकल्प में होता है। दरिद्रा-भावे ते दरिद्यते।

दरिद्रा-भूतेश का दिप् आराम हर पक्ष में सि होने पर अदरिद्रीत्। आराम हर न होने से सुक् इट् होता है।

दरिद्रा-दिप् अदरिद्रासीत्। दीप्ति अर्थ में चकासृ धातु। ऋराम इत् होकर चकास् रहता है। चकास्-तिप् चकास्ति। हि परे रहने से चकास्-हि चकाधि। भूतेश्वर का दिप् लोप होने पर सराम के स्थान में तराम, सिप् लोप होने से तराम एवं रराम होता है। भूतेश्वर में चकास्-दिप् अचकात्। चकास्-सिप्-अचकात्, अचकाः ॥२१२॥

शासु शासनोपदेशयोः शास्ति—

शसः शिष् कंसारि-विष्णुजन-ङयोः ॥२१३॥

शिष्टः, शासति, शिष्यते, शिष्यात् । ईड् स्तुतौ-ईट्टे ।
आस् उपवेशने-आस्ते । आसाञ्चक्रे । वस् आच्छादने ।
षूङ् प्राणिगर्भ-विमोचने-सूते ।

शासु धातु का अनुशिष्टार्थ, अर्थात् उपदेशार्थ एवं दण्डार्थ है, इसका उराम इत् होकर शास् रहता है। शास्-तिप् शास्ति। कंसारि विष्णुजन एवं ङ प्रत्यय परे रहने से शास् धातु के स्थान में शिष् होता है । शास्-तस् शिष्टः, शास्-अन्ति शासति। शास्-भावे ते शिष्यते। शास्-विधि का यात् शिष्यात्। ईड् धातु का अर्थ है, स्तुति, ईड्-ते ईट्टे । आस धातु का उपवेशनार्थ है, आस्-ते आस्ते, आस्-अधोक्षज का ए-आसाञ्चक्रे। वस् धातु का आच्छादन अर्थ है। वस्-ते वस्ते, षूङ् धातु का प्रसब अर्थ है, ङ्राम इत् होकर सू रहता है । सू-ते सूते ॥२१३॥

शीङ् स्वप्ने—

शीङः शे कृष्णधातुके ॥२१४॥

शेते, शयाते, 'अरामान्य' इत्यादौ 'शीङोरुट् च' शेरते ।

शयनार्थ में शीङ् धातु । इसका ङ राम इत् होता है । 'शी' रहता है । कृष्ण धातु परे रहने से शीङ् धातु के स्थान में 'शे' होता है । शी-ते शेते । शी-आते शयाते । शीङोरुट् च-सूत्र से शी-अन्ते शेरते ॥२१४॥

शेतेः शप् कंसारि-ये ॥२१५॥

शयाते ।

कंसारि यराम परे रहने से शीङ् के स्थान में शप् होता है । शय्यते । शी-भावे ते शय्यते ।

इङ् अध्ययने, नित्यमधिपूर्वोऽयम्, अधीते, अधीयाते, अधीयते अध्यैत । द्विष-अप्रीतौ-द्वेष्टि, द्विष्टः, अद्वेट् । दुह् प्रपूरणे-दोग्धि, धोक्षि, दुग्धे, धुग्ध्वम् । अधोक् । अधुक्षत्, अधुक्षत, दिह्-उपचये-देग्धि, दिग्धे । लिह् आस्वादने-लेढ़ि, लीढ़े । ष्टुञ्-स्तुतौ-स्तौति, स्तुतः, स्तुवन्ति, स्तुते, स्तूयते, अस्तावीत् । रु शब्दे-रौति, रुतः, णु स्तुतौ-नौति ।

अध्ययनार्थ-इङ् धातु, इसका ङराम इत होकर इ रहता है। यह धातु नित्य अधिपूर्व होता है। अधि-इ-ते अधीते। अधि-इ-याते-अधीयाते, अधि-इ-अन्ते अधीयते। कर्म्म वाच्य में भी अधि-इ-अधीयते, भूतेश्वर में अधि-इ-त अध्यैत । अप्रीति अर्थ में द्विष् धातु है। द्विष्-तिप् द्वेष्टि, द्विष्-तस् द्विष्टः, भूतेश्वर में द्विष्-दिप् अद्वेट्। दुह धातु का प्रपूरणार्थ है । दुह्-तिप् दोग्धि, दुह्-सिप् धोक्षि, दुह-ते दुग्धे, दुह्-ध्वम् धुग्ध्वम् ।

भूतेश्वर का दिप् वा सिप् अधोक्, भूतेश का दिप्-अधुक्षत् । दुह् भूतेश का त, अधुक्षत सक् होने से अदुग्ध, दिह्-उपचय में है। दिह्-तिप् देग्धि, दिह्-ते दिग्धे। लिह्-आस्वादने, लिह्-तिप् लेढ़ि, लिह्-ते लीढ़े। स्तुति अर्थ में ष्टुञ् धातु, स्तु-तिप् स्तौति । ष्टु-तस् स्तुतः, ष्टु-अन्ति स्तुवन्ति, ष्टु-ते स्तुते, भावे-ष्टु-ते स्टूयते । 'सुस्तु धुञ्भ्यः' सूत्र से इट् होने के कारण, भूतेश के दिप् में स्तु-दिप्-अस्तावीत् । रु धातु का शब्द अर्थ है, रु-ति रौति, रु-तस् रुतः, स्तुति अर्थ में नु-ति नौति ॥२१५॥

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—

ब्रुव इट् कृष्ण धातुक-पृथु-विष्णुजने ॥२१६॥

ब्रवीति, ब्रूतः ब्रूतः ब्रुवन्ति ।

व्यक्त वाक्यर्थ में ब्रू धातु होता है, इसका ब्रू रहता है। कृष्ण धातु में पृथु विष्णुजन परे रहने से ब्रू धातु के उत्तर में ईट् होता है ॥२१६॥

चक्रपाणेस्तु वा ॥२१७॥

कृष्ण धातुक पृथु विष्णुजन परे रहने से चक्रपाणि के उत्तर में ईट् विकल्प में होता है । ब्रू-तिप् ब्रवीति, ब्रू-तस् ब्रूतः, ब्रू-अन्ति ब्रुवन्ति ॥२१७॥

ब्रवीत्यादि पञ्चानामाहादयो वा ॥२१८॥

आह, आहतुः, आहुः, आत्थ, आहथुः, 'ब्रुवो वचिः'
उच्यते । अवोचत् । उवाच, ऊचतुः ऊचुः ।

ब्रवीति प्रभृति पञ्च पदों के स्थान में क्रमशः पञ्च आदेश होते हैं । ब्रवीति-आह, ब्रूतः आहतुः, ब्रुवन्ति आहुः, ब्रवीसि आत्थ, ब्रुथः आहथुः, 'ब्रुवोर्वचि' सूत्र के द्वारा इस धातु के स्थान में वच् आदेश होता है । ब्रू-भावे ते उच्यते । ब्रू-भूतेश का दिप् अवोचत् । ब्रू-णल् उवाच, ब्रू-अतुस् ऊचतुः, ब्रू-उस्-ऊचुः ॥२१८॥

॥ इति अदादिः ॥

अथ ह्वादिः

हु वह्नौ दाने—

जुहोत्यादेः पूर्व्ववद् द्विर्व्वचनं शप् लुकि ॥२१९॥

'हस्य जो नरस्य' जुहोति, जुहुतः, जुह्वति, जुहुधि, अजुहवुः ।

अनन्तर ह्वादि का प्रदर्शन करते हैं, यह ह्वादि अदादि के अन्तर्गत हैं । होम करणार्थ हु धातु है । ह्वादि धातु के उत्तर में शप् का लोप होने से पूर्व्ववत् द्विर्व्वचन होता है । 'हस्य जो नरस्य' सूत्र से ह के स्थान में ज होता है । हु-तिप् जुहोति, हु-तस् जुहुतः, हु-अन्ति जुह्वति, हु-हि जुहुधि, हु-भूतेश्वर का अन् अजुहवुः ॥२१९॥

भी-ह्री-भृ-हुभ्य आमधोक्षजे वा, द्विर्व्वचनञ्च ॥२२०॥

जुहवामास, जुहाव ।

अधोक्षज परे होने से भी, ह्री, भृ, एवं हु धातु के उत्तर में विकल्प में आम होता है, एवं आम् पक्ष में द्विर्व्वचन भी होता है। हु-णल्-जुहवामास । पक्ष में हु-णल-जुहाव ॥२२०॥

ञि भी भये, ञिराम इत्, बिभेति—

भियो वामनो वा कृष्णधातुके ॥२२१॥

बिभितः, बिभीतः, बिभ्यति । अभैषीत्, अभैषीः ।

ह्री-लज्जायाम्-जिह्रेति, जिह्रीतः, जिह्रियति ।

भय अर्थं में ञि भी धातु है, ञिराम इत् होकर भी रहता है। भी-तिप् बिभेति । कृष्ण धातु परे रहने से भी धातु का विकल्प में वामन होता है।

भी-तस् बिभितः, विभीतः, भी-अन्ति बिभ्यति । भूतेश का दिप् भी-दिप् अभैषीत्, भी-सिप् अभैषीः । लज्जा अर्थ में ह्री धातु, ह्री-तिप् जिह्रेति, ह्री-तस् जिह्रीतः, ह्री-अन्ति जिह्रियति ॥२२१॥

पृ॰ पालन पूरणयोः—

अर्त्ति-पिपर्त्त्यो र्नरस्येरामः कृष्णधातुके ॥२२२॥

पिपर्त्ति ।

पृ॰ धातु का अर्थ-पालन एवं पूरण । ऋ धातु एवं पृ॰ धातु के नर के अन्त के स्थान में इराम होता है। पृ॰-तिप् पिपर्त्ति ॥१२२॥

ओष्ठ्योद्धवस्य ॠत उर कंसारौ ॥२२३॥

पिपूर्त्तः, पिपुरति, पूर्य्यते, पपरतुः, पिपृतः, पप्रतुः ।

कंसारि परे रहने से ओष्ठ्योद्धव धातु के ॠराम के स्थान में उर् होता है।

पृ॰-तस् पिपूर्त्तः, पृ॰-अन्ति-पिपुरति, पृ॰-भावे ते पूर्य्यते । पृ॰-अतुस् पपरतुः । पृ॰ धातु वामन भी है, अर्थात् पृ धातु भी हैं, उसका रूप पृ-तस् पिपृतः, पृ-अतुस् पप्रतुः ॥२२३॥

ओ हाक् त्यागे, ओकावितौ, जहाति—

दामोदरं विना स्ना-नारायणारामयोरी,
कृष्णधातुक-निर्गुण विष्णुजने, जहातेरिश्च ॥२२४॥

जहीतः, जहितः, जहति, हीयते।

त्याग अर्थ में ओहाक् धातु का प्रयोग होता है। इसका ओराम एवं कराम इत् होकर हा रहता है। हा-तिप् जहाति। कृष्ण धातुक निर्गुण विष्णुजन परे रहने से श्ना एवं दामोदर व्यतीत नारायण के आराम के स्थान में ईराम होता है। एवं हा धातु के नारायण के आराम के स्थान में ईराम एवं इराम होता है। हा-तस् जहीतः। पक्षे जहितः, हा-अन्ति जहति, भावे हा-ते-हीयते ॥२२४॥

जहातेराराम हरः कृष्णधातुक-ये ॥२२५॥

जह्यात् जहिहि, जहीहि, 'जहाहि' ऋ गतौ, इयर्त्ति, इयृतः, इयृति।

अर्य्यते, ऐयः, ऐयृताम्, ऐयरुः।

कृष्ण धातुक यराम परे होने से हा धातु का आराम हर होता है। हा-विधि का यात् जह्यात्। हा-हि जहिहि, पक्षे-जहीहि, मतान्तर में जहाहि। ऋ धातु का अर्थ है गति, 'अर्त्तिपिपर्त्योः' सूत्र से नर के अन्त का इत्व होता है, एवं नरेदुतोरियुवौ सूत्र से इय् होगा। ऋ-तिप् इयर्त्ति, ऋ-तस् इयृतः, ऋ-अन्ति इयृति। ऋ-भावे ते-अर्य्यते। ऋ-भूतेश्वर का दिप्-इय्, वृष्णीन्द्र, गोविन्द, दिप् का हर, सत्सङ्गान्त का हर न होकर ऐयः, हुआ, ऋ-ताम् ऐयृताम्, ऋ-अन् ऐयरुः।

निजिर् शौचे—नेनेक्ति, नेनेजानि, विष् लृ व्याप्तौ-वेवेष्टि। डु दाञ् दाने, डुञावितौ, ददाति, दत्तः, ददति, दत्ते, दीयते।

शौच अर्थ में निजिर् धातु, इसका इर् इत् होता है, निज रहता। निज्-तिप् नेनेक्ति। निज्-आनिप् नेनिजानि, व्याप्ति अर्थ में विष् लृ धातु, इसका लृकार इत् होकर विष् रहता है।

विष्-तिप् वेवेष्टि। दुदाञ् धातु का अर्थ दान, दुञ् इत् होकर दा रहता है। दा-तिप् ददाति, दा-तस् दत्तः, दा-अन्ति ददति। दा-ते दत्ते। दा-भावे ते-दीयते ॥२२५॥

दामोदरस्यैत्व-नरादर्शने हौ ॥२२६॥

देहि, अददात्। अदात्, अदुः, अदित, अदायि, अदायिषाताम्।
डु धाञ् धारण पोषणयोः दधाति, धत्तः, धत्थः, धत्से,
धद्ध्वे, श्रद्दधाति।

हि परे रहने से दामोदर के अन्त के स्थान में एत्व होता है, एवं नर का भी अदर्शन होता है। दा-हि देहि, दा-भूतेश्वर का दिप् अददात्। दा-भूतेश का दिप्-अदात्। आरामादन उस् होने से दा भूतेश का अन्-अदुः। दा-त अदित, दा-भावे भूतेश का त अदायि। दा-भूतेश का आताम् अदायिषाताम्। धारण पोषण अर्थ में डु धाञ् धातु, डुञ् इत् होकर धा रहता है। धा-तिप् दधाति। धा-तस् धत्तः, धा-थस् धत्थः। धा-से धत्से। धा-ध्वे धद्ध्वे। श्रद् धा-ति श्रद् दधाति ॥२२६॥

डु भृञ् धारण-पोषणयोः—

हाङ्-माङोर्नरस्येरामः कृष्णधातुके ॥२२७॥

भृञ् आमि च ॥२२८॥

बिभर्त्ति। णल्-बिभराञ्चकार, बभार। ओहाङ् गतौ, जिहीते,
जिहाते एवं माङ् माने—मिमीते, मिमाते।

धारण एवं पोषण अर्थ में डु भृञ् धातु, डुञ् इत् होकर भृ रहता है। कृष्ण धातु परे रहने से हाङ एवं माङ धातु, के नर के अन्त के स्थान में इराम होता है।

कृष्ण धातु एवं आम् परे रहने से भृङ् धातु के नर के स्थान में इराम होता है।

भृ-तिप् बिभर्त्ति, भृ-णल् बिभराञ्चकार, पक्षे बभार। गमनार्थ ओहाङ् धातु, ओङ् इत् होकर हा रहता है। हा-ते जिहीते, हा-आते जिहाते। मान अर्थ में माङ् धातु ङराम इत् होकर मा रहता है। मा-ते मिमीते, मा-आते मिमाते ॥२२७-२२८॥

॥ इत्यदादौ जुहोत्यादिः। अदादिश्च समाप्तः ॥

अथ दिवादिः

दिवु-क्रीड़ा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु—

दिवादेः शपः श्यः ॥२२९॥

श् इत् 'धातोर-व-प्रागिदुतोः' दीव्यति, षिवु-तन्तु सन्ताने-सीव्यति।

अथ दिवादि–दिवु धातु का अर्थ–क्रीड़ा, जयेच्छा, व्यवहार, दीप्ति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति एवं गमन है, इसका उराम इत् होकर दिव् रहता है।

दिवादि धातु के उत्तर में शप के स्थान में श्य होता है। श्य का शराम इत् होकर यराम रहता है। शित् करण हेतु श्य का स्थानिवत्त्व नहीं है, अतएव पृथु संज्ञक नहीं होता है। एवं 'धातोरव प्रागिदुतो स्त्रिविक्रमः' सूत्र से त्रिविक्रम होगा।

दिव्-तिप् दीव्यति। सूत्र विस्तारार्थ में षिवु धातु है। इसका उराम इत् होकर षिव् रहता है। षिव्-तिप् सीव्यति ॥२२९॥

नृती-गात्र विक्षेपे-नृत्यति—

नृती कृत्यादेरिड्वा से सि विना ॥२३०॥

नर्त्तिष्यति, नर्त्स्यति। त्रसी-उद्वेगे-त्रस्यति। जॄ-ष् वयहानौ-जीर्य्यति, अजरन्, अजारीत, जजरतुः, जेरतुः।

गात्र विक्षेपार्थ में नृती धातु है। इसका ईराम इत् होकर नृत् रहता है। नृत्-तिप् नृत्यति। सि भिन्न सराम परे रहने से नृती कृती प्रभृति धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है।

नृत्-स्यति नर्त्तिष्यति, पक्षे-नर्त्स्यति। उद्वेगार्थ में त्रसी धातु इसका ईराम इत् होकर त्रस् रहता है। त्रस्-तिप् त्रष्यति। वयोहानि अर्थ में जॄष् धातु है। इसका षराम इत होकर जॄ रहता है। जॄ-तिप् जीर्य्यति। जॄ भूतेश का दिप् अजरत्, पक्ष में अजारीत, जॄ-अतुस् गोविन्द विकल्प में एत्व होगा। जॄ-अतुस् जजरतुः, जेरतुः ॥२३०॥

शो तनू करणे—

ओरामस्य हरः श्ये ॥२३१॥

श्यति, शायात् एवं छो छेदने-छ्यति, षोऽन्त-कर्म्मणि-स्यति, सीयति, सेयात्। दोऽवखण्डने-दयति, दीयते, देयात्, राध्, साध् संसिद्धौ-राध्यति अरात्सीत्, 'हिंसार्थ-राधश्च वा' अपरेधतुः, अपरराधतुः। व्यध ताड़ने-विध्यति। पुष् पुष्टौ-पुष्यति, अपूषत्, श्लिष् आलिङ्गने श्लिष्यति, सक्-अश्लिक्षत्।

तनू करण में शो धातु है। श्य परे रहने से ओराम का हर होता है। शो-तिप् श्यति। शो कामपाल का यात्-शायात्। इस प्रकार छेदन अर्थ में छो धातु है। छो-तिप् छ्यति। अन्त कर्म्मार्थ में षो धातु है, षो-तिप् स्यति, षो-भावे ते सीयते षो कामपाल का यात् सेयात्। अवखण्डनार्थ में दो धातु है। दो-तिप् द्यति। दो-भावे ते दीयते, दो-कामपाल का यात् देयात। राध्-साध् संसिद्ध अर्थ में, राध्-तिप् राध्यति, राध्-भूतेश का दिप् अरात्सीत्। हिंसार्थ राध का एत्व विकल्प में होता है। अप-राध-अतुस् अपरेधतुः, पक्षे अपराधतुः, पक्षे अपरराधतुः। ताड़न अर्थ में व्यध धातु, व्यध्-तिप्-विध्यति। पोषणार्थ में पुष धातु, पुष्-तिप् पुष्यति, ङ होता है। पुष-भूतेश का दिप्-अपुषत। श्लिष् आलिङ्गन अर्थ में है। श्लिष् धातु के उत्तर में आलिङ्गन अर्थ में सक् होता है, श्लिष् भूतेश का दिप्-अश्लिक्षत् ॥२३१॥

रध्-हिंसायाम्-रध्यति, अरधत्—

रधादेरिड्वा ॥२३२॥

अरत् साताम्, अरधिषाताम् । ररन्धिथ, ररन्धिव ।

तृप्-प्रीणने-तृप्यति । अतृपत्, अतर्पीत्, अतार्प्सीत्, अत्राप्सीत् ।

दृप्-हर्षविमोचणयोः दृप्यति । मुह् वैचित्त्ये-मुह्यति ।

नश्-अदर्शने-नश्यति । क्रमु पाद विक्षेपे-क्राम्यति ।

हिंसार्थ रध धातु । रध्-तिप् रध्यति । रध्–भूतेश का दिप अरधत् । रधादि धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है । रध्-आताम्-अरत्सातास्, पक्ष में अरधिषाताम् । रध्-थल्-ररन्धिथ, रध-व ररन्धिव, प्रीणनार्थ तृप धातु, तृप्-तिप् तृप्यति, तृप्-दिप्-अतृपत्, पक्षे–अतर्पीत्, अतार्प्सीत्, अत्राप्सीत्, इस प्रकार दृप् धातु हर्षार्थ एवं विमोचनार्थ, दृप्-तिप् दृप्यति । वैचित्त्यार्थ मुह धातु, मुह्-तिप् मुह्यति, अदर्शनार्थ नश धातु, नश-तिप् नश्यति । पाद विक्षेपार्थ क्रमु धातु, उराम इत् होकर क्रम् रहता है, 'क्रमस्त्रिविक्रमः परपदे शिवे' सूत्र से त्रिविक्रम होगा । क्रम्-तिप् क्राम्यति ॥२३२॥

शमु-उपरमे—

शमादीनां त्रिविक्रमः शिवे ॥२३३॥

शाम्यति, क्लमु-ग्लानौ-क्लाम्यति ।

उपशमार्थ शमु-धातु, उराम इत् होकर शम् रहता है । श्य परे रहने से शमादि धातु का त्रिविक्रम होता है । शम्-तिप्-शाम्यति, ग्लानि अर्थ में क्लमु धातु, उराम इत् होकर क्लम् रहता है । क्लम्-तिप् क्लाम्यति ॥२३३॥

जनि-प्रादुर्भावे—

ज्ञा-जनो र्जा शिवे ॥२३४॥

जायते भावे-जायते, जन्यते । अजनि, अजनिष्ट, जज्ञे । पद गतौ-पद्यते । बुध-अवगमने, बुध्यते । नह बन्धने-नह्यति, नह्यते, नद्धा ।

प्रादुर्भाव अर्थ में जनि धातु । ईराम इत् होकर जन् रहता है । शिव परे रहने से ज्ञा धातु एवं जन धातु के स्थान में जा होता है । जन्-ते जायते, भाव वाच्ये-जन्-ते जायते, जन्यते । जन् भूतेश का त, अजनि, एकबार जन्-त अजनिष्ट । जन् अधोक्षज का ए, जज्ञे, गमनार्थ पद धातु, पद्-ते-पद्यते, कर्त्तृ वाच्य में भूतेश के परपद में त अपादि, अवगमन अर्थ में बुध धातु, अर्थात् ज्ञानार्थ, बुध्-ते-बुध्यते, बन्धन अर्थ में नह् धातु, नह्-ते नह्यते, नह्-ते नह्यते, नह्-ता नद्धा ॥२३४॥

॥ इति दिवादिः ॥

अथ स्वादिः

षुञ् अभिषवे, अभिषवः सन्धानं, मङ्गल स्नानं वा, 'पीडनम्' इत्यन्ये-

स्वादेः शपः श्नुः ॥२३५॥

'उ-श्नुवो र्गोविन्दः' सुनोति, षत्वम्-अभिषुणोति । न गोविन्द वृष्णीन्दौ-सुनुतः, सुन्वन्ति, सुनोषि इत्यादि, सुनुते, सुन्वाते, सूयते । 'इट् सौ' असावीत्, असोष्ट ।

अभिषव अर्थ में षुञ् धातु, अभिषव शब्द का अर्थ-सन्धान अथवा मङ्गल स्नान । अपर के मत में पीडन अर्थ है ।

स्वादि धातु के उत्तर शप के स्थान में श्नु होता है । श्नु का शराम इत् होकर नु रहता है, 'उ-श्नवोर्गोविन्दः' सूत्र से गोविन्द होता है, षु-तिप् सुनोति, षत्व होने से अभिषुणोति । षु-तस् सुनुतः,

षु-अन्ति सुन्वन्ति, षु-सिप् सुनोषि, इत्यादि। षु-ते सुनुते, षु-आते-सुन्वाते, षु-भावे ते सूयते। 'सुस्तुधुञ्भ्यः' सूत्र से इट् होगा। सु-भूतेश का दिप् असावीत्। षु-भूतेश का त असोष्ट।

धुञ् कम्पने-धुनोति, धुनुते। डु मिञ् प्रक्षेपणे, 'मीनाति' इति आत्वम्, अमासीत्। चिञ्-चयने, चिनोति, चिकाय, चिचाय। इस प्रकार धुञ् धातु का अर्थ कम्प है। इसका ञराम इत् होकर धु रहता है। डुमिञ् का अर्थ-प्रक्षेपण है, इसमें मीनाति सूत्र से आत्व होता है। मि-भूतेश का दिप् अमासीत्। चिञ् चयन अर्थ में है, ञराम इत् होकर चि रहता है। 'चेः किर्व्वा' सूत्र से कि आदेश होता है, चि-णल् चिकाय, पक्ष में चिचाय ॥२३५॥

हि गतौ, वृद्धौ च-हिनोति, णत्वम्, प्रहिणोति—

नरतो हे र्घि नत्वङि ॥२३६॥

जिघाय।

गति एवं वृद्धि अर्थ में हि धातु। हि-तिप् हिनोति, 'उपेन्द्रात्णोपदेशस्य णत्वम् हिनुमिनानिपाश्च' ४२-४३ सूत्र से णत्व होगा। प्र-हि-तिप् प्रहिणोति, नर के उत्तर में हि धातु के स्थान में घि आदेश होता है, किन्तु क्षङ् परे रहने से नहीं होता है। हि-णल् जिघाय ॥२३६॥

कृवि-जिघांसायाम्—

कृविधिव्योः कृधौ श्नौ ॥२३७॥

कृण्वोति, कृण्वते, अकृण्वीत्, चकृण्व, कृण्विता, धिवि-प्रीणने-धिनोति, दन्भु-दम्भे, दम्भः पर वञ्चना, दभ्नोति, दभ्नुतः, दभ्नुवन्ति, ददम्भ, कपिलो वा-देभतुः, ददम्भतुः, देमिथ, ददम्भिथ।

हिंसार्थ-कृवि धातु, इराम इत् होकर कृव् रहता है। श्नु परे रहने से कृव् एवं धिव् धातु के स्थान में कृ एवं धि आदेश होता है।

कृव्-तिप् कृणोति, कृव्-ते कृण्वते । इसका नुम् होता है, इराम इत् के कारण, कृव्-भूतेश का दिप्-अकृणवीत् । कृव्-णल्-चकृण्व, कृव्-ता कृण्विता, प्रीणनार्थ धिवि धातु, इराम इत् धिव्, धिव्-तिप् धिनोति । दम्भ-पर वञ्चना अर्थ में दन्भु धातु उराम इत् दन्भ-तिप् दभ्नोति, दन्भ-तस् दभ्नुतः, दन्भ-अन्ति दभ्नुवन्ति । दन्भ-णल् ददम्भ । 'श्रन्थि-ग्रन्थि' सूत्र से कपिल विकल्प में होता है । दन्भ-अतुस् देभतुः, ददम्भतु । दन्भ-थल् देभिथ-ददम्भिथ ।।२३७।।

अशूङ् व्याप्तौ—

अश्नोति-नरान्नुडधोक्षजे ।।२३८।।

अश्नुते, अश्नुवाते, अश्नुवते, आनशे ।

व्याप्ति अर्थ में अशूङ् धातु, उराम एवं ङराम इत् होकर अश् रहता है । अश्-ते अश्नुते, अश्-आते अश्नुवाते, अश्-अन्ते अश्नुवते । अधोक्षज परे रहने से अश् धातु के नर के उत्तर में नुट् होता है, नुट् का उट् इत् होकर नराम रहता है । अश्-अधोक्षज का ए-आनशे।।२३८

।। इति स्वादिः ।।

अथ तुदादिः

तुद् व्यथने—

तुदादेः शपः शः ।।२३९।।

तुदति, तुदते ।

व्यथन अर्थ में तुद धातु, तुदादिगण पठित धातु के उत्तर में शप के स्थान में श होता है । श का अ राम रहता है । तुद-तिप् तुदति, तुद-ते तदते ।।२३९।।

भ्रस्ज-पाके, सङ्कर्षण:—

सस्य जो जे ॥२४०॥

भृज्जति ।

पाकार्थ भ्रस्ज धातु, 'ग्रहि ज्या वधि' सूत्र से इसका सङ्कर्षण होगा । सराम परे रहने से सराम के स्थान में ज होगा । भ्रस्ज-तिप् भृज्जति ॥२४०॥

भ्रस्जेर्भर्ज्जोऽकंसारी वा ॥२४१॥

दिप्-अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत् । बभर्ज, बभ्रज्ज, भृज्यते ।

कंसारि भिन्न प्रत्यय परे रहने से भ्रस्ज धातु के स्थान में विकल्प में भर्ज्ज होता है । भ्रस्ज–भूतेश का दिप् अभार्क्षीत्; एकबार-अभ्राक्षीत् । भ्रस्ज-णल् बभर्ज, बभ्रज्ज । कंसारि परे रहने का उदाहरण भ्रस्ज-भावे ते भृज्जते ॥२४१॥

मुच्लृ मोक्षणे—

मुचादेर्नुम् शे ॥२४२॥

मुञ्चति, मुच्यते । लुप्लृ छेदने-लुम्पति, लुप्यते, विद्लृ-लाभे-विन्दति, विद्यते । लिप् उपदेहे-लिम्पति, लिप्यते । दिप् ङः-अलिपत, अलिपत, अलिप्त । षिच् क्षरणे-सिञ्चति, षत्वम्-अभिषिञ्चति असिचत्, असिचत, असिक्त । कृती-छेदने-कृन्त्तति । कर्त्स्यति कर्त्तिष्यति, इति मुचादिः ।

षू-प्रेरणे-सुवति । ओ व्रस् चू छेदने, 'सस्य शश्चवर्ग योगे' वृश्चति, वृश्च्यते । ऋच्छ गत्यादिषु-ऋच्छति । आनर्च्छ, आनर्च्छतुः ।

कॄ विक्षेपे, ऋराम स्येर्, किरति, कीर्य्यते ।

चकरतुः करिता, करीता ।

मुच्लृ धातु मोचनार्थ में, श परे रहने से मुचादि धातु के उत्तर में नुम् होता है, नुम् का उम इत् होकर नराम रहता है ।

मुच्-तिप् मुञ्चति। मुच्-ते मुच्यते। लुप् लृ धातु छेदनार्थ, इसका लृराम इत् होता है। लुप् रहता है, लुप्-तिप्-लुम्पति, लुप्यते। विद्लृ-लागे-विद्-तिप् विन्दति, विद्-ते विद्यते। लिप् धातु उपदेहार्थं अर्थात् लेपनार्थं। लिप्-तिप् लिम्पति। भूतेश परे रहने से 'लिपिसिचि' सूत्र से ङ होता है। लिप् दिप् अलिपत्, लिप् भूतेश के आत्मपद का त अलिपत, पक्षे-अलिप्त। षिच् धातु क्षरणार्थ, षिच् तिप् सिञ्चति, अभि-सिञ्चति, 'उपेन्द्रात् षोपदेशस्य षत्वम्' सूत्र से षत्व हुआ। भूतेश का दिप् सिच्-असिचत् भूतेश का त असिचत, पक्षे-असिक्त।

छेदनार्थ-कृतीधातु-ईराम इत् होकर कृत् रहता है। कृत्-तिप्-कृन्तति कृत्-स्यति कर्त्स्यति, पक्षे कर्त्तिष्यति। इति मुचादि समाप्त।

प्रेरणार्थ षू धातु। षू-तिप् सुवति, ओ व्रश्चू धातु छेदनार्थ, ओराम एवं ऊराम इत् होकर व्रश्च रहता है। च वर्ग के योग से सराम के स्थान में शराम हुआ है। वृश्च्-तिप् वृश्चति। ऋच्छ धातु के अर्थ गति प्रभृति हैं। ऋ-तिप् ऋच्छति। सत्सङ्गाद्यृदन्तस्य सूत्र से गोविन्द होगा। एवं नुट् होगा। ऋच्छ-णल् आनर्च्छ। ऋच्छ-अतुस् आनर्च्छतुः।

कॄ धातु का अर्थ विक्षेप है, ॠराम के स्थान में इर् होता है। कॄ-तिप् किरति। कॄ-भावे ते कीर्य्यते, कॄ-अतुस् चकरतुः, कॄ-ता करिता करीता ॥२४२॥

उपात् सुट् किरतौ छेदने ॥२४३॥

उपस्किरति।

छेदनार्थं कॄ धातु परे रहने से उपसर्ग के उत्तर सुट् होता है, होता है, सुट् का उट् इत् होकर सराम रहता है। उप-किरति उपस्किरति ॥२४३॥

गिरो रोलः सर्व्वेश्वरे वा, नित्यन्तु यङि ॥२४४॥

गृ निगरणे, निगरणं गलाधः करणम्, गिरति, गिलति ।

निगरण अर्थात् गलाधःकरण अर्थ में गृ धातु, सर्व्वेश्वर परे रहने से गृ धातु के रराम के स्थान में विकल्प में लराम होता है। किन्तु यङ् परे रहने से नित्य होता है। गृ-तिप् गिरति, पक्षे-गिलति ॥२४४॥

गुफ्, गुनफ् ग्रन्थे—

गुन्फादेर्न लोपः शे वा ॥२४५॥

गुफति, गुम्फति, गोफिता, गुम्फिता। स्पश् संस्पर्शने-स्पृशति । अस्प्राक्षीत्, अस्पार्क्षीत्, अस्पृक्षत् । प्रच्छ-ज्ञीप्सायाम्-पृच्छति । अप्राक्षीत् । सृज् विसर्गे, विसर्गः-सृष्टि स्त्यागो वा, सृजति। टुमस्जो शुद्धौ-मज्जति । आमाङ्क्षीत्, मृश आमर्शने-मृशति । इषु-इच्छति। एष्टा, एषिता । कुट्-कोटिल्ये-अकुटीत । चुकोटा कुटिता । लिख-लिखने, लिखति, लेखति । भिल-सङ्गे स्फुर् स्फुरणे-स्फुरति। व्यच् व्याजीकरणे-विचति । नु-स्तुवने-नुवति। मृङ्-प्राणत्यागे, 'ऋरामस्य रिः' म्रियते । ममार । ओविजी भय-चलनयोः-विजते ।

गुफ एवं गुन्फ धातु ग्रन्थन करना अर्थ में है। 'शराम परे रहने से गुन्फ प्रभृति का नराम का हर विकल्प में होता है।

गुन्फ-तिप् गुफति, पक्षे गुम्फति । गुफ्-ता गोफिता गुन्फ-ता गुम्फिता। स्पृश्-धातु संस्पर्शन अर्थ में। स्पृश्-तिप् स्पृशति स्पृश् भूतेश का दिप् अस्प्राक्षीत्, पक्षे-अस्पार्क्षीत् एकबार-अस्पृक्षत्। ज्ञीप्सार्थ-प्रछ धातु प्रच्छ-तिप् पृच्छति । प्रच्छ-भूतेश का दिप् अप्राक्षीत्। सृज् धातु विसर्ग अर्थ में, विसर्ग का अर्थ सृष्टि अथवा त्याग। सृज्-तिप् सृजति। सृज्-भूतेश का दिप् अस्राक्षीत्। शुद्धि

अर्थ में टुमस् ज धातु, शुद्धि का अर्थ स्नान, अवगाहन स्नान में बहुल प्रयोग इसका होता है। टु-ओ इत् होकर मस्ज रहता है। मस्ज-तिप् मज्जति। मस्ज-भूतेश का दिप्-अमाङ्क्षीत्। आमर्शन अर्थ में मृश् धातु, मृश्-तिप् मृशति। इच्छार्थ में इषु धातु, उराम इत् होकर इष् रहता है। इष्-तिप् इच्छति। इष्-ता एष्टा, एषिता। कुट धातु कौटिल्यार्थ में कुटादि के पश्चात् नृसिंह व्यतीत निर्गुण होता है। कुट्-भूतेश का दिप् अकुटीत्। कुट्-णल् चुकोट, कुट्-ता कुटिता। लिखन अर्थ में लिख धातु, लिख-तिप् लिखति। लेखति। मिल-सङ्गे-मिल-तिप्-मिलति-मेलति। स्फुर् स्फुरण अर्थ में, स्फुर्-तिप् स्फुरति। व्यच धातु व्याजीकरण अर्थ में, व्यच्-तिप् विचति। नू धातु, स्तव अर्थ में- नू-तिप् नुवती।

प्राण त्याग अर्थ में मृङ् धातु, ङराम इत् होकर मृ रहता है। ऋराम के स्थान में रिराम होता है। 'ऋरामस्य रिः' सूत्र से मृ-ते म्रियते। मृ-णल्-ममार। ओविजी धातु भय अर्थ में, ओ ई राम इत् होते हैं, विज् रहता है। विज्-ते विजते ॥२४५॥

॥ इति तुदादिः ॥

अथ रुधादिः

रुधिर् आवरणे—

रुधादेः शप् खण्डी श्नम् ॥२४६॥

शम् इत्, रुणद्धि। रुन्धः रुन्द्धः, रुन्धन्ति। रुणत् सि, रुद्धः, रुन्द्धः, रुन्ध रुन्द्ध, रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः, रुन्धे, रुध्यते, रुन्ध्यात्, अरुणत्, सिपि-अरुणत्, अरुणः वा, अरुधत् अरौत्सीत् वा।

शिष् लृ विशेषणे-शिनष्टिः 'हे धिः' शिण्ढि, शिण्ड्ढि वा।

अथ रुधादि। रुधिर धातु आवरणार्थ है। इसका इट् इत् होकर रुध् रहता है। रुधिर धातु के उत्तर शप् खण्डी अर्थात् शप् का बाधक श्नन् होता है, श्नम् का नराम रहता है, शम् इत् होता है।

मित् आगम अन्त्य सर्व्वेश्वर के पश्चात् स्थित होता है। रुध्-तिप् रुणद्धि, रुध्-तस् रुन्धः, पक्षे-रुन्द्धः, रुध्-अन्ति रुन्धन्ति, रुध-सि रुणत्सि, रुध्-थस् रुन्धः, पक्षे-रुन्द्धः, रुध्-थ रुन्ध, रुन्द्ध, रुध्-मिप् रुणध्मि, रुध्-वस् रुन्ध्वः, रुध्-मस् रुन्ध्मः। रुध्-ए रुन्धे, रुध-भावे ते रुध्यते। रुध्-विधि का यात् रुन्ध्यात्। रुध् भूतेश्वर का दिप् अरुणत्, रुध्-सिप् अरुणत्, पक्षे अरुणः, रुध्-भूतेश का दिप् अरुधत्, पक्षे रुध-दिप् अरौत्सीत्। शिष् लृ धातु विशेषणार्थ है, इसका लृराम इत् होकर शिष् रहता है। शिष्-तिप् शिनष्टि, हि के स्थान में धि होता है। शिष्-हि शिण्ढि पक्षे शिण्ड्ढि ॥२४६॥

तृह् हिंसायाम्—

तृहः श्नमो नेः पृथु-विष्णुजने ॥२४७॥

तृणेढि, तृण्ढः, तृहन्ति, तृणेक्षि।

तृह धातु हिंसार्थ, पृथु विष्णुजन परे रहने से तृह धातु के श्नम् के स्थान में ने होता है। तृह्-तिप् तृणेढि, तृह्-तस् तृण्ढ, तृह-अन्ति तृंहन्ति, तृह-सिप् तृणेक्षि ॥२४७॥

हिंसि हिंसायाम्—

श्नाम्नस्य हरः ॥२४८॥

हिनस्ति।

हिंसार्थ हिंसि धातु, इसका इराम इत् होकर हिंस् रहता है। इराम इत् होने के कारण नुम् होता है। श्नम के पश्चात् नराम का हर होता है, हिंस्-तिप् हिनस्ति ॥२४८॥

अन्जू म्रक्षणादिषु—

अञ्जेरिट् सौ ॥२४६॥

अनक्ति, आञ्जीत् ।

अन्जू धातु म्रक्षणादि अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका ऊराम इत् होकर अन्ज रहता है। अन्ज-तिप् अनक्ति, सि परे रहने से अन्ज धातु के उत्तर में इट् होता है। अन्ज-भूतेश का दिप् आञ्जीत् ॥२४६॥

भन् जो आमर्द्दने—

भञ्जेर्न लोप इणि वा ॥२५०॥

अभाजि, अभञ्जि, ञि इन्धी दीप्तौ-इन्धे ।

आमर्द्दनार्थ भन्ज धातु, इसका ओराम इत् होकर भन्ज रहता है। इण् परे रहने से भन्ज धातु के नराम का विकल्प में हर होता है। भन्ज भावे भूतेश का त-अभाजि पक्षे-अभञ्जि ।

ञि इन्धी धातु का अर्थ दीप्ति है। इसका ञिराम एवं ईराम इत् होकर इन्ध रहता है। इन्ध-ते इन्धे ॥२५०॥

॥ इति रुधादिः ॥

अथ तनादिः

तनु विस्तारे—

तनादेः शपोऽपवाद उः ॥२५१॥

'उ-इन्वो गोविन्दः'-तनोति, तनुतः, तन्वन्ति । तनुवः, तन्वः, तनुमः, तन्मः । तनुते तन्वाते, तन्वते ।

अथ तनादि, तनादि धातु के उत्तर में शप् का बाधक उ होता है, उ एवं इनु का गोविन्द होगा। तन्-तिप् तनोति, तन्-तस्-तनुतः । तन्-अन्ति तन्वन्ति, तन्-ते तनुते, तन्-आते तन्वाते, तन्-अन्ते तन्वते । तन्-मिप् तनोमि, तन्-वस् तनुवः, तन्वः, तन्-मस् तनुमः, तन्मः ॥२५१॥

तनोतेरारामो वा यकि ॥२५२॥

तायते, तन्यते, तनुयात ।

यक् परे रहने से तन धातु के अन्त के स्थान में विकल्प में में आराम होता है । तन्-भावे ते तायते, पक्षे-तन् ते तन्यते । तन्-यात् तनुयात् ॥२५२॥

भूतेशस्य कृष्ण धातुकत्वादिडभाव:—

तनादे: सेर्महाहरो वा त-थासो: ॥२५३॥

अतत, अतनिष्ठ, अतथा:, अतनिष्ठा:, षणु दाने-

सनोति, सनुते, असात, असनिष्ट ।

त एवं थास् परे रहने से विकल्प में सि का महाहर होता है। अच्युतादि पञ्च, अच्युत, विधि विधातृ भूतेश्वर एवं भूतेश, कृष्ण धातु होने के कारण भूतेश में सि का महाहर होने पर भी इट् नहीं होगा । तन्-भूतेश का त अतत, पक्षे-अतनिष्ट, तन्-थास् अतथा:, पक्षे-अतनिष्ठा: । षणु दाने अर्थ में-उराम इत् होकर षण रहता है, एवं ष का सत्व होकर सन् धातु होगा । सन्-तिप् सनोति, सन्-ते सनुते, सन् भूतेश का त आसात, पक्षे-असनिष्ट ॥२५३॥

क्षिणु, क्षणु हिंसायाम्—

नोद्धवस्य गोविन्द उ-विकरणे ॥२५४॥

ऋरामस्य तुवा ॥२५५॥

क्षिणोति, अक्षणीत्, तृणु-अदने, तृणोति, तर्णोति ।

क्षिणु एवं क्षणु धातु हिंसार्थ, उराम इत् होता है । उ विकरण परे रहने से उद्धव का गोविन्द नहीं होगा ॥२५४॥

उ विकरण परे रहने से उद्धव ऋराम का विकल्प में गोविन्द होगा । क्षिण्-तिप् क्षिणोति, क्षण् भूतेश का दिप् अक्षणीत, तृणु धातु भक्षणार्थ, उराम इत् होकर तृण् रहता है । तृण्-तिप् तृणोति, पक्षे-तर्णोति ॥२५५॥

डुकृञ् करणे-करोति—

करोत्यरामस्य उर्निर्गुणे ॥२५६॥

कुरुतः, कुर्व्वन्ति, करोषि, कुर्व्वः, कुर्म्मः, कुरुते, क्रियते, कुर्य्यात्, कुर्व्वीत करोतु, कुरुताम्, हो-कुरु। अकरोत्, अकुरुत, अकार्षीत्, अकृत चकार चक्रे। क्रियात, कृषीष्ट, कर्त्ता करिष्यति, करिष्यते अकरिष्यत्, अकरिष्यत।

डु कृञ् धातु करणार्थ, इसका डुञ् इत् होकर कृ रहता है। निर्गुण प्रत्यय परे रहने से कृ धातु का कर होने पर उसका अराम के स्थान में उ होता है। कृ-तस् कुरुतः, कृ-अन्ति कुर्व्वन्ति। कृ-सिप् करोषि, उराम का हर होने से कृ-वस् कुर्व्वः, कृ-मस् कुर्म्मः, कृ-ते कुरुते, कृ-भावे ते क्रियते। कृ-यात् कुर्य्यात्, कृ-ईत कुर्व्वीत, कृ-तुप् करोतु, कृ-ताम् कुरुताम्, हि परे होने पर कुरु, कृ-भूतेश्वर का दिप्, अकरोत, कृ-विधाता का त, अकुरुत, कृ-भूतेश का दिप् अकार्षीत, कृ-भूतेश के आत्मपद का त अकृत। कृ-णल् चकार, कृ-चक्रे, कृ-कामपाल का यात् क्रियात्, कृ-सीष्ट कृषीष्ट, कृ-ता कर्त्ता, कृ-स्यति करिष्यति। कृ-स्यते-करिष्यते। कृ-स्य अकरिष्यत्। कृ-स्यत अकरिष्यत ॥२५६॥

दिप्-सं-समस्करोत्, णल्-सञ्चस्कार—

ससुट्कात् कृञ इडधोक्षजे ॥२५७॥

सञ्चकरिथ, सञ्चस्करिव।

सम् कृ भूतेश्वर का दिप् समस्करोत्। संकृ-णल् सञ्चस्कार। अधोक्षज परे रहने से ससुट् कृञ धातु के उत्तर में इट् होता है। सं-कृ-थल् एञ्चस्करिथ, सं-कृ-अधोक्षज का व सञ्चस्करिव ॥२५७॥

उपाद्भूषण-समवाय-प्रतियत्न-विकृतीकरण:
वाक्याध्याहारेषु सुट् ।।२५८।।

उपस्करोति, उपस्कुरुते ।

भूषण समवाय प्रतियत्न विकृतीकरण एवं वाक्याध्याहार में उप के उत्तर में कृञ् होने पर सुट् होता है । उप-करोति उपस्करोति । उप-कुरुते उपस्कुरुते ।।२५८।।

।। इति तनादि: ।।

अथ क्र्यादि:

डुक्रीञ् द्रव्यादि बिनिमये, विनिमय: परिवर्त्तनम्—

क्र्यादे: शप् श्ना ।।२५९।।

क्रीणाति, क्रीणीत:, 'श्ना-नारायणयोरारामहर:' क्रीणन्ति, क्रीणीते, क्रीयते, एवं प्रीञ् तर्पणे-मीञ् हिंसायाम्-मीनाति, अमासीत् ममौ, मिम्यतु: ।

डु क्रीञ् धातु का अर्थ है द्रव्य विनिमय । विनिमय अर्थात् परिवर्तन । इस धातु का डुञ् इत् होकर क्री रहता है । क्र्यादि-गणीय धातु के उत्तर में शप् के स्थान में श्ना होता है ।

क्री-तिप् क्रीणाति, 'दामोदर विना श्ना नारायणारामयोरी' इस सूत्र का कार्य्य होने से क्री-तस् क्रीणीत: । 'श्ना नारायणा-रामयोरारामहर:' सूत्र का कार्य्य होने से क्री-अन्ति क्रीणन्ति, क्री-ते क्रीणीते, क्री-भावे-ते क्रीयते । इस प्रकार प्रीञ्-धातु का अर्थ तर्पण है, इसका ञ राम इत् होकर प्री रहता है । प्री-तिप् प्रीणाति । मीञ् धातु का अर्थ है हिंसा, इसका ञ् राम इत् होकर मी रहता है । मी-तिप्-मीनाति । 'मीनाति' सूत्र से आत्व होगा, मी-भूतेश का दिप्-अमासीत्, मी-णल् ममौ, मी-अतुस् मिम्यतु: ।।२५९।।

पूञ् पवने—

प्वादीनां वामनः शिवे ॥२६०॥

पुनाति, पुनीते, पूयते, पुपविथ। लुञ् छेदने, लुनाति,
धूञ् कम्पने-धुनाति, ग्रह्-उपादाने-सङ्कर्षणः गृह्णाति, गृह्यते।

पवनार्थं धातु पूञ् है, ञराम इत् होता है, पू रहता है। शिव प्रत्यय परे रहने से प्वादि धातु का वामन होता। पू-तिप्-पुनाति, पू-ते पुनीते, पू-भावे ते पूयते। एत्वादि न होने से पू-थल् पुपविथ। छेदन अर्थ में लूञ् धातु, इसका ञराम इत् होकर लू रहता है। लू-तिप् लुनाति, कम्पनार्थ धूञ् धातु है, इसका ञराम इत् होकर धू रहता है। धू-तिप् धुनाति। उपादान अर्थ में ग्रह धातु है। इस धातु का सङ्कर्षण 'ग्रहिज्येति' सूत्र से होता है। ग्रह-तिप्-गृह्णाति, ग्रह-ते गृह्णीते, ग्रह भावे ते गृह्यते ॥२६०॥

विष्णुजनात् श्न आनो हौ ॥२६१॥

गृहाण, अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, आताम्-अग्राहिषाताम्, जग्राह, जग्रहिथ,
शॄ हिंसायाम्-शृणाति। णल्-वामनः-शशार, शश्रतुः, शशरतुः,
शशरिथ।

दॄ विदारणे-ददार, दद्रतुः। ज्या वयोहानौ-जिनाति।
ज्ञा-अवबोधने। 'ज्ञा-जनोर्जा' जानाति, ग्रन्थ-सन्दर्भे, ग्रन्थाति।
अश्-भोजने-अश्नाति।

हि परे रहने से विष्णुजन के पश्चात् श्ना के स्थान में आन होता है। ग्रह-हि-गृहाण, ग्रह-भूतेश का दिप् अग्रहीत्, ग्रह-भूतेश का ताम् अग्रहीष्टाम्, ग्रह-आताम् अग्राहिषाताम्, ग्रह-णल् जग्राह। ग्रह-थल् जग्रहिथ। शॄ धातु का अर्थ हिंसा है, शॄ-तिप् शृणाति शॄ-णल् अधोक्षज परे रहने से शॄ धातु का वामन विकल्प में होता है, शशार, शॄ-अतुसःशश्रतुः शशरतुः, शॄ-थल् शशरिथ। दॄ धातु

का अर्थ विदारण है। दृ-णल् ददार, दृ-अतुस् दद्रुतुः। वय हानि अर्थ में ज्या धातु है, वयहानि अर्थ में जि-तिप् जिनाति, अवबोधनार्थं ज्ञा धातु, ज्ञा-तिप् जानाति । शिव परे रहने से ज्ञा एवं जन के स्थान में ज्या आदेश है, ज्ञा-तिप् जानाति ।

ग्रन्थ सन्दर्भार्थे, ग्रन्थ-ति ग्रथ्नाति। अश् भोजने अश्नाति। सन्दर्भ अर्थ में ग्रन्थ धातु है, ग्रन्थ-तिप् ग्रथ्नाति। भोजन अर्थ में अश् धातु है। अश्-तिप् अश्नाति ॥२६१॥

कुष् निष्कर्षे कुष्णाति—

निरः कुषो वेट् ॥२६२॥

निर कुक्षत्, निर कोषीत्। क्षुभ सञ्चलने-क्षुभ्नाति, क्षुभ्नीतः।

कुष धातु का अर्थ निष्कासन, अर्थात् निःसारण कुष्-तिप्-कुष्णाति। निर् उपसर्ग के उत्तर में कुष धातु का इट् विकल्प में होता है ॥२६२

खव् भूति-प्रादुर्भावे-

छस्यशो, वस्य ऊठ् हरिवेणौ, क्वौ, कंसारि-वैष्णवे च ॥२६३

'अद्वयादूठो वृष्णीन्द्रः' खौनाति, 'विष्णुजनात् श्न आनो हौ' खवान, वृङ् संभक्तौ, आराम हरः, अन्ते-वृणते, सावग् भजन्तीत्यर्थः।

खव धातु का अर्थ भूति प्रादुर्भाव, अर्थात् ऐश्वर्य्य प्रादुर्भाव। हरिवेणु क्विप् कंसारि एवं वैष्णव परे रहने से छराम के स्थान में तालव्य शराम होता है।

११९ 'अद्वयदूठो वृष्णीन्द्रः' सूत्र से वृष्णीन्द्र होने के कारण खव्-तिप् खौनाति। धातु प्रकरण में कंसारि परे रहने से जो वृष्णीन्द्र होना निषिद्ध है, वह नहीं हुआ। विष्णुजन के उत्तर श्ना के स्थान में हि प्रत्यय परे रहने से आन आदेश होता है, इससे खव्-हि-खौनीहि पद न होकर खवान पद हुआ, कारण यहाँ विष्णुजन शब्द

का प्रयोग हुआ है, वैष्णव के उत्तर नहीं, अतः हि के स्थान में आन विधि ही बलवान है। कलाप के मत में श्नु के स्थान में आन ही प्रत्यय होता है, सुतरां हि विभक्ति में 'खवान' पद ही सिद्ध होता है। वृङ् धातु का अर्थ सम्भक्ति, अर्थात् सम्यक् प्रकार से लाभ। 'श्ना नारायणयोराराममहरोनिर्गुण कृष्ण धातु के कृष्ण धातु के सूत्र से आराम हर होने के कारण वृङ्-अन्ते-वृणते पद हुआ, 'वृणते' का अर्थ है– सम्यक् रूप से प्राप्त करना, यह प्रयोग किरातार्ज्जुनीय काव्य में है।

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
विणते हि विमृष्य कारिणं, गुणलुब्धाः स्वममेव सम्पदः ॥

भीम के प्रति युधिष्ठर की उक्ति, सहसा कार्य्यारम्भ न करें, अविवेचना से कार्य्य करने पर विपत्ति होती है, विचार पूर्वक कार्य्य करने वाले को गुण ग्राहिणी राजलक्ष्मी स्वयं वरण करती है, अर्थात् विवेचक को ही सम्पत्ति मिलती है ॥२६३॥

॥ इति क्र्यादिः ॥

अथ चुरादिः

चुर स्तेये—

चुरादेणिः ॥२६४॥

ण इत्-चोरयति, चोरयते, चोरति, चोर्य्यते अचूचुरत्,
चोरयामास, चोर्य्यात् चोरयिता।

स्तेय अर्थ में चुर धातु का प्रयोग होता है, चुरादिगण में पठित धातु समूह के उत्तर में णि प्रत्यय होता है, पाणिनीयगण इसको णिच् करते हैं, णराम का इत् होता है, इराम रहता है। णि प्रत्यय परे रहने से लघूद्धव का गोविन्द होता है, एवं ण्यन्त धातु का सनाद्यन्तत्व हेतु 'भूसनन्ताद्या धातवः' सूत्र से धातु संज्ञा होती है।

चुर्-णि-तिप् चोरयति । ण्यन्त धातु का उभयपद होता है, यह नियम चुरादि में प्रयुक्त नहीं होता है, अर्थात् चुरादि भिन्न धातु में प्रयुक्त होगा, कारण, यह दशगणि धातु में अन्तर्भुक्त है, किसी-किसी के मत में उभय पद होगा, णि अनित्य हेतु पर पद्यादि की गणना सार्थक है, इस मत में चुर्-णि-ते चोरयते, पक्षे–चुर्-तिप् चोरति। चुर्-भावे ते चुर्-णि-ते चोर्य्यते । द्विर्वचन कार्य्य में णि सञ्जात कार्य्य का स्थानिवत्व हेतु चु का द्विर्वचन होगा । चुर्-णि भूतेश का दिप् अचूचुरत् । चुर्-णि-णल् चोरयामास, चुर्-णि-यात् चोर्य्यात्, चुर्-णि-ता चोरयिता ॥२६४॥

कॄ संशब्दने—

उद्धव ऋ़ रामस्येर् ॥२६५॥

कीर्त्तयति, अचीकृतत्, अचिकीर्त्तत् ।

कथ वाक्य प्रबन्धे–

अग्लोपित्वं स्नानिवत्त्वं चादन्तत्वप्रयोजनम् ।
यत्र त्वेते न विद्येते तत्राल्लोपपरिकल्पनम् ॥इति॥

अग्लोपित्वं दशावताराादर्शनम्, तेन सन्निमित्तकार्य्याद्यभावः, स्थानिवत्त्वेनोद्धवस्य वृष्णीन्द्रगोविन्दाभावः । कथयति । अचकथत्, गण संख्याने-गणयति । अर्थ याच्ञायाम्-अर्थयते, भूतेशे त–आर्त्तीथपत । अङ्क लक्षणे-अङ्कयति । आञ्चीकपत्, आञ्चकत्, आञ्चिकत् ।

संशब्दन अर्थ में कॄत धातु का प्रयोग होता है। उद्धव ऋ़ राम के स्थान में इर् होता है ।

कॄत-णि-तिप् कीर्त्तयति । अङ् परे है, इस प्रकार णि परे रहने से उद्धव संज्ञक ऋद्वय के स्थान में ऋराम होता है । कॄत-णि-भूतेश का दिप् अचीकृतत्, पक्षे-अचिकीर्त्तत् । निर्विष्णुचाप अदन्त

धातु है। वाक्य प्रबन्ध अर्थ में कथ धातु, 'अरामहर रामधातुके' सूत्र के द्वारा अदन्त धातु का अराम हर होता है। अन्त का हर होने से गोविन्द वृष्णीन्द्र नहीं होता है। अराम हर का स्थानिवत्त्व होता है, इसका विवरण इस प्रकार है-अग्लोपित्व एवं स्थानिवत्त्व अदन्तत्व का प्रयोजन है, जहाँ इस प्रकार प्रयोजन नहीं है, वहाँ-वहाँ अग्लोप विकल्प में होता है, अग्लोपित्व का अर्थ है, दशावतार का अदर्शन, सुतरां सन् को निमित्त करके जो कार्य्य होना है, वह नहीं होता है, एवं स्थानिवत्त्व हेतु उद्धव का गोविन्द वृष्णीन्द्र का अभाव होता है। अर्थ प्रभृति के धातु का अराम के सहित थराम का द्विर्वचन होता है। कथ-णि-तिप्-कथयति। कथ-णि-भूतेश का दिप् अचकथत्। संख्यानार्थं गण धातु, गण-णि-तिप् गणयति। गण-णि-भूतेश का दिप् अजगणत्। प्रार्थना अर्थ में अर्थ धातु, अर्थ-णि-ते अर्थयते, भूतेश में त-आर्त्तीथपत। अङ्क लक्षण में धातु अङ्क-णि-तिप्-अङ्कयति पक्षे-अङ्कापयति। अङ्क-भूतेश का दिप् आञ्चीकपत्, काशिका के मत में आञ्चकत्। वोपदेव के मत में आञ्चिकत् ॥२६५॥

युज संयमने—

युजादेर्णि र्वा ॥२६६॥

योजति, योजयति, भू प्राप्तौ-भावयते, भवते।

संयमार्थ युज धातु, युजादि धातु के उत्तर में विकल्प में णि होता है। युज्-तिप्-योजति, योजयति, प्राप्ति अर्थ में भू धातु भू-ते भावयते, पक्षे-भवते ॥२६६॥

॥ इति चुरादिः समाप्तः ॥

अथ णि प्रत्ययान्ताः

णिः प्रेरणादौ ।।२६७।।

प्रेरणादि र्हेतु कर्त्तृ व्यापारः । कुर्व्वन्तं प्रेरणादिना प्रवर्त्तयति ।

अथ णि प्रत्ययान्त, प्रेरणादि अर्थ में धातु के उत्तर णि प्रत्यय होता है। प्रेरणादि-शब्द से हेतु कर्त्ता का व्यापार अर्थात् प्रयोजक कर्त्ता की चेष्टा विशेष को जानना होगा। कर्त्ता को प्रेरणादि के द्वारा प्रवर्त्तित किया जा रहा है, इस अर्थ में डु कृञ् करणे इस धातु के उत्तर में २६७ सूत्र से णि किया जाता है। णि होने से—

णेरुभयपदम् ।।२६८।।

कारयति, कारयते, कार्य्यते, अचीकरत्, कारयामास ।

सूत्र के द्वारा उभय पद होता है।

कृ-णि-तिप् कारयति, कृ-णि-ते कारयते, कृ-णि-भावे ते कार्य्यते । कृ-णि-भूतेश का दिप् अचीकरत् । कृ-णि-णल् कारयामास ।।२६८।।

घटादीनामुद्धवस्य वामनो णौ, णि पूर्व्वयोर्णम्विणोस्तु त्रिविक्रमो वा ।।२६९।।

घटयति, घटयते, अजीघटत, इणि-अघटि, अघाटि । ञित्वरा सम्भ्रमे, त्वरयति ।

णि प्रत्यय परे रहने से घटादि धातु के उद्धव के स्थान में वामन होता है, एवं णि प्रत्यय पूर्व्व णमु एवं इण् प्रत्यय परे रहने से उक्त घटादि धातु के उद्धव के स्थान में विकल्प में त्रिविक्रम होता है। घट-णि-तिप् घटयत्ति, घट-णि-ते घटयते। घट-णि-भूतेश का दिप् अजीघटत, इण् प्रत्यय परे रहने का उदाहरण-घट-णि-भूतेश का भावे त अघटि, पक्षे-२६९ सूत्र के द्वारा त्रिविक्रम होने से अघाटि। सम्भ्रमार्थ धातु ञित्वरा, इसका ञि एवं आ इत् होकर त्वर् रहता है। त्वर्-णि-तिप त्वरयति ।।२६९।।

स्फायी, ओप्यायी वृद्धौ—

स्फायः स्फार्, शदेरगतौ शात्, इणो गमिरबोधने,
क्रीञः क्राप्, अधिङोऽध्याप्, जे र्जाप्, सिध्यतेः
साध्-नतु पारलौकिके, दुषो दूष् चित्त कर्म्मत्वे
तु वा णौ ॥२७०॥

स्फारयति, शातयति, छिनत्तीत्यर्थः ।

वृद्धि अर्थ में स्फायी धातु एवं ओप्यायी धातु, इन दोनों के ईराम एवं ओराम इत् होते हैं । अतः स्फायी का स्फाय एवं अप्यायी का प्याय रहता है । णि परे रहने से स्फाय धातु के स्थान में स्फार होता है, गत्यर्थ व्यतीत अर्थ में शद धातु के स्थान में शात्, बोधन भिन्न अर्थ में इन धातु के स्थान में गमि, क्रीङ धातु के स्थान में क्राप्, अधीङ् धातु के स्थान में अध्याप्, जि धातु के स्थान में जाप् होता है, सिधु धातु के साध्,किन्तु पारलौकिक अर्थ में नहीं होता है, दुष धातु के स्थान में दूष् होता है, किन्तु चित्त का कर्म्मत्व समझाना हो तो, दूष आदेश विकल्प में होता है । स्फाय-णि-तिप् स्फारयति । शद-णि-तिप् शातयति, इसका अर्थ छेदन करना है ॥२७०॥

नरोद्वयस्य इः पवर्ग हरिमित्र जरामेषु सनि ॥२७१॥

ततः सन्निमित्त कार्य्येण—भावयति, भावयते, अबीभवत्, अयीयवत्,
जु गतौ सौत्रः अजीजवत्, असिस्रवत् ।

सन् होने से अद्वय प वर्ग हरिमित्र जराम परे रहने से नर सम्बन्धि उद्वय के स्थान में इराम होता है ।

अतएव सन्निमित्त कार्य्यं होने से इस प्रकार पद होगा । भू-णि-भूतेश का दिप् अबीभवत् यु-णि भूतेश का दिप् अयीयवत् । जु-णि-भूतेश का दिप्-अजीजवत् स्रु-वि भूतेश का दिप् असिस्रवत् एकबार असुस्रवत् ॥२७१॥

हन्तेस्तो नृसिंहे ॥२७२॥

घातयति, घातयते, 'गत्यर्थस्य तुणौ तो न स्यात्' इति दुर्गः-घानयति ।

नृसिंह परे रहने से हन धातु के अन्त के स्थान में तराम होता है। हन-णि-तिप् घातयति। मुग्धबोध व्याकरण के टीकाकार दुर्गादास-भट्टाचार्य कहते हैं-गत्यर्थ हन धातु के उत्तर णि होने पर अन्त के स्थान में तराम नहीं होता है, यथा हन-ति-तिप् घानयति ॥२७२॥

॥ इति ण्यन्त-प्रक्रिया ॥

अथ सनन्ताः

सन् क्रियेच्छायाम् ॥२७३॥

उद्धव ग्रह गुहेभ्यो नेट्सनि, ईशसमीपाद् विष्णुजनादनिट् सन् कपिलः, ईशाच्च ॥२७४॥

भवितुमिच्छति-बुभूषति, बुभूष्यते । बुभूषाञ्चकार ॥२७३-२७४॥

क्रियेच्छा सूचित होने से धातु के उत्तर में सन् होता है ॥२७३॥

सन् परे रहने से उद्धवान्त धातु, ग्रह धातु एवं गुह धातु के उत्तर में इट् नहीं होता है। ईश पूर्व विष्णुजन के उत्तर में अनिट् सन् कपिल होता है, एवं ईश के उत्तर में भी अनिट् सन् कपिल होता है ॥२७४॥

ॠराम वृभ्य ईड् वा सनि ॥२७५॥

'ॠरामस्येर्' तरितुमिच्छति-तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति । चिचीषति, चिकीर्षति वा । गङ्गाकुल पिपतिषतीत्याद्युपचारात् ।

सन् परे रहने से ॠरामान्त धातु एवं वृ धातु के उत्तर में विकल्प में इट् होता है। ॠराम के स्थान में विकल्प में इर् होता है। तरितुमिच्छति अर्थात् तैरने की इच्छा कर रहा है, इस अर्थ में

तृ-सन्-तिप् तितीर्षति, एकवार-तितरीषति। तितरिषति होता है। चि-सन्-तिप् चिचीषति, चिञ् धातु के स्थान में कि आदेश पक्ष में चिकीर्षति पद होता है। 'गङ्गाकुलं पिपतिषति' स्थल में कुल शब्द का अचेचनत्व होने पर भी सचेतनत्व का उपचार अर्थात् आरोप हेतु, कारण-अचेतन पदार्थ की इच्छा नहीं होती है, २७३, 'सन् क्रियेच्छायाम्' सूत्र से सन् हुआ ।।२७५।।

ईर्ष्यो यिः सन् वा द्विः ।।२७६।।

इति चान्द्रसूत्रम्। ईर्ष्यियिषति, ईर्ष्यिषिषति।

सन् परे रहने से ईर्ष्य धातु का यिराम का द्वित्व विकल्प में होता है, पक्षे-सन् का द्विर्वचन होता है, यह सूत्र चान्द्र व्याकरण का है। ईर्ष्य-सन्-तिप् ईर्ष्यियिषति, पक्षे सन् का द्विर्वचन-ईर्ष्यिषिषति ।।२७६।।

नरात् स्तौति-ण्यन्तयोरेव षत्वं सनः षे ।।२७७।।

तुष्टूषति, 'द्युतिष्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः' सुष्वापयिषति। सिचिर् क्षरणे-सिसिक्षति नर निमित्त एव निषेधादिह तु स्यादेव-प्रतीषिषति, परिषिषिक्षति।

सन् सम्बन्धीय मूर्द्धण्य षराम परे रहने से नर के उत्तर में सराम का षत्व, स्तु धातु एवं ण्यन्त धातु का होता है, अपर का नहीं होता है।

स्तु-सन्-तिप् तुष्टूषति। 'द्युतिष्वाप्योर्नरस्य सङ्कर्षणः' सूत्र का उदाहरण-स्वप्-णि-सन्-तिप् सुष्वापयिषति। सिचिर् धातु का अर्थ क्षरण है, इर् इत् होकर सिच् रहता है। सिच्-सन्-तिप् सिसिक्षति। नरनिमित्त षत्व निषेध हेतु यहाँ षत्व होगा। प्रति-इन्-सन्-तिप् प्रतीषिषति। परि-सिच्-सन्-तिप् परिषिषिक्षति।२७७

।। अथ सनन्ताः ।।

अथ यङन्ताः

विष्णुजनाद्येक सर्व्वेश्वराद् यङ् पौन पुन्यातिशययोः ॥२७८॥

अनन्तर यङन्त। एक सर्व्वेश्वर विष्णुजनादि धातु के उत्तर पौनःपुन्य एवं अतिशय अर्थ में यङ् प्रत्यय होता है, इसका ङराम इत् होकर यराम रहता है ॥२७८॥

पुनः पुनरतिशयेन वा भवतीत्यर्थे—

नरस्य गोविन्दोयङि विष्णुरहितारामान्तस्य तु त्रिविक्रमः ॥२७९॥

धातोर्द्विर्व्वचनम्, ङित्वादात्मपदम्-बोभूयते, बोभूय्यते।

यङ् परे रहने से नर का गोविन्द होता है, एवं विष्णु रहित अरामान्त नर का त्रिविक्रम होता है, अनन्तर 'भूसनन्ताद्या धातवः' सूत्र से धातु संज्ञा होती है, पश्चात् यङन्त के उत्तर तिवादि प्रत्यय होते हैं। यङ् का ङित्व हेतु यङन्त धातु के उत्तर में आत्मने पद होता है। भू-यङ्-ते बोभूयते। भाव वाच्य में भू-यङ्-ते-बोभूय्यते ॥२७९॥

गत्यर्थाद् यङ् कौटिल्य एव ॥२८०॥

कुटिलमटति-अटाट्यते।

गत्यर्थ धातु के उत्तर में कुटिल गमन अर्थ में यङ् होता है, पौनःपुन्य, वा अतिशय अर्थ में नहीं होता है। 'कुटिलं अटति' इस वाक्य में अट्-यङ्-ते अटाट्यते। 'भृशं अटति, भृशं प्रभृति' वाक्य में प्रयोग यङ् नहीं होगा ॥२८०॥

ऋरामस्य री क्यङोः ॥२८१॥

'क्य' इति क्यङ् क्यनोः । कृ-चेक्रीयते ।

क्य एवं यङ् परे रहने से ऋराम के स्थान में री होता है, क्य-शब्द से क्यङ् एवं क्यन् को जानना होगा । क्यङ् एवं क्यन् का विवरण आगे है । कृ-यङ्-ते-चेक्रीयते ॥२८१॥

लुप-सद-चर-जप-जभ-दह-दंश-गॄभ्यो भाव गर्हायामेव यङ् ॥२८२॥

गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते, सासद्यते ।

लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दन्श एवं गॄ धातु के उत्तर में भावगर्हा अर्थ में यङ् होगा, 'गर्हितं लुम्पति' इस वाक्य में लुप्-यङ्-ते लोलुप्यते । सद्-यङ्-ते सासद्यते । चरादि धातु का प्रयोग आगे है ॥२८२॥

हरिवेण्वन्तानां जप-जभ-दह-दंश-भञ्जाञ्च नरादरामतो विष्णुचक्रं यङि ॥२८३॥

यंयम्यते, तंतन्यते, जंजन्यते, जंजप्यते, जञ्जभ्यते ।

यङ् परे रहने से हरिवेण्वन्त धातु, एवं जप, जभ, दह, दन्श, भन्ज, धातु के नर के अराम के उत्तर में विष्णुचक्र होता है । यम-यङ्-ते यंयम्यते, तन्-यङ्-ते तंतन्यते, जन्-यङ्-चे-जंजन्यते । जप्-यङ्-ते जंजप्यते । जभ् धातु एवं जृभि धातु का अर्थ गात्र विनाम, अर्थात् जृम्भन, जिम्भाई लेना । जभ्-यङ्-ते जंजभ्यते ॥२८३

ल-व-यान्तस्य तु वा इति वक्तव्यम् ॥२८४॥

चंचल्यते, चाचल्यते, मंमव्यते, मामव्यते । दंदय्यते, दादय्यते ।

लरामान्त एवं वरामान्त एवं यरामान्त धातु के उत्तर यङ् होने पर इन सबके नर के अराम के उत्तर में विष्णुचक्र विकल्प में होता है । यही करना है । चल्-यङ्-ते चंचल्यते, चाचल्यते, मव्-यङ्-ते-मंमव्यते, पक्षे- मामव्यते । दय-यङ्-ते दंदय्यते-दादय्यते ॥२८४॥

कृपेश्चलीक्लृप्यः, स्वपः सोषुप्यः, व्येञो वेवीयः, वशो वावश्यः, चाय श्चेकीयः, घ्रो जेघ्रीयः, ध्मो देध्मीयः, चरेश्चञ्चूर्य्यः, फलेः—पम्फुल्य इति यङा निपाताः ॥२८५॥

चलोक्लृप्यते, सोषुप्यते, इत्यादि ।

यङ् के सहित कृप प्रभृति के स्थान में चलीक्लृप्य प्रभृति निपात होते हैं । अर्थात् कृप के स्थान में चलीक्लृप्य, स्वप के स्थान में सोषुप्य, व्येञ के स्थान में वेवीय, वश के स्थान में वावश्य, चाय के स्थान में चेकीय, घ्रा के स्थान में जेघ्रीय, ध्मा के स्थान में देध्मीय, चय के स्थान में चञ्चूर्य्य, फल के स्थान में पम्फुल्य होता है । कृप-यङ्-ते चलीक्लृप्यते, स्वप-यङ्-ते सोषुप्यते ॥२८५॥

॥ इति यङन्त प्रक्रिया ॥

अथ चक्रपाणयः

यङो महाहरो बहुलम् ॥२८६॥

बाहुल्यात् क्वचिद् भाषायाम्, क्वचिच्छन्दसि च । तथा द्विर्व्वचनात् पूर्व्वं महाहरः । नर प्रति हरत्वं, धातुत्वं प्रति, सङ्कर्षणं प्रति, निपातं प्रति च इत्यादि इत्यादि ज्ञेयम् ।

'ब्रुव ईट्' इत्यादि 'चक्रपाणेस्तु वा' अन्तहरे न गोविन्द वृष्णीन्द्राविति, निषेधश्च चक्रपाणेः कृष्ण धातुके न स्यात्—बोभवीति, बोभोति, बोभूतः, बोभुवति, बोभूयात्, बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्, अबोभवीत्, अबोभोत् ।

अनन्तर चक्रपाणि प्रक्रिया का आरम्भ करते हैं । बाहुल्य रूप में यङ् का महाहर होता है, बाहुल्य हेतु स्थल विशेष में भाषा में स्थल विशेष में छन्द में होता है । किन्तु महाहर द्विर्व्वचन के पहले

में ही होगा, किन्तु नर के प्रति उक्त महाहर का हरत्व होगा, एवं धातुत्व के प्रति एवं सङ्कर्षण के प्रति, निपात के प्रति भी हर होगा।

यङ् महाहरान्त का नाम चक्रपाणि है, यह चक्रपाणि अदादि के परपदि धातु में प्रयुक्त होता है। 'ब्रुव ईड़ित्यादि' सूत्र के अन्तर्गत 'चक्रपाणेस्तु वा' सूत्र से विकल्प में ईट् होता है। अन्त हर होने से गोविन्द वृष्णीन्द्र नहीं होते हैं। यह निषेध चक्रपाणि के कृष्ण धातु परे रहने से नहीं होता है। भू-चं-तिप् बोभवीति, पक्षे बोभोति, भू-चं-तस् बोभूतः, भू-चं-अन्ति बोभुवति, भू-चं-यात् बोभूयात्, भू-चं-तुप् बोभवीतु, पक्षे बोभोतु, भू-चं-ता बोभूतां बोभूतां, भू-चं-भूतेश्वर का दिप् अबोभवीत्, पक्षे अबोभोत् ॥२८६॥

हरिवेण्वन्तोद्धवस्य त्रिविक्रमः क्वौ कंसारि वैष्णवे च ॥२८७

क्त्व तु क्रमो वा ॥२८८॥

जंगमीति, जङ्गन्ति, जङ्गतः। 'उद्धवादर्शनम्'

जंग्मति, पक्षे-जंगमति ॥२८७-२८८॥

क्विप् एवं कंसारि वैष्णव परे रहने से हरिवेण्वन्त धातु के उद्धव का त्रिविक्रम होता है ॥२८७॥

क्त्वा, प्रत्यय परे रहने से क्रम धातु का त्रिविक्रम विकल्प में होता है। गम-चं-तिप् जंगमीति, पक्षे जङ्गन्ति, गम्-तस् जङ्गतः। गम-चं अन्ति जंग्मति, पक्षे-जंगमति ॥२८८॥

न नृत्यादे रीट् ॥२८९॥

नरिनर्त्ति, नरिनर्त्सि।

नृत् प्रभृति धातु के उत्तर में ईट् नहीं होगा। नृ-चं-तिप् नरिनर्त्ति, नरनर्त्सि ॥२८९॥

॥ इति चक्रपाणयः ॥

अथ विभुः

नाम विष्णुपदात् प्रत्ययः ॥२९०॥

यमिच्छति तस्मात् क्यन् ॥२९१॥

अन्तरङ्ग स्वादे महाहर एकपदत्वारम्भे ॥२९२॥

अद्वयस्य ई क्यनि ॥२९३॥

पुत्रमिच्छतीति पुत्र-क्यन्, कनावितौ, पुनः क्यनादिना सहैक पदत्वं भविष्यति, पुर्नविष्णुभक्तिसिद्धत्वात, ततश्च– पुत्रीयति । पुत्राविच्छति-पुत्रीयति इत्यादि । 'उपेन्द्रारस्त्रिविक्रमः' प्रर्षमीयति, प्रार्षमीयति ॥२९३॥

युष्मदस्मदोन्त्वन्मदावुत्तरपदप्रत्यययोरेकत्वे ॥२९४॥

समासस्य परपदमुत्तरपदम् । त्वामिच्छति-त्वद्यति ।

मामिच्छति-मद्यति । द्वित्व-बहुत्वयोः युष्मद्यति, अस्मद्यति ।

उत्तर पद एवं प्रत्यय परे रहने से एकत्वे वर्त्तमान युष्मद शब्द के स्थान में त्वद्, अस्मद् शब्द के स्थान में मद् आदेश होता है। त्वाम्-इच्छति इस वाक्य में युष्मद्-य-तिप त्वद्यति । माम् इच्छति इस वाक्य में, अस्मद्–य–तिप्–मद्यति, द्वित्व एवं बहुत्व में– युषाद्-य-तिप् युष्मद्यति । अस्मद्-य-तिप् अस्मद्यति ॥२९४॥

नान्तमेव विष्णुपदं क्ये ॥२९५॥

राजानमिच्छति-राजीयति अर्ह्यति ।

क्य परे रहने से नान्त शब्द ही विष्णुपद होता है, अपर का विष्णुपदत्व नहीं होता है । विष्णुपदत्व हेतु नलोपादि होते हैं। किन्तु तुदादि विधि व्यतीत अन्यत्र न लोप असिद्ध नहीं होता है। 'राजानमिच्छति' इस वाक्य में राजान्–य–तिप् राजीयति । अहः–इच्छति इस वाक्य में– अहन्–य–तिप् अहर्यति, अहर्य्यति, 'अह्नो विष्णुसर्गस्य रः' सूत्र से विष्णुसर्ग का र हुआ है ॥२९५॥

यमिवाचरति यस्मिन्निव च तस्मात् क्यन् ।।२९६।।

पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति रामम्, तुत्रवन्मन्यते । वृन्दावने इवाचरति वृन्दावनीयति ।

वस्तु का जिसके समान आचरण करता है, एवं वस्तु में जिसके तुल्य आचरण करता है, उसके उत्तर में क्यन् होता है। पुत्रमिवाचरति रामम्-इस वाक्य में पुत्र-य-तिप् पुत्रीयति रामम्। अर्थात् राम को पुत्र तुल्य मान रहा है। वृन्दावने इव आचरति-निजोपवने इस वाक्य में वृन्दावन-य-तिप् वृन्दावनीयति निजोपवने, अर्थात् वृन्दावन में जिस प्रकार व्यवहार करता है, इस प्रकार व्यवहार कहता है ।।२९६।।

य इवाचरति तस्मात् क्यङ् ।।२९७।।

'वामनस्य' इति सामान्य ग्रहणादधातोरपि वामनस्य त्रिविक्रमः, कृष्ण इवाचरति-कृष्णायते ।

जिसके तुल्य आचरण करता है, उसके उत्तर क्यङ् होता है। २९७, वामनस्य त्रिविक्रमः कृत् कृष्ण धातुकेतर य-प्रत्यये' यहाँ सामान्य वामन मात्र का ग्रहण हेतु अधातु में भी वामन का त्रिविक्रम होता है, यथा–कृष्ण इव आचरति इस वाक्य में कृष्ण-य-ते कृष्णायते ।।२९७।।

क्वचित् क्यङः क्विप् ।।२९८।।

क्पाविती ।

स्थल विशेष में क्यङ् के स्थान में क्विप् होता है। क्यङ् के समान नान्त विष्णुपद होता है। एवं क्विप् का क एवं प इत् होकर वि रहता है ।।२९८।।

केवलस्य प्रत्ययवेर्हरः ॥२९९॥

कृष्णति गोपी, विधवति तन्मुखम् ।

केवल मात्र प्रत्यय वि का हर होता है। कृष्ण-य-तिप् कृष्णति गोपी, विधु-य-तिप् विधवति तन्मुखम् ॥२९९॥

गल्भादेरात्मपदञ्च ॥३००॥

गल्भते, क्लीवते ।

गल्भादि शब्द के उत्तर क्यङ् के स्थान में क्विप् होता है, और आत्मपद होता है। गल्भ-य-ते गल्भते क्लीव-य-ते क्लीवते॥३००

भृशादिभ्यः क्यङ् ॥३०१॥

अभृशो भृशो भवति-भृशायते ।

अभूततद्भाव अर्थ में भृशादि शब्द के उत्तर में क्यङ् होता है; एवं अन्त विष्णुजन का हर होता है। अभृशो भृशो भवति इस वाक्य में भृश-य-ते भृशायते ॥३०१॥

लोहितादेरुभय पदत्वञ्च ॥३०२॥

लोहितायति, लोहितायते ।

अभूत तद्भाव अर्थ में लोहितादि शब्द के उत्तर में क्यङ होता है, अन्त विष्णुजन का हर एवं उभय पद होता है।
लोहित-य-तिप् लोहितायति, एकबार-लोहित-य-ते लोहितायते ॥३०२

आच् प्रत्ययान्ताञ्च ॥३०३॥

पटपटायति, पटपटायते, पटपटाति ।

आच् प्रत्ययान्त शब्द के उत्तर में भी क्यङ् होता है, एवं उभय पदत्व भी होता है, पटपटा-य-तिप् पटपटायति। पटपटा-य-ते पटपटायते। पटपटा-य-तिप् पटपटाति ॥३०३॥

हल्यादिभ्यो ग्रहणाद्यर्थे णिः ॥३०४॥

हलिं गृह्णाति-हलयति, कलिं-कलयति, अजहलत्, अचकलत्,
रूपं पश्यति-रूपयति ।

ग्रहणादि अर्थ में हल्यादि शब्द के उत्तर में णि होता है, हलिं-गृह्णाति. इस अर्थ में हलि-णि-तिप् हलयति । कलिं-गृह्णाति इस वाक्य में कलि-णि-तिप्-कलयति । हलि-णि-भूतेश का दिप्-अजहलत, कलि-णि-भूतेश का दिप्-अचकलत् । रूपं पश्यति इस वाक्य में रूप्-णि-तिप् रूपयति ॥३०४॥

सत्यार्थ वेदेभ्य आपुक् च ॥३०५॥

सत्यापयति । कविं-कवयति ।

तत् करोति, तदाचष्टे इस अर्थ में सत्य अर्थ एवं वेद शब्द के उत्तर में णि होता है, णि होने एवं णि के पूर्व में आपुक् होता है ।

सत्य-णि-तिप् सत्यापयति । कविं आचष्टे इस वाक्य में कवि-णि-तिप् कवयति ॥३०५॥

नामधातु-हनो न घत्वम् ॥३०६॥

जिहननीयिषति ।

नाम धातुत्व को प्राप्त होने से हन धातु के हराम के स्थान में घराम नहीं होता है । हन-क्यन्-सन्-तिप् जिहननीयिषति ॥३०६॥

नामधातूनां यथेष्टम् ॥३०७॥

पुपुत्रीयिषति, पुतित्रीयिषति, पुत्रीयियिषति, पुत्रीयिषिषति,
पुपुतित्रीयियिषति, पुपुतित्रीयियियिषिषति कृष्णम्, सर्व्वेश्वरादीनान्तु
ईशिशीयियियिषिषति कृष्णम् ।

धातोर्द्विवचनमधोक्षज सन्नङ् यङषु ६१, सूत्र से नाम धातु का द्विर्वचन होने पर यथेष्ट द्विर्वचन होता है । पुत्रीय-सन्-तिप् पुपुत्रीयिषति, ति का द्विर्वचन होने से पुतित्रीयिषति, यि का

द्विवचंन से पुत्रीयियिषति, ष का द्विर्वचन से पुत्रीयिषषति, इस प्रकार पुपुतित्रीयियिषति, पुपुतित्रीयियिषिषति सर्वत्र कृष्णम्, इस पद का योग करना चाहिये। सर्व्वेश्वरादि धातु होने पर सत्सङ्गादि नराम, वराम, दगम, एवं रराम को छोड़कर तत पर भाग का ही द्विर्व्वचन होगा। ईशी य-सन्-तिप् ईशिशीयिषति कृष्णम्, ईशीयियिषति, ईशिशोयियिषिषति कृष्णम् ॥३०७॥

॥ इति विभुप्रक्रिया ॥

अथ उपेन्द्रविधौ कश्चिद्विशेषः

अन्तःशब्दो णत्वविधौ धाञो ङाप् किविधौ तथा।
भवेदुपेन्द्रोऽथ नेते षत्वार्थं यान्त्युपेन्द्रताम् ॥३०८॥

अथ उपेन्द्र विधि का विशेष विवरण—

णत्व विधि के निमित्त धाञ् धातु के उत्तर में ङाप् एवं किविधान के निमित्त अन्तः शब्द उपेन्द्र होता है। एवं निम्नोक्त शब्द समूह का उपेन्द्रत्व षत्व के निमित्त नहीं होता ॥३०८॥

सुः पूजायामतिस्तद्वदति क्रान्तो अथो अपिः।
स्तोकता-योग्यता-स्वैरानुज्ञागर्हा-समुच्चये ॥३०९॥

अन्तरिति-अन्तर्णयति, अन्तर्धा, अन्तर्द्धिः, अथ नेते-इति। सुस्तुहि, अतिस्तुहि, अथो अपिरिति-सर्पिषोऽपि स्यात्, अपिस्येत् पर्व्वतंसिहः, अपिसिञ्चेत् तुलसीम्, अपिसिञ्चेत् पलाण्डुम्, अपिस्तुहि इत्यादि ज्ञेयम् ॥३०८-३०९॥

पूजा अर्थ में सु, अतिक्रान्त अर्थ में अति, स्तोकता, योग्यता, स्वैरा अनुज्ञा, एवं समुच्चय अर्थ में अपि।

इन सब शब्द के मध्य में अन्तर शब्द का उदाहरण—

अन्तर्-नयति अन्तर्णयति, अन्तर्-धा-ङाप् सु-अन्तर्धा, अन्तर्-धा-कि-सु-अन्तर्धिः ।

अनन्तर उपेन्द्रत्व का निषेध यथा—

सु-स्तु-हि सुस्तुहि, यहाँ पूजा अर्थ में सु की उपेन्द्रता न होने से षत्व नहीं हुआ। इस प्रकार अति-स्तु-हि अतिस्तुहि । यहाँ अति का अतिक्रान्त अर्थ होने से उपेन्द्रता न होने के कारण षत्व नहीं हुआ। अनन्तर अपि का उदाहरण यथा–

सर्पिषोऽपि स्यात्, यहाँ अपि का स्तोकता अर्थ हेतु उपेन्द्रत्व नहीं हुआ। अपिस्येत् पर्व्वतं सिंहः, इति पश्चाद् योज्यः । यहाँ अपि का योग्यता अर्थ हेतु उपेन्द्रत्व नहीं हुआ। अपिसिञ्चेत् तुलसीम्, यहाँ अपि का स्वैरा अनुज्ञा अर्थ हेतु उपेन्द्रत्व नहीं हुआ।

अपिसिञ्चेत् पलाण्डुम्, यहाँ अपि का गर्हा अर्थ हेतु उपेन्द्रत्व नहीं हुआ। अपिसिञ्च, अपिस्तुहि-अर्थात् सेचन करो, एवं स्तव करो, यहाँ अपि का समुच्चय अर्थ हेतु उपेन्द्रत्व नहीं हुआ ॥३०८-३०९॥

इति संक्षेप-श्रीहरिनामामृताख्ये-वैष्णव व्याकरणे

आख्यात प्रकरणं तृतीयं समाप्तम् ॥३॥



[चतुर्थम्]

अथ कारक-प्रकरणम्

यः कर्त्ता कर्म्म करणं सम्प्रदानमशेषतः ।
अपादानाधिकरणे तत् सम्बन्धो भवेदिह ॥१॥

अथ विष्णु भक्त्यर्थाः, तत्र– जो अशेष लीला के द्वारा महाविष्णु रूप में कर्त्ता, विराट् रूप में कर्म्म, एवं ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र गुणावतार रूप में करण, यज्ञपुरुष रूप में सम्प्रदान एवं गर्भोदकशायी एवं अनन्त रूप में अपादान, एवं अधिकरण वाच्य है, उन श्रीकृष्ण का सम्बन्ध इस जगत् में पूर्वोक्त षट् कारक रूप में अन्वित है । व्याकरण पक्ष में–

जो कारक-शब्द विविध सूत्र द्वारा कर्त्ता, कर्म्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, एवं अधिकरण संज्ञा से अभिहित होता है, उस कारक शब्द का सम्बन्ध षट् कारकत्व रूप में इस चतुर्थ पाद में सन्निवेशित होगा ।

विष्णु भक्ति निरूपण के पश्चात् उसका अर्थ निरूपित हो रहा है । उसके मध्य में प्रथम षट् कारक का निरूपण किया जा रहा है ॥१॥

एकद्वि बहुत्वेष्वेक द्वि बहुवचनानि ॥१॥

कृष्णो भवति, कृष्णौ भवतः, कृष्णा भवन्ति ।

प्रकृति के एकत्व द्वित्व एवं बहुत्व अर्थ में उस प्रकृति के उत्तर में एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन होता है ॥१॥

युष्मदो गौरवे त्वेकत्वे द्वित्वे बहुवचनम् ॥२॥

हे पित यूयं वदत, हे पितरौ यूयं पश्यत ।

गौरव अर्थात् समादर अर्थ में युष्मद् शब्द के उत्तर में एकत्व द्वित्व विषय में बहुवचन होता है। यथा- 'हे पित यूयं वदत' यहाँ एकत्व विषय में अर्थात् 'त्वं' के स्थान में एवं 'हे पितर्यूयं-पश्यत' यहाँ द्वित्व विषय में अर्थात् 'युवां' के स्थान में 'यूयम्' बहुवचन निष्पन्न पद हुआ ॥२॥

अस्मदस्त्वगौरवेऽपि ॥३॥

वयं ब्रूमः ॥३॥

अगौरव एवं गौरव उभय अर्थ में ही अस्मद् शब्द के उत्तर एकत्व एवं द्वित्व विषय में बहुवचन होगा। यथा-'अहं ब्रवीमि, 'आवां ब्रूवः' उभय स्थल में ही 'वयं ब्रूमः' प्रयोग होगा ॥३॥

प्रथमा नाम मात्रार्थे ॥४॥

सुन्दरा दाराः सुन्दरी देवता, सुन्दर दैवतम् ।

नाममात्र अर्थ में प्रथमा विष्णु भक्ति होती है। इसका अर्थ यह है-जो शब्द जिस अर्थ का वाचक है, उसी अर्थ की प्रतीति होने से उस शब्द के उत्तर में प्रथमा विष्णुभक्ति होती है, नाम मात्रार्थ कहा गया है, यहाँ वक्ष्यमाण सम्बन्ध निरपेक्षत्व है तन्मात्रत्व है।

वक्ष्यमाण सम्बन्ध अर्थात् सम्बन्ध षष्ठी, षट् कारक, उपपद विष्णुभक्ति सम्बन्ध निरपेक्षता ही 'तन्मात्र' पद का तात्पर्य्य है।

अतएव लिङ्ग अर्थात् स्त्रीत्वादि स्वभाव सिद्ध ही नाम का अर्थ विशेष में परिणत हुआ। इस वाच्य लिङ्ग का भी नाम का अर्थ विशेष ही स्वभाव है । शब्द-द्विविध हैं, लिङ्गात्मक एवं अलिङ्गात्मक । अलिङ्गात्मक का उदाहरण-उच्चैः नीचैः । जो स्त्री पुं एवं नपुंसक शब्द का वाच्य है, उसका नाम लिङ्ग है। भाष्य में इसका सन्त्यान एवं प्रसर शब्द से उल्लेख हुआ है, संस्त्यान शब्द

का अर्थ-संहति अर्थात् मिलन, जो शरीर के सहित मिलित होकर रहता है, यह स्त्री चिह्न है। विस्तार का नाम प्रसर है, जो उपचय रूप में अर्थात असङ्कोच से दृष्ट होता है। यह पुंलिङ्ग है। तात्पर्यार्थ यह है कि–स्तन, श्मश्रु, स्तनश्मश्रु उभय, त्रिविध चिह्न के द्वारा क्रमशः स्त्री, पुरुष एवं क्लीव में उक्त उपचय, अपचय, एव उभय की समता रूप, अर्थात् किसी नपुंसक में स्त्री चिह्न, किसी नपुंसक में पुरुष चिह्न रूप जो धर्मक्रम दृष्ट होता है, उस धर्मक्रम को अवलम्बन कर ईश्वर के द्वारा निर्म्मित वस्तु का धर्म विशेष ही लिङ्ग होता है। यह लिङ्ग वस्तु का धर्म विशेष होने पर भी शब्द रूप नाम में आरोपित होता है।

लिङ्गात्मक शब्द का उदाहरण– 'स्त्री, पुमान्, नपुंसकम्' स्थल विशेष में नाम के द्वारा परिभाषित अर्थात् आरोपित लिङ्ग वस्तु में भी आरोपित होता है। जैसे 'सुन्दराः दाराः' यहाँ दार शब्द का पुंस्त्व स्त्री रूप वस्तु में आरोपित हुआ है, अन्यथा स्त्री वाचक शब्द पुलिङ्ग नहीं हो सकता है, इस प्रकार देवता एवं देवत शब्द है ॥४॥

सम्बोधने च ॥५॥

हे कृष्ण ! गम्यत्वेऽपि-कृष्ण ।

सम्बोधन अर्थ में भी प्रथमा विष्णु भक्ति होती है। सम्बोधन का अर्थ है, आमन्त्रण, नाम के द्वारा नामी का अर्थात् नाम विशिष्ट व्यक्ति का आभिमुख्य सम्पादन को आमन्त्रण कहते हैं। यह आमन्त्रण पद, हे अङ्ग, ननु, प्रभृति के शब्द के द्वारा प्रतीत होता है। तादृश आमन्त्रण अर्थ का आधिक्य होने पर भी नाम के उत्तर में प्रथमा होती है। यथा– 'कृष्ण नाम्नस्तव आभिमुख्यं भवतु' इस अर्थ में हे कृष्ण ! यह पद सिद्ध होता है। 'हे' इत्यादि सम्बोधन सूचक अव्यय शब्द न रहने पर भी 'कृष्ण' यहाँ सम्बोधन रूप अर्थ की प्रतीति होती है ॥५॥

सम्बन्धे तदाश्रयात् षष्ठी ॥६॥

कृष्णस्य भक्तः।

सम्बन्ध शब्द से सम्बन्ध का जो आश्रय है, उसके उत्तर में षष्ठी होती है, भिन्नता रूप में विवक्षित अर्थात् वक्ता के इच्छानुसार विभक्त शब्द द्वय का जो आर्थिक योग है, उसका नाम सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध उभयनिष्ठ है, उभय शब्द से उसकी प्रतीति होने पर भी जिससे अन्य शब्द में सम्बन्ध प्रवृत्त होता है, उसके उत्तर में ही षष्ठी होगी, किन्तु प्रवृत्ति-वक्ता के इच्छानुसार होगी. अतः जिसमें षष्ठी नहीं होगी, उसमें यथायोग्य प्रथमादि विष्णुभक्ति होगी। एक षष्ठी विष्णुभक्ति के द्वारा ही उभय सम्बन्धार्थ की प्रतीति होती है, अतएव उभय शब्द का नाममात्र अर्थ ही अवशिष्ट रहता है, सुतरां प्रथमा विष्णु भक्ति होती है। 'कृष्णस्य भक्तः' यहाँ कृष्ण से जो स्वामित्व रूप सम्बन्ध भक्त में प्रवृत्त हुआ है, भक्त भी उसके द्वारा ही सम्बद्ध है। इससे कृष्ण शब्द के उत्तर में षष्ठी हुई है। इस प्रकार 'भक्तस्य कृष्णः' यहाँ वक्ता के इच्छानुसार भक्त से ही भृत्यत्व रूप सम्बन्ध कृष्ण में प्रवृत्त हुआ, अतः भक्त शब्द के उत्तर में षष्ठी हुई ॥६॥

क्रियासम्बन्धविशेषिकारकम् ॥७॥

वैष्णवो भवति।

जिसमें क्रिया का विशेष सम्बन्ध रहता है, उसका नाम कारक है। सत्तादि अर्थात् विद्यमानता प्रभृति धातु के अर्थ को क्रिया कहते हैं। उस क्रिया में जन्य जनक रूप में अर्थात् फल एवं व्यापार रूप में अन्तर्भूत क्रियाद्वय हैं, उभय का कर्तृत्व कर्म्मत्व रूप सम्बन्ध विशेष जिसमें विवक्षित होगा, अर्थात् वक्ता के इच्छाधीन प्रयुक्त होगा, वह कारक है। 'वैष्णवो भवति' यहाँ सत्ता क्रिया का सम्बन्ध विशेष कर्तृत्वरूप तद्विशिष्ट 'वैष्णव' पद

कारक है। सामान्य रूप में सम्बन्ध की प्रतीति होने से केवल सम्बन्धी पद होगा, किन्तु सम्बन्ध विशेषि कारक शब्द का वाच्य नहीं होगा। जैसे कृष्ण के सम्बन्ध में पाक, कहने से 'कृष्णस्य पाकः' प्रयोग में सम्बन्ध मात्र अर्थ ही होगा, इस प्रकार 'कृष्णस्य पचति' प्रयोग में भी सम्बन्ध मात्र ही सूचित हुआ है। 'कारक' यह अव्युत्पन्न नाम है, अर्थात जो कर्त्ता है, वह कारक है, इस प्रकार व्युत्पत्ति साध्य नहीं है, किन्तु क्रिया का निमित्त रूप में लोक प्रसिद्धि है। यह मत अन्य पण्डित का है। उस कारक के उत्तर कर्त्तृत्वादि रूप विशेषत्व का व्यञ्जक (ज्ञापक) आख्यातादि आख्यात कृत् एवं द्वितीयादि प्रत्यय होगा। अर्थात् जिस कारक में क्रिया का सम्बन्ध मुख्य रूप में रहेगा, (जैसे कर्त्तरि वाच्य में कर्त्ता, कर्म्मणि वाच्य में कर्म) उस कारक में ही आख्यातादि प्रत्यय व्यञ्जक होगा, एवं जिस कारक में क्रिया का सम्बन्ध गौण रूप में है, (जैसे कर्त्तरि वाच्य में कर्म्म, कर्म्मणि वाच्य में कर्त्ता) अथवा क्रिया ही स्वयं मुख्य होगी, जैसे भाव वाच्य में, उस कारक में द्वितीयादि प्रत्यय व्यञ्जक होगा। 'वैष्णवो भवति' यहाँ कर्त्ता का आख्यात प्रत्यय व्यञ्जक हुआ है, किन्तु तृतीया नहीं हुई, एवं 'मालां करोति' स्थल में कर्म में द्वितीया, व्यञ्जक हुई है, 'वैष्णवेन-भूयते' यहाँ कर्त्तरि तृतीया व्यञ्जक है, किन्तु आख्यात प्रत्यय व्यञ्जक नहीं है, यह कारक-कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदाय, अपादान, अधिकरण रूप में षड्विध हैं, यह षड्विध कारक-उक्त-अनुक्त भेद से प्रत्येक द्विविध हैं ॥७॥

आख्यातादयो यत्र क्रियन्ते, तदुक्तम् ॥८॥

उक्तादन्यदनुक्तम् ॥९॥

वैष्णवो मालां करोति। बाधकान्तरेतु वैष्णवं मालां कुर्व्वन्तं पश्य ॥६॥

जिसमें आख्यातादि प्रत्यय होते हैं, वे उक्त हैं, सारार्थ यह है—प्रकृति नाम एवं धातु, एवं प्रत्यय-स्वादि, आख्यात, कृत्, तद्धित, एक कालीन प्रत्यय के अर्थ को प्रकाश करता है, अर्थात् प्रकृति स्वीय अर्थ को अप्रधान रूप से रखकर प्रत्ययार्थ को मुख्य रूप से पुष्ट करती है, इस नियम से प्रत्ययार्थ का ही प्राधान्य हुआ। सुतरां कर्त्तृ कर्मादि वाच्य में विहित आख्यातादि के मध्य में जो आख्यातादि, कर्त्रादि वाच्य में विहित होते हैं, उन सब आख्यातादि के द्वारा उक्त कर्त्ता प्रभृति षट् कारक उक्त होंगे, अर्थात् कर्त्तरि वाच्य में कर्त्ता, कर्म्मणि वाच्य में कर्म, इस प्रकार जानना होगा। अतएव नाममात्र अर्थ प्रतीत होने से उक्त नाम के उत्तर प्रथमा ही होगी। यदि इसका अपर कोई प्रतिबन्धक उपस्थित नहीं होता हो तो ॥८॥

उक्त भिन्न ही अनुक्त है। अर्थात् जो आख्यातादि जिन कर्त्रादि वाच्य में विहित नहीं होंगे। उन सब आख्यातादि के द्वारा उन सब कर्त्रादि षट् कारक अनुक्त होंगे। सुतरां उन सब में द्वितीयादि विष्णुभक्ति होंगी।

उदाहरण—'वैष्णवो मालां करोति' यहाँ कर्त्तरि वाच्य में विहित आख्यात के द्वारा 'वैष्णव' यह कर्त्तृ पद उक्त होने से प्रथमा हुई, 'मालां' यह कर्मपद अनुक्त होने के कारण—द्वितीया हुई। प्रतिबन्धक स्थल में उदाहरण—'वैष्णवं मालां कुर्व्वन्तं पश्य' यहाँ प्रथमतः कर्त्तृ वाच्य में विहित शतृ प्रत्यय के द्वारा 'वैष्णव' यह कर्त्तृपद उक्त था, पश्चात् उक्त का प्रतिबन्धक स्वरूप 'पश्य' यह

कर्त्तृ विहित क्रिया का कर्म हुआ। अतएव अनुक्त अर्थात् द्वितीया विभक्ति हुई। सम्प्रति द्वितीयादि विष्णु भक्ति को पृथक्-पृथक् करने के निमित्त उल्लिखित कारक के भेद को कहते हैं, अर्थात् कर्त्ता, कर्म्म, का विशेष विवरण कहते हैं ।।९।।

स्वतन्त्रं तत् प्रयोजकञ्च कर्त्तृ ।।१०।।

वैष्णवो भवति, वैष्णवौ भवतः, वैष्णवाः भवन्ति अहं भवामि, आवां भवावः, वयं-भवामः कर्त्ता प्रयोजकस्तु-कृष्णो भावयति, भवन्तं प्रेरयतीत्यर्थः विध्यादि प्रयोगा अपि-वैष्णवो भवेत् ।

स्वतन्त्र एवं उसका प्रयोजक उभय की कर्त्तृ संज्ञा होती है, उसके मध्य में जिस कारक की क्रिया, व्यापार रूप में विवक्षित होगी, अर्थात् वक्ता की इच्छा से प्रयुक्त होगी, उसका नाम-स्वतन्त्र है, एवं उस स्वतन्त्र का जो प्रेरक रूप में विवक्षित होगा, उसका नाम प्रयोजक है । यह स्वतन्त्र कारक एवं प्रयोजक कारक को कर्त्तृ संज्ञा होती है। सूत्र में लिखित 'कर्त्तृ' पद कारक का विशेषण है, सुतरां ब्रह्मलिङ्ग हुआ है, किन्तु अर्थ का अभिधेय का विशेषण करने से 'कर्त्ता' यह पुरुषोत्तम लिङ्ग भी होगा। 'यः करोति स कर्त्ता, कारयति यः स हेतुश्च' यह कलाप व्याकरण वेत्ता का मत है, यहाँ 'कर्त्ता' पद अर्थ का विशेषण होने के कारण पुंलिङ्ग में निर्दिष्ट हुआ है।

कृञ् धातु का अर्थ–समस्त धात्वर्थनिष्ठ है, इस अभिप्राय से कलाप के सूत्र में 'यः करोति' स कर्त्ता कहा गया है। इससे निखिल क्रिया का व्यापकत्व कर्त्ता में सूचित हुआ है । किन्तु उक्त सूत्रद्वय इस व्याकरण में उदाहरण का पोषक है, लक्षण नहीं है, कर्त्ता केवल स्वतन्त्र रूप में एवं प्रयोजक मात्र के अधीन रूप में अर्थात् प्रयोज्य रूप में त्रिविध होते हैं। स्वतन्त्र का नाम कर्त्ता, हेतु कर्त्ता का नाम प्रयोजक कर्त्ता, एवं प्रयोजक कर्त्ता का अधीन कर्त्ता को प्रयोज्य कहते हैं। अतएव आख्यात प्रकरण में परपदादि के द्वारा कर्त्तृ वाच्य

में परपद, आत्मपद एवं उभयपद का विधान हुआ है, उसका प्रयोग दिखाया जाता है।

कारक के सम्बन्ध में क्रियापद की विविधता हैं, क्रियापद में अर्थात् भवति पचति प्रभृति स्थल में उक्त कारक के अनुरूप पुरुष, वचन होते हैं, जिस प्रकार नामरूप कारक उक्त होने पर क्रियापद में प्रथम पुरुष होगा, युष्मद् कारक उक्त होने से मध्यम पुरुष, अस्मद् उक्त होने से उत्तम पुरुष होगा, उक्त के अनुरूप वचन एकत्व द्वित्व क्रमशः होगा।

वर्त्तमान काल में तिवादि प्रत्यय होते हैं, कर्त्तरि वाच्य में परपदादि होते हैं, 'वैष्णवो भवति' का अर्थ वर्त्तमान कालनिष्ठ सत्ता क्रिया का कर्त्ता, कारण सत्ता क्रिया का जो अनुकूल अर्थात् सहाय भूत व्यापार, उस व्यापारवान् वैष्णव है, इसमें सत्ता क्रिया का स्वातन्त्र्य विद्यमान है। इस उदाहरण में कर्त्ता के सहित क्रिया का सम्बन्ध मुख्य रूप से है, कारण, कर्त्ता ही आख्यात का वाच्य हुआ है। इस प्रकार 'वैष्णवो भवतः' इत्यादि स्थल में जानना होगा। 'भवान् भवति' स्थल में भवत् शब्द युष्मद् वाची होने पर भी मध्यम पुरुष की विभक्ति नहीं होती है, 'एवं भवसि' युष्मद् कारक में मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है, 'अहं भवामि' अस्मद् कारक का उदाहरण है, इसमें उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है, आवां-भवावः, वयं भवामः, द्विवचन एवं बहुवचन का प्रयोग है। यह स्वतन्त्र कर्त्ता का उदाहरण है। प्रयोजक कर्त्ता का उदाहरण– 'कृष्णो भावयति, भवन्तं प्रेरयति इत्यर्थः' कृष्ण तुमको प्रेरण कर रहे हैं, यहाँ 'भावयति' क्रिया प्रेरणार्थ में णिजन्त है, सुतरां प्रेरण कर्त्ता 'कृष्णः' पद उक्त हुआ है।

अच्युत का प्रयोग जिस प्रकार प्रदर्शित हुआ, उस प्रकार विधि-विधातृ का प्रयोग को भी जानना होगा। 'वैष्णवो भवेत्' इत्यादि ॥१०॥

क्रिया यत् साधिका तत् कर्म्म ॥११॥

क्रिया जिसकी साधिका होती है, उसको कर्म्म कहते हैं। यह कर्म्म कारक है। व्यापार रूप धात्वर्थ को क्रिया कहते हैं, वह क्रिया जिस कारक के अनन्तर निरूपित उत्पाद्यतादि रूप साधन के निमित्त प्रवृत्त होती है, वह कारक कर्म्म शब्द से अभिहित होता है। क्रिया में स्वातन्त्र्य न होने पर भी आरोपित स्वातन्त्र्य है, अतः कर्त्तृत्व का प्रयोग हुआ है, जिस प्रकार 'साधक तमं करणम्' प्रयोग होता है। जो क्रिया कारक की साधिका है, उससे उत्पाद्यतादि रूप प्रकार विशेष के द्वारा जो सम्पादन, अर्थात् निष्पादन उसका नाम साधन है, वह पञ्चविध हैं, १-उत्पाद्यता, २-विकार्य्यता, ३-संकार्य्यता ४-प्राप्यता, एवं ५-ताज्यता।

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है, उदाहरण-'वैष्णवो मालां करोति' करोति, कृति क्रिया, माला का उत्पाद्यता रूप साधन में प्रवृत्त है, अतएव माला की कर्म्म संज्ञा हुई। उसका अर्थ-माला की वर्त्तमान कालीन जो कृत्ति क्रिया उस क्रिया का कर्त्ता वैष्णव है, 'अन्नं पचति' यह विकार्य्य का उदाहरण है, 'जलं वासयति' संस्कार्य्य का उदाहरण, 'कृष्ण मन्दिरं गच्छति' प्राप्य का उदाहरण, 'स्वगृहं त्यजति' त्याज्यता का उदाहरण है, 'कृष्णं स्पृशति, पश्यति, शृणोति' प्राप्यता का उदाहरण है।

क्रिया का विशेषण की कर्म्म संज्ञा होती है, इसमें ब्रह्मलिङ्ग का एकवचन प्रयोग होता है, एवं सर्व्वदा अनुक्त होता है।

शीघ्रं क्रियते पूजा वैष्णवेन, यहाँ शीघ्र पद क्रिया का विशेषण है, कर्मणि वाच्य में प्रयोग होने के कारण कर्त्ता अनुक्त है, अनुक्त कर्त्ता में तृतीया होती है, अर्थात् शीघ्र जिस प्रकार हो सकता है, उस प्रकार करता है। पूर्वोक्त कर्म त्रिविध हैं। ईप्सिततम,

अनीप्सित, एवं ईप्सित, 'वैष्णवो मालां करोति' ईप्सिततम द्विविध, द्वेष एवं अनपेक्ष्य, द्वेष्य का उदाहरण-प्रमादेन पापं करोति विष्णुभक्तः अनपेक्ष्य का उदाहरण-मथुरां गच्छन् देशान् पश्यति। यहाँ मथुरा गमन लक्ष्य, देश समूह का दर्शन आनुषङ्गिक है।

धातु त्रिविध हैं-अकर्म्मक, सकर्मक एवं द्विकर्म्मक, जिसमें अन्तर्भूतण्यर्थ शून्यत्व है, जो अन्य वस्तु साधन में असमर्थ है, वह अकर्म्मक है, जैसे सत्तादि भूप्रभृति। अन्तर्भूतण्यर्थ विशिष्ट अतएव अन्य वस्तु साधन में समर्थ है, वह धातु सकर्मक है, जैसे-उत्पादनादि अर्थ विशिष्ट 'डुकृञ्' धातु, द्विविध अर्थ विशिष्ट धातु द्विकर्मक है। जैसे दुह् प्रभृति एवं नीवह प्रभृति। ये स्वीय अर्थ विशेष के द्वारा उभय कर्म्म की सिद्धि करते हैं। अर्थ द्वय इस प्रकार हैं, आकर्षणादि अर्थ विशेष एवं निष्काषणादि अर्थ विशेष है, उभय कर्म के मध्य में दुग्धादि ईप्सिततम कर्म है, सुतरां मुख्य है, एवं ईप्सिततम के उपयोगि-अर्थात् अनुकूल गां प्रभृति ईप्सित कर्म्म हैं।

अकर्मक धातु में पूर्व कर्त्ता का कर्म्मत्व होता है, णि न होने से वैष्णवो भवति प्रयोग होता है, णि होने से वैष्णवाचार्य्यः, वैष्णवं भावयति प्रयोग होता है। यहाँ णि होने के पहले के कर्त्ता वैष्णव का कर्म्मत्व हुआ।

द्विकर्म्मक में कृष्णो गां दुग्धं दोग्धि, कृष्णो गा वनं गमयति। सकर्मक में मालां करोति वैष्णवः ॥११॥

अभिवादि-दृशोरात्मपदे ॥१२॥

अभिवादयते गर्गं कृष्णं श्रीनन्दः, कृष्णेन वा।

कालाध्वभावदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरैः।

सर्व्वैरकर्म्मकैर्योगे कर्म्मत्वमुपजायते॥

एकादशीमुपवसन्ति। क्रोशत्रयं गोवर्द्धनोऽस्ति। वृन्दावनमार्गं शेते। माथुरान् विराजते कृष्णः।

आत्मपद विषय में अभिण्यन्तवद एवं दृश धातु के प्रयोग में

अणिकर्त्ता की विकल्प में कर्म्म संज्ञा होगी। अभिवादि धातु के अप्राप्ति विषय में, दृश धातु के ज्ञानार्थ हेतु प्राप्ति विषय में विकल्प विधान है, 'अभिवादयते गर्गं कृष्णं श्रीनन्दः कृष्णेन वा एवं दर्शयते स्वकार्य्यं पिता कृष्णं कृष्णेन वा' उदाहरण द्वय में प्रयोज्य कर्त्ता कृष्णपद की विकल्प में कर्म संज्ञा हुई है।

जिसके अन्तर्गत अन्य एक क्रिया अनुभूत होती है, तादृश अकर्मक धातु के योग से काल वाचक, अध्व वाचक, भाव वाचक, एवं देश वाचक शब्द का कर्म्मत्व होता है। अध्व शब्द द्वारा यहाँ उसका परिमाण को लेना होगा। 'मासमास्ते' यहाँ एकमास यावत् उपवेशन कर है। 'एकादशीमुपवसन्ति' यहाँ परिपूर्ण एकादशी में उपवास करते हैं। 'क्रोशत्रयं गोवर्द्धनं अस्ति' गोवर्द्धन गिरि क्रोशत्रय परिमित स्थान में है। 'वृन्दावन मार्गं शेते' यहाँ वृन्दावनमार्ग में शयन कर हैं। माथुरान् विराजते 'कृष्णः' यहाँ मथुरा देश में कृष्ण विराजमान हैं ॥१२॥

कर्त्तृ कर्म्मणोः षष्ठी कृद् योगे ॥१३॥

कृष्णस्य कृतिः, दोग्धा दुग्धस्य गवाम्।

कृत प्रत्यय के योग से अनुक्त कर्म एवं कर्त्ता के स्थान में षष्ठी विभक्ति होती है। भाव वाच्य में क्ति प्रत्यय होता है, उदाहरण- 'कृष्णस्य-कृतिः' 'कृष्ण' कर्त्तृ पद में षष्ठी विभक्ति हुई है। यहाँ अस्ति प्रभृति क्रियान्तर का अनुसन्धान कर लेना चाहिये। द्विकर्म्मक का उदाहरण- 'दोग्धा दुग्धस्य गवाम्' कृत प्रत्यय के योग से द्विकर्म्मक धातु का उदाहरण में मुख्य कर्म्म दुग्ध पद में ही षष्ठी हुई है ।१३॥

कर्त्तृकर्म्मणोः प्राप्तौ कर्त्तरि षष्ठी वा ॥१४॥

गोविन्देन गवां दोहः, गोविन्दस्य वा ।

एक कालीन कर्त्ता, कर्म्म उभय के स्थान में षष्ठी प्राप्ति होने से कर्त्ता में षष्ठी विकल्प में होती है, कर्म में नित्य षष्ठी होगी । भाव वाच्य में घण प्रत्यय होता है । उदाहरण में 'गोविन्द' कर्त्तृ पद में विकल्प में एव कर्म गो शब्द में नित्य षष्ठी हुई है ॥१४॥

कर्त्तृ कर्म्मणो राधारोऽधिकरणम् ॥१५॥

कर्त्ता एवं कर्म का जो आधार है, उसकी अधिकरण संज्ञा होती है ॥१५॥

अधिकरणे सप्तमी ॥१६॥

ललाटे तिलकं करोति कृष्णः । विषये-कृष्णे प्रीणाति ।
व्याप्तौ-विष्णुः एर्व्वत्रास्ति ।

अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है ।

'ललाटे तिलकं करोति कृष्णः' यहाँ कर्म्म तिलक है, वह कृति क्रिया के सहित ललाट को आश्रय कर है, अतः ललाट कृति क्रिया का एवं तिलक का आश्रय होने के कारण सप्तमी विभक्ति हुई है । यह आश्रय का उदाहरण है, विषय का उदाहरण यह है- कृष्णे प्रीणाति, यहाँ कर्त्ता भाव्यः है. प्रीति क्रिया के सहित कृष्ण को विषय कर है. अतः कृष्ण प्रीति क्रिया का एवं लोक का विषय है, अतः सप्तमी हुई है ।

व्याप्ति का उदाहरण-विष्णु सर्वत्रास्ति, अर्थात सर्व्वं व्याप्य अस्ति, विष्णु कर्त्ता है, सब आश्रय हैं, अतः सब विष्णु के आश्रय हैं, विष्णु ने सबको अधिकार किया है । अतः सबका व्याप्तत्व हुआ, सर्व्व शब्द विश्ववाची है ॥१६॥

उपान्वध्याङ्भ्यो वस आधारः कर्म्म ।।१७।।

वृन्दावनमुपवसति हरिः ।

उप, अनु प्रभृति के उत्तर वस धातु का प्रयोग होने पर आधार का कर्म्मत्व होता है । 'उपवसति' वस, निवास अर्थ प्रकाशक है । श्रीवृन्दावन ने उपवसति हरिः, इस प्रयोग में 'श्रीवृन्दावनमुपवसति हरिः' प्रयोग होता है ।।१७।।

अपायादिष्ववधिरपादानम् ।।१८।।

अपादाने पञ्चमी ।।१९।।

मथुराया आगतः कृष्णः, रथादवतीर्णः ।।१९।।

अपायादि में जो अवधि है, वह अपादान कारक है । अपादान में पञ्चमी विष्णु भक्ति होती है । अपाय शब्द का अर्थ है–विश्लेष, अपायनमपायः अपपूर्व इन् गति अर्थक धातु के उत्तर में घण् प्रत्यय से निष्पन्न होता है । यह विश्लेषवाची है । इसकी जो अवधि है, वह अपादान है । उदाहरण–कृष्णो मथुराया आगतः, आगतः, आङ् पूर्व गम धातु के उत्तर में क्त प्रत्यय निष्पन्न है । विश्लेष में आदि मर्य्यादा आदि सीमा, पूर्व देश त्याग पूर्वक आगमनानुकूल व्यापारवान् कृष्णः, रथादवतीर्णः स्थल में अव पूर्वक तॄ प्लवनतरण अर्थ में धातु है । अवतरण क्रिया का रथ अवधि है, अतएव वह विश्लेष की आदि सीमा होने के कारण अपादान कारक हुआ है ।।१९।।

प्रदेयाभिसंबध्यमानं सम्प्रदानम् ।।२०।।

सम्प्रदाने चतुर्थी ।।२१।।

वैष्णवः कृष्णाय सर्व्वस्वं ददाति । प्रदेयत्वं विना, रजकस्य वस्त्रं ददाति । हन्तुः पृष्ठं ददाति ।।२१।।

प्रकृष्ट रूप से देय पदार्थ के द्वारा सम्बन्धान्वित करने से सम्प्रदान कारक होता है, सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विष्णु भक्ति

होती है। उदाहरण—वैष्णव: कृष्णाय सर्व्वस्वं ददाति। आत्यन्तिक देय को प्रदेय कहते हैं, जिससे पुनर्वार लेने का अभिप्राय नहीं रहता है। वैष्णव, कृष्ण को सर्व्वस्य प्रदान करता है। पुनर्वार ग्रहण करने की इच्छा से देना हो तो चतुर्थी नहीं होती है। उदाहरण-रजकस्य वस्त्रं ददाति, रजक के निकट से पुनर्वार ग्रहण करने की इच्छा है, अत: रजक में चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई। इस प्रकार हन्तु: पृष्ठं ददाति, पृष्ठ का देयत्व तो है, किन्तु प्रदेयत्व नहीं है, अत: चतुर्थी नहीं हुई है ॥२१॥

स्पृहेरभीष्टम् ॥२२॥

कृष्णाय स्पृहयति गोपी।

स्पृह धातु के प्रयोग में स्पृह धातु के कर्त्ता की इच्छा के विषयीभूत सम्प्रदान होता है, अर्थात् अभीप्सित विषय में चतुर्थी विभक्ति होती है, उदाहरण—कृष्णाय स्पृहयति गोपी, गोपी कृष्ण को चाहती है, यहाँ कर्म्म कारक का बाधक है ॥२२॥

कर्त्तुरधीनं प्रकृष्टं सहायं करणम् ॥२३॥

अनुक्ते कर्त्तरि करणे च तृतीया ॥२४॥

कृष्णो गा वनात् यमुनातीरं वंशीवाद्येन आह्वयते।
हस्तेनोत्तरीयं भ्रमयति ॥२४॥

कर्त्ता के अधीन कार्य्य साधन में प्रकृष्ट सहाय को करण कहते हैं। अर्थात् इस कारक को करण कारक कहते हैं ॥२३॥

अनुक्त कर्त्ता एवं करण में तृतीया विभक्ति होती है। उदाहरण—कृष्णो गा वनाद् यमुनातीरे वंशीवाद्येन आह्वयते, कृष्ण यमुना तीर में वंशी वाद्य के द्वारा धेनुवृन्द को वन से बुला रहा है। यहाँ कृष्ण का अधीन एवं धेनु बुलाने का एकान्त सहायक वंशी वादन है, अत: वंशी वाद्य शब्द के उत्तर में तृतीया विभक्ति हुई है।

हस्तेनोत्तरीयं भ्रमयति, हस्त से उत्तरीय वसन को घुमा रहा है। कर्त्ता का अधीन एवं प्रकृष्ट सहाय होने के कारण हस्त शब्द के उत्तर तृतीया विभक्ति हुई है ॥२४॥

॥ इति कारकाणि ॥

अथ उपपद-विष्णुभक्तयः

कृष्ण प्रवचनीयैर्योगे द्वितीया ॥२५॥

कृष्णमभिपतति पुष्पवृष्टिः।

उपपद सम्बन्धीय विष्णु भक्ति का वर्णन करते हैं। पदान्तर के सम्बन्ध से जो विष्णुभक्ति की जाती है, उसको उपपद विष्णुभक्ति कहते हैं। कृष्ण प्रवचनीय के योग में द्वितीया विष्णुभक्ति होती है। प्राचीनगण इसको कर्म्म प्रवचनीय कहते हैं। कृष्ण प्रवचनीय में इन सब अव्ययों का प्रयोग होता है।

लक्षण वीप्सेत्थम्भूतेष्वभि भागे परिप्रती।
अनुरेष सहार्थे च हीनेतूपश्च कथ्यते ॥

लक्षण-चिह्न, वीप्सा-युगपत् सजातीयों की व्याप्ति, इत्थम्भुत प्रकार विशेष से प्राप्ति। लक्षण का उदाहरण-कृष्णमभिपतति पुष्पवृष्टिः, वीप्सायाम्-गोपीं गोपीं अभिक्रीडति कृष्णः, इत्थम्भूते-कृष्णमभिभक्तोऽसौ, भक्तत्व प्रकार विशेषं प्राप्त इत्यर्थः, लक्षणादिषु भागे च परिप्रति, तत्र त्रिषु कृष्णं परि इत्यादि पूर्ववत्। एवं प्रति भावे। यत् कृष्णं परिस्यात्, यत् कृष्णं प्रतिस्यात् तत् देहि।

अनुर्भक्षणादि चतुर्षु सहार्थे च। अत्र चतुर्षु कृष्णं अनु, सहार्थे कृष्णमनु गच्छन्ति गोपाः। चकाराद्धेतौ च। हरिभक्तिं अनुसुखं, अनुश्चोपश्च हीने, अन्वर्ज्जुनं योद्धारः, उपार्ज्जुनं ॥२५॥

अभित आदिभिर्योगे द्वितीया ॥२६॥

अभितः कृष्णम्, परितः कृष्णम्, उभयतः कृष्णम्, सर्व्वतः कृष्णम्, समया कृष्णम्, निकषा कृष्णं गोपाः-एतद् द्वयं, निकटार्थे। हा कृष्ण विमुखं, धिक् कंसम्।

अभित प्रभृति शब्द के योग से द्वितीया विष्णुभक्ति होती है। अभितः कृष्णम्, परितः कृष्णम्, सर्व्वतः कृष्णम्, समया कृष्णम्, निकषा कृष्णं गोपाः, हा कृष्ण विमुख, धिक् कंसम् ॥२६॥

सहार्थैरप्रधाने तृतीया ॥२७॥

रामेण सह क्रीड़ति कृष्णः, रामेण सह सुन्दरः।

सह शब्द के समान अर्थ जिसका है, उसके योग से अप्रधान के उत्तर तृतीया विभक्ति होती है। रामेण सह क्रीडति कृष्णः, यहाँ क्रीड़ा का कर्त्ता प्रधान रूप से कृष्ण हैं, राम अप्रधान है, सुनरां राम शब्द के उत्तर तृतीया विष्णुभक्ति हुई है। रामेण सह कृष्णः सुन्दरः, यहाँ गुणि सह भाव है। पूर्व उदाहरण में कर्त्ता सहभाव है ॥२७॥

विशेषलक्षणात्तृतीया ॥२८॥

कौस्तुभेन भगवन्तमद्राक्षीत्।

विशेष प्राप्ति चिह्नादि हैं, इस प्रकार विशेष लक्षण वाचक शब्द के उत्तर में तृतीया विष्णुभक्ति होती है। उदाहरण-कौस्तुभेन भगवन्तमद्राक्षीत। भगवान् का असाधारण चिह्न है, कौस्तुभमणि धारण, उससे ही देवतान्तर से भगवान् पृथक् होते हैं। अतः कौस्तुभ शब्द के उत्तर तृतीया विष्णुभक्ति हुई है ॥२८॥

प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीया ॥२९॥

प्रकृत्या कृष्णः, जात्या गोपालः जनुषा-करुणः, रामेणानुजः।

प्रकृति प्रभृति शब्द प्रयोग होने पर प्रकृति शब्द के उत्तर में तृतीया विष्णुभक्ति होती है। प्रकृत्या कृष्णः स्वभावेन कृष्णः श्यामः, जात्या-गोपालः जनुषा करुणः, जन्मना करुणः करुणान्वितः, रामेण-अनुजः ॥२९॥

यदर्थमन्यत्तस्मात्तचतुर्थी ॥३०॥

हरि प्रीतये हरिं भजति । हरिभक्तिः, सुखाय कल्पते ।
सेवायै गोविन्दं याति ।

जिस कार्य्य के निमित्त प्रवृत्त होता है, उस कार्य्य वाचक शब्द के उत्तर में चतुर्थी विष्णुभक्ति होती है। अर्थात् कार्य्य रूप प्रयोजक के उत्तर में चतुर्थी विष्णुभक्ति होती है । हरि प्रीतये हरिं भजति, हरिभक्तिः सुखाय कल्पते, हरेरभक्तिः दुःखाय कल्पते, सेवायै गोविन्दं याति ॥३०॥

नम आदिभिर्योगे चतुर्थी ॥३१॥

कृष्णाय नमः, तं प्रति नमस्कार इत्यर्थः ।

'नमः' आदि शब्द के योग से चतुर्थी विष्णुभक्ति होती हैं। कृष्णाय नमः, सरामान्त अव्यय नमस् है, अर्थात् कृष्ण के प्रति नमस्कार ॥३१॥

वारणार्थे त्वलं योगे तृतीयैव ॥३२॥

कृष्ण वैमुख्येनालम् ।

निषेध अर्थ प्रकाशक अलं शब्द के प्रयोग होने पर तृतीया ही होती है । कृष्ण वैमुख्येनालम् । तेन कृष्णवैमुख्येन किञ्चित् प्राप्यं न भवतीति तेनालमिति तस्मात् कृष्ण वेमुख्यं दूरेऽस्त्वित्यर्थः । अर्थात् कृष्ण विमुखता से कुछ भी लाभ नहीं है। उससे दूर में रहना ही ठीक है ॥३२॥

चतुर्थी हिताद्यर्थः ॥३३॥

सर्व्वस्मै हिता हरिभक्तिः ।

जिन सबों में हितादि के अर्थ के समान अर्थ है, उन सबों शब्दों के योग से चतुर्थी विष्णुभक्ति होती है। उदाहरण–सर्व्वस्मै हिता हरिभक्तिः हरये बलिः। बलि शब्द का अर्थ उपहार है ॥३३॥

आशिषि चतुर्थी कुशलाद्यैः ॥३४॥

वैष्णवाय कुशलं भूयात ।

आशीर्व्वाद अर्थ सूचित होने पर कुशलादि शब्दों के योग से चतुर्थी विष्णुभक्ति होती है। वैष्णवाय भद्रं शं सुखं वाभूयात्, वैष्णवाय कुशलं भूयात, आयुष्यं भूयात् ॥३४॥

गम्यस्य यवन्तस्य कर्म्मणोऽधिकरणाच्च पञ्चमी ॥३५॥

यप्क्त्वादेशः, ल्यब् लोपे पञ्चमीति पाणिनीयाः । गोवर्द्धनात् प्रेक्षते कृष्णः, तमारुह्य तत्रोपविश्येति वा ।

क्त्वा के स्थान में यप् आदेश होता है। पाणिनी के मत में यह ल्यब् लोप में पञ्चमी है। यह आनन्तर्य्य अर्थ में होता है, यह अर्थ अन्तर्भूत होने पर कर्म एवं अधिकरण में पञ्चमी विष्णुभक्ति होती है, उदाहरण-गोवर्द्धनात् प्रेक्षते कृष्णः, गोवर्द्धन आरुह्य, अथवा गोवर्द्धन उपविश्य प्रेक्षते ॥३५॥

अन्यार्थादिभि र्योगे पञ्चमी ॥३६॥

अन्यः कृष्णात्, भिन्नो रामात् ।

अन्य शब्द के अर्थ के समान अर्थ जिसके हैं, उन सब शब्दों के योग से पञ्चमी विष्णुभक्ति होती है।

उदाहरण-अन्य. कृष्णात्, भिन्नो रामात् ॥३६॥

पृथङ् नानायोगे पञ्चमी तृतीया च, विनायोगे द्वितीया च ॥३७

पृथक कृष्णात्, पृथक् कृष्णेन वा । विना कृष्णात्, कृष्णेन, कृष्ण वा । त्रिष्वपि द्वितीयेति केचित् ।

पृथक् एवं नाना शब्द के योग से पञ्चमी एवं तृतीया विष्णु भक्ति होती है। विना शब्द के योग से पञ्चमी, तृतीया एवं द्वितीया होती है। उदाहरण-पृथक् कृष्णात्, पृथक् कृष्णेन, विना कृष्णात् कृष्णेन, कृष्णं वा, जुमर के मत में तीनों में ही द्वितीया होती है ॥३७॥

हेतौ स्तृतीया ॥३८॥

कृष्णेन सुखम् ।

हेतु रूप में जिस शब्द का प्रयोग होगा, उसमें तृतीया विष्णुभक्ति होती है। विवक्षान्तर रहित फलसिद्धौ योग्यो हेतुः। उदाहरण–कृष्णेन सुखम्, सुख सिद्धौ कृष्णो योग्य इत्यर्थः, एवं श्रद्धया हरिभक्तिः ॥३८॥

निमित्तात् कर्म्मं संयोगे सप्तमी ॥३९॥

सौरभ्ये तुलसीं जिघ्रति, विवक्षातश्च कारकादीनि भवन्ति ।
दर्शितानि च तत्र तत्र । यथा च क्रिया जायते । ओदनः पचति,
सिध्यतीत्यर्थः ।

कर्म्मं के सहित योग होने पर निमित्त के उत्तर सप्तमी विष्णुभक्ति होती है। सौरभ्ये तुलसीं जिघ्रति, तुलसी घ्राणस्य निमित्तं सौरभ्यं, अतस्तस्मात् सप्तमी, निमित्तस्य कर्म्मणा तुलस्या संयोगोऽस्ति। जिघ्रतीति घ्रा गन्धोपादाने।

विवक्षा के अधीन कारक समूह का प्रयोग होता है, अर्थात् वक्ता जिस प्रकार कहना चाहता है, उसको प्रकाश करने के निमित्त तदनुरूप कारक का प्रयोग होता है। इच्छानुसार सकर्म्मक में भी कभी अकर्म्मक प्रयोग होता है। जैसे विवक्षानुसार क्रिया होती है, केवल पच धातु को अवलम्बन कर प्रयोग दिखाते हैं। ओदनः पचति, यहाँ ओदन को कर्त्ता रूप में प्रयोग किया जाता है। ओदनस्य कर्त्तृत्व विवक्षणं पचधातोः सिद्ध्यर्थता, अतोऽत्र क्रियाया अकर्म्मकत्वम्। ओदनं पचति वैष्णवः, अत्र ओदनस्य कर्म्मत्व विवक्षया धातोः समाधानार्थता, अतोऽत्र सकर्म्मकत्वम् ॥३९॥

अच्युताद्यर्थाः स्मेन योगे त्वपरीक्षे चाच्युतः ॥४०॥

भजति स्म कृष्णं परत्वात् ।

उपपद विष्णुभक्ति का अर्थ कथन के पश्चात् अच्युत विधि विधातृ प्रभृति का अर्थं, विस्तार रूप से कहते हैं। स्म शब्द के योग होने पर परोक्षे एवं अपरोक्ष में अनद्यतन भूत में अच्युत का प्रयोग होगा। स्म शब्द भूतकालवाची है, परत्वात्-अच्युत बलवान् होने के कारण अच्युत का ही प्रयोग होगा।

उदाहरण—यजति स्म कृष्णं ॥४०॥

यावत् पुराभ्यामच्युतः, कदाकर्हिभ्याञ्च ॥४१॥

कल्किश्च । यावत् पश्चामि राधाम्, पुरा च ।

पुरा पश्यामि कृष्णम्, यावच्च ।

यावत् शब्द एवं पुरा शब्द के योग से भविष्यत् काल में अच्युत का प्रयोग होगा, कदा एवं कर्हि शब्द के योग से भविष्यत् काल में अच्युत तो होगा ही कल्कि भी होगा।

उदाहरण—यावत् पश्यामि राधाम्, पुरा पश्यामि राधाम्, पुरा पश्यामि कृष्णम्, यावत् पश्यामि कृष्णम् ॥४१॥

इति संक्षेप हरिनामामृत वैष्णव व्याकरणे
चतुर्थं कारकं समाप्तम् ॥४॥



[पञ्चमम्]

अथ कृदन्त प्रकरणम्

।। श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।।

धातुं सर्व्वमुपादाय सर्व्वं रूपं करोति यः ।
कृत् स एवेति विस्मित्य तद्धर्म्मा कृत् प्रशस्यते ।।१।।

धातोः कृद् बहुलं कर्त्तरि ।।१।।

वर्त्तमानादौ शतृशानावच्युताभौ फलान्तर,
प्रयोगे परपदात्मपदयोः ।।२।।

अशावितौ, ततो वैष्णवो भवन् विराजते इत्यादि,
द्वित्वबहुत्वयोरेवम् ।।२।।

तद्धित प्रत्यय, नाम के उत्तर में होता है, नाम कृत् प्रत्यय सिद्ध है, अतः कृत् प्रकरण आरम्भ करने के समय कृत् को विष्णु के समान कहते हैं, एक अनिर्व्वचनीय पुराण पुरुष पृथिवी जल तेजः वायु आकाश रूप धातु समूह को ग्रहण कर स्थावर जङ्गमात्मक समस्त रूपों का निर्म्माण करता है, वही कृत् आश्चर्य्य कर्त्ता है, समस्त धातुओं को लेकर कृत् समस्त नामों का निर्म्माण करता है, अतः कृत् कृदन्त का वर्णन उत्तम रूप में करते हैं। विष्णु धातु समूह को लेकर समस्त रूप करता है, कृत् प्रत्यय भी समस्त धातु को लेकर नाम का निर्माण करता है, इस प्रकार विष्णु धर्मा कृत् प्रत्यय है ।।१।।

धातु के उत्तर में बहुल रूप से कर्त्तरि वाच्य में कृत् प्रत्यय होता है। वर्त्तमानादि काल में धातु के उत्तर में फलान्तर प्रयोग होने पर कर्त्तरि वाच्य में शतृ परपद में शान आत्मपद में बहुल रूप से होते हैं, इसको अच्युताभ कहते हैं। शतृ का ऋ इत होता है, शान का शराम इत् होता है। अनन्तर भू धातु के उत्तर में शतृ प्रत्यय होकर नुम्, सु का हर गोविन्द, ओ अव् के द्वारा भवन् पद सिद्ध होता है, प्रयोग इस प्रकार है-वैष्णवो भवन् विराजते। इस प्रकार द्विवचन में भवन्तौ, बहुवचन में भवन्तः होता है ॥२॥

अतो मुगाने ॥३॥

पचमानं वैष्णवं पश्य।

आन प्रत्यय परे रहने से अ के उत्तर में मुग् होता है उ-क इत् होता है। पचमानं-डुपचष पाके, भुवादि रुभयपदी। उदाहरण-पचमानं वैष्णवं पश्य ॥३॥

आत्मपद स्थानीय त्वाद्बाहुल्याच्च शानकानौ भावकर्म्मणोश्च, भावकृद्ब्रह्माण, उपेन्द्रात् कृन्नस्य सर्व्वेश्वरात् परस्य णत्वं, भा-भू-पुना-कमि-गमि-प्यायि-वेप-वर्ज्जम् ॥४॥

वैष्णवेन प्रगीयमाणं वर्त्तते।

शान कान प्रत्यय भाव कर्म्म में होते हैं। शान कान आत्मपद स्थानीय होने पर भी यह बहुल है, परिभाषाक्रान्त से भावकृत् ब्रह्म का ब्रह्मलिङ्ग होता है, उपेन्द्र के उत्तर कृत् प्रत्यय सम्बन्धी नराम का णत्व होता है। भा, दीप्तौ, भू सत्तायां, पूञ् पवने, कमु कान्तौ, गमलृ गतौ, ओप्यायि वृद्धौ, टु वेपृ चलने, इन सबको छोड़कर उपेन्द्र के उत्तर सर्व्वेश्वर के पश्चात् स्थित कृदन्त के न का णत्व विकल्प में होता है। उदाहरण-वैष्णवेन प्रगीयमाणं वर्त्तते ॥४॥

आसः शानस्य ईनः ॥५॥

आसीनः ।

आस उपवेशन अर्थ में, धातु है। इसके उत्तर विहित शान के स्थान में ईन होता है। उदाहरण—आसीनः ॥५॥

वेत्तेः शतुर्व्वसु र्व्वा ॥६॥

विदन्, विद्वान् कृष्णम् ।

विद ज्ञाने, इसके उत्तर में विहित शतृ प्रत्यय के स्थान में वसु प्रत्यय विकल्प में हागा। उदाहरण—विदन्, विद्वान् कृष्णम् ॥६॥

इङ् धारिभ्यां शत्रकृच्छ्रकर्त्तरि ॥७॥

अधीयन् श्रीभागवतम्, धारयन् वेदान्। कृच्छ्रत्वे तु कष्टेनाधीयानः ।

कृच्छ्र शब्द का अर्थ है कष्ट, कष्ट रहित कर्त्तृ वाच्य में इङ् धारि धातु के उत्तर में शतृ प्रत्यय होता है।

अधीयन्—इङ् अध्ययने—धातु, इकिङौ नित्यमधिपूर्व्वौ, शतृ-शप् का महाहर हाता है। धारयन्-धृङ् धारणे, णिः, उसके उत्तर में शतृ प्रत्यय हुआ है ॥७॥

जीर्य्यतेरतृ भूते च ॥८॥

जरन्, जरन्तौ ।

भूते-अर्थात् भूतकाल में चकार से वर्त्तमान काल में भी जीर्य्यति के उत्तर में अतृ प्रत्यय होगा।

जरन्-जॄ-वयोहानौ, दिवादि धातु है, प्रवर स्थविर, वृद्ध, जीर्ण जरन्-पर्य्याय शब्द है। शतृ प्रत्यय होने पर जरन् निष्पन्न होता है। द्विवचन में जरन्तौ पद होता है ॥८॥

परोक्षातीते क्वसु-कि-काना अधोक्षजाभ संज्ञा:, परपदात्मपदयो: ॥९॥

उकावितौ, अधोक्षजाभत्वाद् द्विर्व्वचनादि, एष भेजिवान् कृष्णं भाजयाञ्चकृवान् ।

परोक्षतीत काल में परपद आत्मपद में क्वसु-कि-कान प्रत्यय होते हैं, इन सबों का नाम अधोक्षजाभ है । क्वसु की परपद स्थानीय है, कान-आत्मपद स्थानीय है। उ, क, इत् होते हैं, अधोक्षजाभ होने के कारण द्विर्व्वचनादि होते हैं ।

उदाहरण–एष भेजिवान् कृष्णम्, भाजयाञ्चकृवान् ।

अथ कान:, चक्राण: रासं कृष्ण: । कर्म्मणि कृष्णेन चक्राणो रास:, भावे-कृष्णेन-चक्राणम्, जजागराणम् ।

कान प्रत्यय का उदाहरण–चक्राण: रासं कृष्ण:, चक्राण, डुकृञ् करणे, कर्त्तरि कानः द्विर्व्वचनं, नर ऋरामस्याराम:, कवर्ग नरस्य चवर्ग: । कर्म्मणि वाच्य में कृष्णेन चक्राणो रास: ।

भाव वाच्य का उदाहरण–कृष्णेन चक्राणम्, जजागराणम्, 'जागर्त्तेर्गोविन्द:' सूत्र से गोविन्द: ॥९॥

अनूचान: कर्त्तरि ॥१०॥

अनुवचोनिपात: ।

अनूचान इति वच परिभाषणे परपदिनोऽपि निपातात् कान:, अनुचानः प्रवचने साङ्गेऽधीति गुरोस्तु यः प्रवचने वेदे ॥१०॥

क्तवतुर्भूते ॥११॥

उकावितौ क्रीड़ितवान् कृष्ण:, कृतवान् क्रीड़ाम् ।

भूतकाल में धातु के उत्तर में क्तवतु प्रत्यय होता है। उदाहरण–क्रीड़ितवान्, इटो रामधातुके, चतुर्भुजानुबन्धत्वान्नुम्, अत्वसन्तोद्धवस्य त्रिविक्रम:, कृतवान् क्रीड़ाम् ॥११॥

क्तो भूते भाव कर्म्मणोः ॥१२॥

स्नातं कृष्णेन, स्तुतो विष्णु र्वैष्णवैः ।

भूतकाल में धातु के उत्तर में भाव एवं कर्म्मणि वाच्य में क्त होता है । उदाहरण–स्नातं-स्ना शौचे, भावे क्तः, भावकृद् ब्रह्मणीति ब्रह्मत्वम्, 'स्तुतः' ष्टुञ् स्तुतौ, कर्म्मणि क्तः ॥१२॥

अतीतादौ क्त-क्तवतु विष्णुनिष्ठा संज्ञौ ॥१३॥

क्तः कर्त्तरि च वाच्यः ॥१४॥

क्षीणायुर्भवः, क्षितायुर्वा ।

अतीतादि काल में विहित क्त-क्तवतु प्रत्यय का नाम विष्णु निष्ठा है । यह संज्ञा सूत्र है, अतीतादौ कहने से वक्ष्यमाण वर्त्तमान में विहित क्त का भी विष्णु निष्ठत्व है ॥१३॥

कर्त्तरि वाच्य में क्त भी होता है । क्षीणायुर्भवः, 'गत्यर्था कर्म्मक शिलष स्था वस जन रुह जीर्य्यतिभ्यः क्तः कर्त्तरि' सूत्र से क्त हुआ । क्षीणायुर्भव, यहाँ आक्रोश है, क्षीणोऽयं वैष्णवः, यहाँ दैन्य है ॥१४॥

र-दाभ्यां विष्णु निष्ठा-तस्य पूर्वदस्य च नो दां विना, नुद-विनत्ति-त्रा-घ्रा-ह्री-उन्दीभ्यो वा । शॄ-शीर्णः, भिन्नः, नुन्नः, नुत्तः, विन्नः, वित्तः, त्राणः, त्रातः, घ्राणः, घ्रातः, ह्रीणः, ह्रीतः ॥१५॥

र एवं द के उत्तर में विष्णु निष्ठ त के स्थान में एवं पूर्व द के स्थान में न होता है। किन्तु दा के स्थान में नहीं होता है । दा वर्ज्जन का फल आगे कहेंगे । नुद प्रेरणे, विद विचारे, त्रैङ् पालने, घ्रा गन्धोपादाने, ह्री लज्जायाम्, उन्दी क्लेदने, इन सब धातु के उत्तर में विष्णु निष्ठा त के स्थान में नराम विकल्प में होता है । पूर्व दराम के स्थान में नराम भी विकल्प में होता है ॥१५॥

शुषो विष्णुनिष्ठा-तस्य कः, पचो वः, क्षायो मः ॥१६॥

शुष्कः, पक्कः, क्षै क्षये-क्षामः ।

शुष-शेषणे, इसके उत्तर में विष्णु निष्ठा त के स्थान में 'क' होगा। पच-डुपचष् पाके, इसके उत्तर में विष्णु निष्ठा त के स्थान में 'व' होगा, क्षायः, क्षै धातु के उत्तर में विष्णु निष्ठा त के स्थान में 'म' होगा। सह जानिट होने के कारण 'शुष्क' इट् नहीं हुआ, क्षामः कृशः ॥१६॥

गत्यर्थाकर्म्मक-श्लिष-शीङ्-स्थास-वस-जन-रुह
जोर्य्यतिभ्यः क्तः कर्त्तरि च ॥१७॥

मथुरां गतः, प्राप्तः, यमुनायां स्नातोऽसौ । गोपीमाश्लिष्टः कृष्णः
गोवर्द्धनमधिशयितः, वृन्दावनमधिष्ठितः, गा उपासितः ।

गत्यर्थक धातु के उत्तर में अकर्म्मक धातु के उत्तर में श्लिषादि धातु के उत्तर में कर्त्तरि वाच्य में क्त होगा, 'कर्त्तरि च' शब्द से भाव कर्म्मणि एवं कर्त्तरि में क्त होगा।

गतः गमलृ धातु के उत्तर में क्तः, 'सहजानिट् हरिवेणु हरः' प्राप्तः आपलृ व्याप्तौ, सहजानिट्, स्नातः, स्ना शौचे, अकर्म्मकः, अश्लिष्टः, श्लिष् आलिङ्गने, सहजानिट् अधिशयितः, शीङ् स्वप्ने, अधिशीङ् स्थासामाधारः कर्म्म, गोवर्द्धनस्य कर्म्मत्वम्, अधिष्ठितः, ष्ठा गति निवृत्तौ। उपासितः, उपपूर्व आसधातुः सेवार्थः ॥१७॥

क्वचिदन्यत्रापि ॥१८॥

यथा-भुक्ताः, पीताः, विभक्ताः, वैष्णवाः, व्यसिताः, प्रतिपन्नाः,
आश्रिताः, इत्यादयः, पक्षे मथुरागतः, इत्यादि ।

पूर्व्व सूत्रोक्त धातु व्यतीत अन्य धातु के उत्तर भी क्त कर्त्तरि में होगा। भुक्ताः, भुज पालनाभ्यवहारयोः सहजानिट्, पीताः,

पा पाने ईत्वम्, विभक्ताः भज सेवायां सहजानिट् व्यवसिताः, सोऽन्त कर्म्मणि, द्यति स्यतीत्यादिना आरामस्येरामः। प्रतिपन्नाः पदगतौ सहजानिट्, आश्रिताः श्रिञ् सेवायाम्, पक्षे कर्म्मणि भावे चेत्यर्थः ॥१८॥

अकर्म्मक-गति-भोजनार्थेभ्यः क्तोऽधिकरणे च ॥१९॥

कृष्णस्यासितं, गत भुक्तं वृन्दावनम्।

अकर्म्मक के उत्तर, गत्यर्थ धातु के उत्तर, भोजनार्थ धातु के उत्तर अधिकरण वाच्ये क्त होगा। आसितं, गतं, भुक्तं, आस्यते, गम्यते, भुज्यते यत्रेति अधिकरणं वृन्दावनभुत्तम्। कृष्णस्य यहाँ अधिकरण वाचि 'क्त' के योग से कर्त्तरि कर्म्मणि वाच्ये षष्ठी; कर्त्तरि षष्ठी ॥१९॥

अलं-खल्वोः प्रतिषेधार्थयोर्योगे क्त्वा वा भावे ॥२०॥

क्त्वा मान्तश्च कृदव्ययम्। अलं कृत्वा, खलु कृत्वा।
सकर्म्मकाद्धातोः खलूक्त्वा खलु वाचिकमिति। अवैष्णव गृहे
भुक्त्वा वैष्णवेन, खलु भुक्त्वा वा पक्षे तस्य दानेनालं दानेन
खल्वित्यादि।

प्रतिषेधार्थ अलं एवं खलु शब्द के योग से भाव वाच्य में क्त्वा प्रत्यय विकल्प में होता है, क्त्वा का क इत् होता है। क्त्वा, मान्त कृदन्त प्रत्यय अव्यय होते हैं। ये भाव वाच्य में होते हैं। अलंकृत्वा, खलु कृत्वा, डुकृञ् करणे धातु सकर्म्मक धातु के उत्तर में भाव वाच्य में प्रत्यय करने के पश्चात् यदि कर्म की अपेक्षा होती है तो सकर्मक धातु का कर्म्म सम्बन्ध होगा। हि शब्द वाक्यालंकार में अतः खलूक्त्वा खलु वाचिकमिति, अवाचिकं नवक्तव्यमित्यर्थः। सन्देशवाग् वाचिकं स्यादित्यमरः। उदाहरण— अवैष्णव गृहे अलंभुक्त्वा वैष्णवेन, खलु भुक्त्वा वा, पक्षे-तस्य दानेनालं, दानेन खलु ॥२०॥

एक कर्त्तृकयोः क्रिययोः पूर्व्वकालस्थ धातोः क्त्वा ॥२१॥

कृष्णं नत्वा स्तौति वैष्णवः।

एक कर्त्ता में उभय क्रिया का प्रयोग होने पर पूर्व्व कालस्थ धातु के उत्तर में क्त्वा प्रत्यय होगा। उदाहरण—कृष्णं नत्वा स्तौति वैष्णवः, हरिवेणु का हर हुआ, नम धातु प्रणाम एवं शब्द अर्थ में प्रयुक्त होता है, सहजानिट् है, नमन के अनन्तर स्तवन होने के कारण पूर्वकालस्थ नमन क्रिया के उत्तर में क्त्वा प्रत्यय हुआ ॥२१॥

क्त्वो यवनञ् पूर्व्व समासे ॥२२॥

'ल्यप्' इति पाणिनिः। अन्तर्भिन्नपदत्वेऽप्येक नामत्वेन योजनं समासः।

समास होने पर अनञ् पूर्व धातु के उत्तर क्त्व के स्थान में यद् होता है। पाणिनि इसको 'ल्यप्' कहते हैं। समास का लक्षण कहते हैं, अन्त मध्य में भिन्न-भिन्न पद होने पर भी एक नाम रूप में योजन करना समास है ॥२२॥

उपेन्द्रोर्य्यादि-व्यन्ताजन्त-पूर्व्वपदादि कृदन्तेन समस्यन्ते ॥२३

उपेन्द्रश्च उर्य्यादिश्च व्यन्तश्च आजन्तश्च पूर्वपदञ्च तानि कृदन्तेन सहे समस्यन्ते। पूर्वपदन्तु अमन्तमेव अव्यय कृदन्तेन समस्यन्ते। नियमोऽयम्, उदाहरण—प्रभवन्, पराभवन्, प्रकुर्व्वाणः, प्रभेजिवान्, प्रचक्राणः, प्रक्रीड़ितवान्, संस्तुतः उरी कुर्व्वन्। अन्तरङ्ग स्वादेर्महाहरः ॥२३॥

वामनात्तुक् पृथो ॥२४॥

उकावितो, उपेन्द्रे-प्रकृत्य, पराभूय उर्य्यादि गणः। उरीकृत्य, उररीकृत्य, उरी, उररी चाङ्गीकार विस्तारयोः, एवं पुरस्कृत्य, सत्कृत्य, असत् कृत्य, आदरानादरयोः। अलंकृत्य, निषेधार्थे-अलं

भुक्त्वा, जीविकाकृत्य; अदः कृत्य एवं श्रीकृष्णस्य पदे कृत्य मनः शेते। अथ च्याचौ तद्धितौ-अवैष्णवं वैष्णवं कृत्वेत्यर्थे विः, वे हरः,

पूर्व्वारामस्य ईरामः वैष्णवीकृत्य, आच्-सत्याकृत्य।

पित् पृथुः, पृथु परे रहने से वामन के उत्तर में तुक् होता है, तुक् का उ एवं कराम इत् होता है। उपेन्द्र का उदाहरण-प्रकृत्य, पराभूय, उरीकृत्य, उररीकृत्य, डु कृञ् करणे, उरी उररी का अर्थ अङ्गीकार एवं विस्तार है। इस प्रकार पुरस्-कृत्य, सत् कृत्य, असत् कृत्य, सत् कृत्य का अर्थ आदर, असत् कृत्य का अर्थ अनादर। अलंकृत्य, निषेध अर्थ में अलंभुक्त्वा, जीविकाकृत्य-जीविकामिव कृत्वेत्यर्थः। अदः कृत्य गच्छति। इस प्रकार श्रीकृष्णस्य पदे कृत्य मनः शेते, मनः पदे कृत्वेत्यर्थः ।।२४।।

मिलित्वादेशः परवत्तुकि ।।२५।।

अधीत्य, प्रेत्य।

तुक् परे रहने से मिलकर आदेश पर वत् होता है। अधीत्य इङ् अध्ययने, मिलित्वादेश ईराम का रराम होने के कारण तुक् होता है। प्रेत्य, इन् गतौ, मिलित्वादेशस्य एरामस्य इराम वत्त्वात् तुक् ।।२५।।

हरिवेणु हरविधि र्व्वा यपि नान्तवर्ज्जम् ।।२६।।

आगत्य, आगम्य, प्रणत्य, प्रणम्य। नान्तानान्तु नित्यमेव-प्रहत्य, वितत्य, संमत्य।

यप् प्रत्यय परे रहने से नान्त धातु व्यतीत अन्य धातुओं के पक्ष में हरिवेणु हर विधि विकल्प में होगी। आगत्य, आगम्य, गम्लृ गतौ धातु, नित्य हरिवेणु हर प्राप्ति में विकल्प में विधान हुआ। प्रणत्य, प्रणम्य, नम प्रह्वत्वे शब्दे च। प्रहत्य वितत्य संमत्येति हन् हिंसागत्योः, तनु विस्तारे, मनु ज्ञाने सर्व्वत्र नराम हर स्तुक् च ।।२६।।

दामोदरादेरीरामो न यपि क्विपि च ।।२७।।

विधाय, निपाय, 'निपीय' इति पीङो रूपम् । 'मीनाति-मिनोति' इत्यादि प्रमाय, निमाय । 'दामोदरादेः' किम् ?
विलाय, विलीय, निलीय ।

यप् एवं क्विप् परे रहने से दामोदरादि के अन्त्य वर्ण के स्थान में ईराम नहीं होगा । विधाय, डुधाञ् धारण पोषणयोः । निपाय-पा पाने । पीङ् पाने दिवादि । निपीय । 'मिनाति मिनोति' सूत्र से आरामान्त होता है । प्रमाय-मीङ् हिंसायाम् । निमायेति डुमिञ् प्रक्षेपणे, विलायेति-लीङ् श्लेषणे, वीयति लीनात्योर्वेति आरामान्त पाठः पक्षे विलीयेति ।।२७।।

क्त्वार्थे णमुश्चाभीक्ष्ण्ये ।।२८।।

आभीक्ष्ण्यं पौनः पुन्यम् ।

आभीक्ष्ण्य विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोरुत्तरे क्त्वार्थे णमुश्च भवति । आभीक्ष्ण्य लक्षण माह आभीक्ष्ण्यं पौनः पुन्यम आभीक्ष्ण्य अर्थ में क्त्वा अर्थ में णमु प्रत्यय होता है । आभीक्ष्ण्य शब्द का अर्थ है- पौणपुन्य ।।२८।।

आभीक्ष्ण्ये वीप्सादिषु च द्वित्वं वाच्यम् ।।२९।।

स्मारं स्मारं कृष्णं नमति । 'लभेर्नुम्' इत्यादि- लम्भं, लम्भं, लाभं, लाभम्, भोजं, भोजं, पायं, पायम् । पक्षे स्मृत्वा स्मृत्वा, भुक्त्वा, भुक्त्वा, पीत्वा, पीत्वा, इत्यादि ।

आभीक्ष्ण्य एवं वीप्सा में द्वित्व होता है । स्मारं स्मारम्, स्मृचिन्तायां, अन्तस्य वृष्णीन्द्रः नृसिंहः इति वृष्णीन्द्रः । लभेर्नुम् णम्विणो र्व्वा सोपेन्द्रस्य तु नित्यमिति सूत्रम् । लम्भं लम्भम्, डुलभष प्राप्तोनुम् नुमा भाव पक्षे-लाभं लाभम् । भोजं भोजमिति- भुज पालनाभ्यवहारयोः । पायं पायमिति पा पाने, आतो युगिणि नृसिंह कृति च । पक्षे- स्मृत्वा स्मृत्वा, भुक्त्वा भुक्त्वा, पीत्वा पीत्वा ।।२९।।

अग्रे-प्रथमं-पूर्व्वं-सु क्त्वा-णमु ॥३०॥

कृष्णम् अग्रे नत्वा, अग्रे नामं वा व्रजति । एवं प्रथमं, पूर्व्वम् ।

अग्रे पूर्व्वं प्रथमं पूर्व्वं सु पूर्व्व पद में होने से धातु के उत्तर में क्त्वा अर्थ में क्त्वाणमु होते हैं । अग्रे नत्वा, अग्रे नामं, एवं पूर्व्वं प्रथमम् । उदाहरण—पूर्व्वं जप्त्वा पूर्व्वं नामं वा व्रजति, प्रथमं नामं वा व्रजति ॥३०॥

कर्म्मणि डुकृञः खमुण्णाक्रोशे ॥३१॥

ख-उ-णा-इतः, अम् शेषः ।

कर्म पूर्व पद में होने पर आक्रोश अर्थ में डुकृञ् धातु के उत्तर में खमुण प्रत्यय होता है, ख उ ण इत् होकर अम् रहता है ॥३१॥

सर्व्वेश्वरान्त-पूर्व्वपदस्यानव्ययस्य मुम् वामनश्च खिति॥३२

उमावितौ, मशेषः । अवैष्णवङ्कारमाक्रोशति ।

ख इत् प्रत्यय परे रहने से अनव्यय सर्व्वेश्वरान्त पूर्व्वपद का मुम होता है, वामन भी होता है । उ एवं म इत् होता है, मराम अवशेष रहता है । उपेन्द्रोर्य्यादीत्यादिना समासः । अवैष्णवङ्कार-माक्रोशति । अन्तस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे इति वृष्णीन्द्रः । अर्थात् अवैष्णव कहकर आक्रोश प्रकट करता है ॥३२॥

णमुः ॥३३॥

विभुश्चायम् ।

अन्यथैवं-कथमित्थंसु डुकृञस्तत्तन्मात्रार्थे ॥३४॥

हरिमन्यथाकारमर्च्चयति कृञोऽर्थे तु विधिमन्यथा कृत्वा हरिमर्च्चयति ।

'णमु' प्रत्यय है, यह विभु नामक अधिकार है ॥३३॥

अन्यथा एवं कथं, इत्थं, पूर्व पद में रहने से तत्तन्मात्र अर्थ

में विद्यमान डु कृञ् धातु के उत्तर में णमु होता है । उदाहरण-हरिमन्यथाकारमर्च्चयति । कृञ के अर्थ में णमु नहीं होगा ।

उदाहरण–विधिमन्यथा कृत्वा हरिमर्च्चयति शास्त्रोक्त क्रम को यहाँ विधि कहते हैं ॥३४॥

कर्म्मणि ॥३५॥

प्रभुरयम् ।

कर्म पूर्वपद में होने से कृदन्त प्रत्यय का विवरण । यह प्रभु अधिकार है ॥३५॥

दृशि-विदिभ्यां साकल्ये ॥३६॥

वैष्णव दर्शं प्रणमति, वैष्णव वेदं भोजयति ।

कर्म्म पूर्व्व पद में रहने से साकल्य अर्थ सूचित होने पर दृश् एवं विद् धातु के उत्तर में नमु होता है । 'वैष्णव दर्शं' यहाँ पूर्व्व पदन्त्वमन्तमित्यादिना समासः । वैष्णव दर्शं प्रणमति, वैष्णव वेदं भोजयति, यावतो वैष्णवान् पश्यति वेत्ति विन्दति विन्ते वा तावत इति सर्व्वानेवेत्यर्थः ॥३६॥

यावति विद्लृ-जीवाभ्याम् ॥३७॥

यावद्वेदं भुङ्क्ते, यावज्जीवं हरिं भजति ।

कर्म्म यावत् पूर्व्वपद में होने से विद् लृ लाभे, जीव प्राण धारणे इन दोनों के उत्तर में णमु होता है । यावज्जीवं, यहाँ यावच्छब्द कालवाचि है, कालाध्वभावदेशानामित्यादिना कर्म्मत्वम् ॥३७॥

करणे ॥३८॥

प्रभुरयम् ।

कर्म्म पूर्वपद में रहने से णमु होगा ॥३८॥

हनः ॥३९॥

चक्रेण हन्ति, चक्रघातं हन्ति ।

करण पूर्व्व पद में होने पर हन धातु के उत्तर में णमु होता है। उदाहरण—चक्रेण हन्ति, अर्थ कहते हैं, चक्रघातं हन्ति ॥३९॥

कर्म्म कर्त्रु पमाने ॥४०॥

रत्नमिव निहितः—रत्न निधायं निहितः कृष्णः। अज इव नष्टः—
अजनाशं नष्टः कंसः।

जिसके साथ उपमा दो जाती है, उसको उपमान कहते हैं, कर्म्मोपमान एवं कर्त्ता उपमान पूर्वपद में होने पर धातु के उत्तर में णमु होता है। रत्नमिव निहितः, रत्ननिधायं निहितः, डु धाञ् धारणपोषणयोः, आतोयुक् इणि नृसिंह कृति च, इससे युक् हुआ। रत्नशब्दोऽत्र कर्म्मणः कृष्णस्य उपमानं, अज इवनष्टः यह अर्थ है, अजनाशं नष्टः का, अज शब्द, कर्त्ता कंस का उपमान है। अजश्छागः ॥४०॥

क्त्वा णमुः ॥४१॥

प्रभुरयम् ।

क्त्वा एवं णमु प्रत्यय होने का यह प्रकरण है, इसका नाम प्रभु अधिकार है ॥४१॥

अव्यये करोतेरयुक्ताख्यायां, तिर्य्यंचि क्रिया समाप्तौ ॥४२॥

व्रजेश्वर ! 'पुत्रस्ते जातः' इति नीचैः कृत्वाचष्टे, नीचैः कृत्य,
नीचैः कारम्वा उच्चै राख्यानमिह युक्तम्। अत्र क्त्वा पक्षौ
च ज्ञेयौ। नीचैरिहाख्यानं युक्तम्। प्रियत्वेऽप्ययुक्तं दृश्यते,
यथा- 'कृष्ण' ! काचित्त्वय्यनुरक्तास्ति' इत्युच्चैः
कारमाचष्टे, उच्चैः कृत्वा, उच्चैकृत्य वा ।

अयुक्त कथन होने पर अव्यय पूर्व पद में रहने से कृ धातु के उत्तर में क्त्वा एवं णमु प्रत्यय होते हैं । क्त्वा एवं णमु अन्त का विकल्प में समास भी होता है। अनुचित आख्यान को अयुक्ताख्यान कहते हैं। क्रिया समाप्ति सूचित होने पर चिर्य्यच् पूर्व्व पद में रहने से कृ धातु के उत्तर में क्त्वा-णमु होते हैं। क्त्वा अन्त का एवं णमु अन्त का विकल्प में समास होता है ।

व्रजेश्वर यह सम्बोधन पद है, व्रजेश्वर नन्द हैं, ब्रवीति अर्थ में आचष्टे प्रयोग है । क्त्वान्त का समास पक्ष में नीचैः कृत्य, असमास पक्षे में नीचैः कृत्व, णमु अन्त का समास, असमास पक्ष में नीचैः कारम् होता है। नीचैः शब्द अव्यय है। पुत्र होने का संवाद उच्चैः स्वर से कहना युक्त है, अर्थात् उचित है। क्त्वा पक्ष को भी जानना होगा। उच्चैः कृत्य उच्चैः कृत्वा। उच्चैः शब्द अव्यय है। नोच स्वर से कहना यहाँ उचित है, कारण-प्रियता को उच्चैःस्वर से नहीं कहना चाहिये। किन्तु कहा गया, 'कृष्ण ! काचित् गोपी त्वयि अनुरक्तास्ति' 'तिर्य्यक् कृत्यगतः' इति समाप्य गतः इत्यर्थः, आदि पद से तिर्य्यक् कृत्वा, तिर्य्यक् कारम् का जानना होगा ॥४२॥

तुमुणकौ तत् क्रियार्थत्वे ॥४३॥

उणावितौ द्रष्टुं सेवितुं हरिं व्रजति, दर्शकः सेवको व्रजति ।

धात्वर्थ को क्रिया कहते हैं, उ एवं ण इत् होता है, जिस धातु का अर्थ प्रयोजन है, उस धातु के उत्तर में तुमु एवं णक् प्रत्यय होते हैं। उदाहरण-द्रष्टुं सेवितुं हरिं व्रजति, दर्शनार्थं सेवनार्थं, इत्यर्थः, दर्शकः सेवको व्रजति ॥४३॥

इच्छार्थे शक्यादौ कालादौ च योज्ये तुमुरेव ॥४४॥

द्रष्टुमिच्छति, वष्टि, वाञ्छति वा ।

इच्छार्थ धातु, शक्यादि धातु एवं कालादि शब्द के सहित योग होने पर धातु के उत्तर में तुमु ही होता है ।

उदाहरण-द्रष्टुमिच्छति, वष्टि, वाञ्छति ॥४४॥

कर्म्मण्यण् तुमर्थे ॥४५॥

कृष्णसेवो याति, कृष्णगायो याति ।

कर्म्म पूर्व्वपद में होने से तुमु अर्थ में अण् होता है । उदाहरण-कृष्णसेवो याति कृष्णं सेवितुमित्यर्थः, कृष्णगायो याति, कृष्णं गातुमित्यर्थः बाहुल्यात् कृष्णं सेवितुमित्यादि ॥४५॥

प्रादि व्यवहितेऽपि कृच्छ्रार्थ-दुरि खल् भाव कर्म्मणोः ॥४६॥

नुम्-दुष्प्रलम्भं दुर्ल्लभं भवता, दुष्प्रलम्भः, दुर्ल्लभः कृष्णो भवता इत्यादि ।

प्रादि व्यवहित होने पर भी कृच्छ्रार्थ में दुर् पूर्व्वपद में होने से भाव कर्म्मणि वाच्य में धातु के उत्तर में खल् होता है। कृच्छ्र शब्द का अर्थ है कष्ट, दुष्प्रलम्भ दुर्ल्लभ इति कर्म्मणि कृच्छ्रेण लभ्यत इत्यर्थः ॥४६॥

आरामादनः खलर्थे, नतु खल् ॥४७॥

दुर्य्याणं हरिपदं भवता ।

आरामान्ता धातु के उत्तर में खल् अर्थ में अन होता है, खल् नहीं होगा । दुर्य्याणं हरिपदं भवता कृच्छ्रेण यायते । हरिपदं गोलोकादि ॥४७॥

विध्याद्यर्थे तव्यानीय-यत्-क्यप्-ण्यत्-केलिमा विष्णु कृत्य-संज्ञा भावकर्म्मणोः ॥४८॥

एधितव्यम्, एधनीयं वैष्णवेन, भक्तव्यो, भजनीयस्त्वया कृष्णः ।

भाव कर्म्मणि वाच्य में विधि प्रभृति अर्थ में तव्य अनीय प्रभृति प्रत्यय होते हैं, इसका नाम विष्णु कृत्य, अपर के मत में कृत्य संज्ञा एधितव्यम्-एध-वृद्धौ, भक्तव्य इति-भज सेवायाम् ॥४८॥

सर्व्वेश्वरान्त धातोर्यत् ॥४६॥

चेया भक्ति स्त्वया हरेः।

भाव कर्म्मणि वाच्य में सर्व्वेश्वरान्त धातु के उत्तर में यत् होगा। चिञ् चयने धातु, चेया, भक्तिस्त्वया हरेः ॥४६॥

आ ए यति ॥५०॥

देयम्, गेयम्, यत् परे रहने से आराम के स्थान में एराम होता है। देयम्-डु दाञ् दाने, 'सर्व्वेश्वरान्त धातोर्यत्' इससे यत् हुआ है। गै शब्दे-गेयम् ॥५०॥

शकादिभ्यश्च यत् ॥५१॥

शक्यं, यज्यं, शस्यं, यत्यं, सत्यम्, बध्यं, जप्यं, कोप्यम्।
आलम्भ्यः पशुः, उपलम्भ्यो हरिः।
वृञ् वरणे, क्यप् वक्ष्यते-वृत्या कन्या। वृङ् संभक्तौ,
ण्यद्वक्ष्यते—वार्य्याः ऋत्विजः।

भाव कर्म्मणि वाच्य में शकादि के उत्तर में यद् होता है। 'ऋद्वय विष्णु जनाभ्यां ण्यत्' अग्रिम सूत्र का यह सूत्र बाधक है। शकॢ शक्तौ, शक्यम्, यज्यं-यज देवपूजादौ, शस्यं, शसु हिंसायां, यत्यं-यती प्रयत्ने, सह्य-सहमर्षणे। यत् परे रहने से आङ् के उत्तर में लभ धातु के उत्तर में नुम् होता है। आलम्भ्यः पशुः, उपलम्भ्यो हरिः, स्तुतिश्च गम्यते स्तुताविति किम्? उपलभ्यं पुष्पम्।

वृञ् वरणे-वामनात् तुक् पृथौ, वृत्या कन्या, कन्या प्रतिबन्धं विना स्वीकार्य्या न भवतीति न यत्। वृङ् सम्भक्तौ ण्यद् कहेंगे। वार्य्याःऋत्विजः ॥५१॥

आचर्य्यमगुरो ॥५२॥

गुरौ तु आचार्य्यः ॥५२॥

अगुरु वाच्य में आचर्य्यं शब्द होता है। आचार्य्यं शब्द चर गतौ धातु से निष्पन्न है। गुरु में किन्तु आचार्य्यः शब्द ण्यत् प्रत्यय सिद्ध है। मन्त्रव्याख्या कृदाचार्य्यं इत्यमरः ॥५२॥

अनुपेन्द्रे वदो यत्-क्यपौ, भुवः क्यप् भावे, हनस्तश्च ॥५३॥

कृष्णेनोद्यन्ते-कृष्णवद्या गीताः कृष्णोद्याः। पाहुल्यात् कर्त्तरि च 'सत्यवद्यो रघुत्तमः'।

उपेन्द्र व्यतीत भाव कर्म्मणि वाच्य में पूर्व्वपद में वद धातु के उत्तर में यत् क्यप् होते हैं। अनुपेन्द्र पूर्व्वपद में रहने से भाव वाच्य में भू धातु के उत्तर में क्यप् होगा, अनुपेन्द्र पूर्वपद में होने से भाव वाच्य में हन धातु के उत्तर में क्यप् होता है, बाहुल्य हेतु कर्त्तृ वाच्य में भी होगा। उदाहरण- 'सत्यवद्यो रघूत्तमः' कृष्णवद्याः कर्म्मणि यत्, कृष्णोद्याः कर्म्मणि क्यप् सङ्कर्षणः, उपेन्द्रेत्यादिना समासः। सत्यवद्यः, सत्यं वदतीत्यर्थः ॥५३॥

एति-स्तु-शासु-वृञ्-दृ-जुषः क्यप् ॥५४॥

इत्यः, स्तुत्यः, शिष्यः, वृत्यः, आदृत्यः, जुष्यः। शस्यं, शस्यम्, दुह्यम्, दोह्यम् एवं वृत्यम्, कल्प्यम्, भृत्यः, संभृत्यः संभार्य्यः, कृत्यं, कार्य्यम्, वृष्यं, वर्षाम्, पत्न्यान्तु-भार्य्या।

एति-इत् गतौ, ष्टुञ् स्तुतौ, शासु अनुशिष्टौ, वृञ् वरणे, दृङ् आदरे, जुष् प्रीति सेवनयोः इन सब धातु के उत्तर में क्यप् होगा। शाषः का शिष् आदेश होता है ॥५४॥

यु-रपि-लपि-त्रपि-त्रपि-चमिभ्य आसुनोतेश्च ण्यत्, दम्भेर्नस्य च हरः ॥५५॥

याव्यं, राप्यं, वाप्यं, लाप्यं, त्राप्यम्, आचाम्यम्, आसाव्यम्, दाम्यम् ।

यु मिश्रणामिश्रणयोः डु वप् बीजतन्तु सन्ताने, रप-लप व्यक्तायां वाचि, चमु अदने, आङ् पूर्व्व षुञ् अभिषवे-इन सब धातु के उत्तर में भाव कर्म्मणि वाच्य में ण्यत् होगा। एवं दन्भ् का नराम का हर भी होगा ॥५५॥

भज-यप-यजानमिभ्यो यद्वा ॥५६॥

भज सेवायां, जप मानसे, यज देवपूजादौ, आङ् पूर्व्वात् नम प्रह्वत्वे शब्दे च, इन सब धातुओं के उत्तर में यत् विकल्प में होगा, पक्षे ण्यत् होगा ॥५६॥

अनुपेन्द्रे ग्रहेः क्यप् बाह्यायां पक्षे च ॥५७॥

मथुरा गृह्या सेना, ततो वाच्येत्यर्थः । कृष्णगृह्यः, तत् पक्षाश्रित इत्यर्थः ।

अनुपेन्द्र पूर्वपद में रहने से वाह्य पक्ष में ग्रह धातु के उत्तर में क्यप् होगा। पक्षः पक्षाश्रितः, ततः, मथुरातः, तत् पक्षाश्रितः, कृष्ण पक्षाश्रितः ॥५७॥

भव्यगेय प्रवचनीयोपस्थापनीय-जन्याप्लाव्यापात्याः कर्त्तरि च साधवः ॥५८॥

वैष्णवो मथुरायां भव्यः भवतीत्यर्थः, हरेर्गेयः, हरिं गायतीत्यर्थः ।

भव्यादि कर्त्तरि वाच्य में भी साधु होंगे। भव्यः भवतीत्यर्थः, निपातात् कर्त्तरि यत्, गेयः, कर्त्तरि यत्, प्रवचनीयः निपातात्

कर्त्तरि अनीयः, एवं उपस्थानीयः, जन्यः कर्त्तरि ण्यत् 'जनीवध्योः' सूत्र से वृष्णीन्द्र निषिद्ध। आप्लाव्यः प्लुङ् गति अर्थ में, निपात हेतु ण्यत् इस प्रकार आपात्यः हुआ है ॥५८॥

केलिमः कर्म्म कर्त्तरि ॥५६॥

भिदेलिमा माषाः पचेलिमा स्तण्डुलाः।

कर्म्म कर्त्तरि वाच्य में धातु के उत्तर में केलिम प्रत्यय होता है। क इत् होता है, भिदेलिमाः-स्वयमेव भिद्यन्ते। माषाः-व्रीहयः पचेलिमाः, स्वयमेव पच्यन्ते ॥५६॥

बाहुल्यात् कर्म्मणि णकः ॥६०॥

पाद हारकं नुपूरादि।

कृदन्त प्रकरण बाहुल्य होने के कारण कर्म्म वाच्य में भी णक् होता है, पादाभ्यां ह्रियते उह्यते, पाद हारकं नुपूरादि ॥६०॥

नन्द्यादेरनः ॥६१॥

नन्दनः, जनार्द्दनः, मधुसूदनः, मदनः, तपनः, पतनः, विरोचनः, दर्पणः, संक्रन्दनः, सङ्कर्षणः, पवनः, विभीषणः रमणः।

कर्त्तरि वाच्य में नन्द्यादि के उत्तर में अन होता है। नन्दन इति टुनदि समृद्धौ ण्यन्तादने कृते ण हरः, नन्दयति, जनार्द्दनः, अर्द्द हिंसायाम्, जननामानमसुरमर्द्दितवान्-जनार्द्दनः, श्रीकृष्णः, मधुसूदनः, सूद-क्षणने, क्षणनं हिंसा। मधुं सूदनः, मधुरसुरविशेषः, मधुसूदनः श्रीकृष्णः, मधुशब्दस्थ मकरन्द वाचित्वमप्यस्ति, अतो मधुसूदन शब्दो भ्रमर वाचकोऽपि। मदन इति-मदि हर्षे णि वृष्णीन्द्रः, घटादित्वात् वामनः, ण्यन्तादनः, णे हरः, मदयतीत्यर्थः, मदनः, कन्दर्पः, तपनः, तप सन्तापे, तपतीत्यर्थः, तपनः सूर्य्यः, पतनः, पतलृ गतौ, पततीत्यर्थः। विरोचनः रुच दीप्तौ ण्यन्तादन।

विरोचयतीत्यर्थः। विरोचनः, सूर्य्यः, दर्पणः, दृप गर्व्वे-दृप्यतीत्यर्थः, दर्पणो मुकुरः, संक्रन्दनः, क्रदि-आह्वाने रोदने च संक्रन्दतीत्यर्थः। संक्रन्दनः-इन्द्रः।

सङ्कर्षणः–कृष-विलेखनाकर्षणयोः, संकर्षतीत्यर्थः सङ्कर्षणो बलदेवः। पवनः, पूङ् पवने पवत इत्यर्थः, पवनो वायुः, विभीषणः, ञि भी भये, णि भियो भोषादेशो ण्यन्तादनः णे हरः विभीषयते-इत्यर्थः विभोषणो रावणानुजः। रमणः-रमु क्रीड़ायां, णि वृष्णीन्द्रः, घटादित्वाद् वामनः, ण्यन्तादनः, णे हरः रमयतीत्यर्थः, रमणः पतिः ॥६१॥

ग्रहादेर्णिनिः ॥६२॥

आदे र्ण इत्, इन् इति स्थिते, त्रिविक्रमः-ग्राही, स्थायी।

कर्त्तरि वाच्य में ग्रहादि के उत्तर में णिनि होता है। ग्रह-उपादाने-गृह्णाणीति ग्राही, स्था गति निवृत्योः, 'आतो युगिणि-नृसिंह कृति च' सूत्र से युक् स्थायी ॥६२॥

पचादेरत् ॥६३॥

अच् पाणिनिः। पचः, देवः, मेषः, सेवः, चरः द्विर्व्वा-चराचरः।

कर्त्तरि वाच्य में पचादि के उत्तर में अत् होगा।

पचः-पचतीत्यर्थः देवः-दिवु क्रीड़ादिषु। मेष इति मेष स्पर्द्धायाम् सेवः-सेवृ सेवने। चरः-गतौ। अत् प्रत्ययान्त चरादि का विकल्प में द्वित्व होता है, एवं नर के अराम का आराम भी होता है। चराचरः–जङ्गमः ॥६३॥

अक आशिषि ॥६४॥

जीवतात्-जीवकः।

आशीर्व्वाद अर्थ सूचित होने पर धातु के उत्तर में अक् होता है। जीवतात्-वाक्य से आशीर्व्वाद सूचित हुआ है, जीवकः ॥६४॥

कर्म्मणि प्र-पूर्व्वाभ्यां दा ज्ञाभ्यां कः ॥६५॥

कृष्णप्रदः, भक्तिप्रज्ञः ।

कर्म्म पूर्व्वपद में होने से प्रपूर्व्व दा एवं ज्ञा धातु के उत्तर में क होगा । कृष्णप्रदः कृष्णं प्रददातीत्यर्थः । भक्तिप्रज्ञः भक्ति प्रजानातीत्यर्थः ॥६५॥

कर्म्मण्यनुपेन्द्रगायतेष्टक् ॥६६॥

कृष्णगी । उपेन्द्रात्तु-कृष्ण संगायः ।

कर्म्म पूर्व्वपद में होने से अनुपेन्द्र के उत्तर गायते के उत्तर में टक् होगा । ट एवं क इत् होता है । ट इत् होने से ईप् होता है । कृष्णं गायति-कृष्णगः, ईप् होकर कृष्णगी होता है । उपेन्द्र के उत्तर का उदाहरण-कृष्ण संगाय, आमान्तत्वान्नः ॥६६॥

कर्म्मण्यर्हतेरत् ॥६७॥

कृष्णार्हः, कृष्णार्हा ।

कर्म्म पूर्व्वपद में होने से अर्हतिके उत्तर में अत् होगा । कृष्णार्हः– अर्ह पूजायां कृष्णमर्हतीत्यर्थः । लक्ष्मी लिङ्ग में कृष्णार्हा ॥६७॥

आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्नान्ध-प्रियेष्वभूततद्भाववत्सु कर्म्मसु डुकृञः खनट् करणे ॥६८॥

खटावितो, अनशेषः ।

अभूत तद्भाव अर्थ में आढच सुभग स्थूल पलित नग्नान्घ प्रिय शब्द कर्म्म होकर पूर्व्वपद में होने पर डु कृञ् धातु के उत्तर में खनट् प्रत्यय होगा । ख ट इन् होकर अन रहता है ॥६८॥

खिष्णु खुकणौ कर्त्तरि ॥६९॥

आढ्यङ्करणम्, सुभङ्करणम्, आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः, सुभगम्भविष्णुः, सुभम्भावुकः, इत्यादि ।

अभूत तद् भाव अर्थ में आढ्य प्रभृति शब्द पूर्वपद में रहने से कर्त्तरि वाच्य में कृ-भू धातु के उत्तर में खिष्णु खुकण प्रत्यय होता है । आढ्यङ्करणम्-आढ्यो धनी, शुभगङ्करणम्-अशुभगः शुभगं कुर्व्वन्ति येन तदिति । एवं स्थूलङ्करणम्, आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः, सुभगम्भविष्णुः, सभगम्भावुकः ॥६९॥

समाने कर्म्मण्यन्यतदादिषु च कर्म्मोपमानेषु दृशः क-क्विप्-सकः कर्म्मणि समानस्य च सः ॥७०॥

समानो दृश्यते सदृशः । कः-सदृक् ।

समान कर्म पूर्व्वपद में होने पर अन्य तदादि कर्म्मोपमान पूर्व्वपद में भी रहने से कर्म्म वाच्य में दृश धातु के उत्तर में क- क्विप्-सक होते हैं । समान शब्द के स्थान में स भी होगा । दृशादि परे रहने से सदृशः, कंसारित्वाद् गोविन्दाभावः ॥७०॥

अन्यादेरिवेन सह संसारस्यारामः ॥७१॥

अन्या इव दृश्यते-अन्यादृशः । एवम्-तादृशः, ईदृशः, कीदृशः, अमूदृशः-इत्यादि । क्विप्-क्रुङ्, दधृक् । कृष्णप्रसूः, कंसद्विडित्यादि ।

दृशादि परे रहने से इदम् के स्थान में ईश् होगा, किम् के स्थान में कीश् होगा, अदस् के स्थान में अमूश् होगा । सर्व्वत्र इव के साथ ही होगा । श-इत् होता है, शित् सर्व्वस्य इस नियम से शिदादेश समुदाय के स्थान में होता है । अन्यादृशः-इवेन सह अरामस्यारामः । तादृशः, स इव दृश्यते, इवेन सह संसारस्यारामः ।

ईदृशः, अयमिव दृश्यते, इवेनसह इदम ईश् । कीदृशः, क्व इव दृश्यते, इति इवेन सह किमः कीश् अमूदृशः, असाविवा दृष्यते इति इवेन सह अदसोऽमूश् । क्विप् सक का उदाहरण-यादृश् एतादृश् । कुञ् दधृष् स्रज् उष्णिहश्च क्विवन्ताः, क्रुञ्च-धृष-सृज-इत् पूर्व्वं स्निहामेत पक्षिविशेष धृष्ट मालाच्छन्दो विशेषेषु क्विवन्ता निपात्यन्ते । क्रुङ् दधृक् क्रुङिति-निपातात् क्विप् तवर्गस्य चवर्गश्च चवर्ग योगे इति नस्य ञरामः, सत्सङ्ग्रान्तस्य हरः । चवर्गस्य कवर्गः, विष्णुपदान्ते-इति ञरामस्य ङगम । क्रुङ् बक विशेषः । दधृक्-निपातात् क्विप् द्विर्वचनश्च नर ऋरामस्य अरारः, धस्य दत्वम् । सृज् दृश् इत्यादिना कः-दधृक्, धृष्टः प्रगल्भः । नाम्नि सद्‌लृ-सू-द्विष्-द्रुह-दुह-युज-लाभार्थ-विद-भिद छिद जि नी राजिभ्यः क्विप् । कृष्ण प्रसूः कृष्णं प्रसूते, कृष्णप्रसूर्यशोदा । कंसद्विट् कंसंद्वेष्टि ।।७१।।

उपेन्द्रे कर्म्मणि च भजेण्विः ।।७२।।

ण इत् । प्रभाक्, कृष्णभाक् ।

उपेन्द्र एवं कर्म्म पूर्व्वपद में होने पर भज धातु के उत्तर में ण्वि होता है । ण इत होता है । प्रभाक्, केवल प्रत्ययस्य वेर्हरः, कृष्णीन्द्रः । इस प्रकार कृष्णभाक् होता है ।।७२।।

नाम्न्यारामात् मनिप् क्वनिप् वनिप् विश्च ।।७३।।

सुष्ठु ददाति-सुदामा, श्रीदामा, सुपीवा, हरिभक्तिदावा, विश्वपाः ।

नाम पूर्व्वपद में होने पर आरामान्त धातु के उत्तर में मनिप् क्वनिप्, वनिप् विप्रत्यय होते हैं । सुदामा-कर्त्तरि मनिप् । श्रीदामा; श्रियं ददाति । सुपीवा-पा-पाने क्वनिप् सुष्ठु पिबति, हरिभक्तिदावा-हरिभक्ति ददाति, वनिप् । विश्वपाः, विश्वं पातीति विः, वेर्हरः ।।७३।।

हरिवेणोरारामो वनिपि ॥७४॥

ओणृ–अवावा। दैत्यव् भक्तिकृत्।

वनिप् परे रहने से हरिवेणु के स्थान में आराम होगा। ओणृ-अपनयणे-अवावा वनिप् करने के पश्चात् हरिवेणोराराम: ओ अव्। दैत्य वृश्च माचष्टे-इति ण्यन्तात् क्विप् दैत्यव्। क्विप् धातु मात्रादयं विधि:, करोति कृत्-भक्तिकृत् ॥७४॥

युष्मदस्मदो णि क्विवन्तयो र्युष्म-स्मौ ॥७५॥

युष्म अस्म्।

त्वां युवां युष्मान् वाचष्टे, एवं मां आवां अस्मान् वा इति णौ संसार हरे क्विपि युष्म अस्म मान्तौ साधू।

त्वामाचष्टे, त्वदादेशाभावो निपात फलम्, मामाचष्टे इत्यत्र मदादेशाभावश्च निपातफलम् ॥७५॥

तयो रूपाणि सु-जस्-ङे-ङस् सु प्रकृतवदेव वाच्यानि, अन्यत्र तु क्विवन्तयो र्युषसौ त्यक्त्वा, प्रकृतयोर्वम-पर्य्यन्त भागं त्यक्त्वा क्विवन्तपदशिष्टं प्रकृतपदशिष्टवत् कार्य्यम्, अत्र टौस् ङिषु वमौ त्यागे सारामौ ग्राह्यौ, अन्यत्र तु निररामौ ॥७६॥

त्वं, युवां, यूयम्, युषां, युषां, युष्मान्, युष्या, युषाभ्यां, युषाभि:, इत्यादि।

क्विवन्तयो र्युष् अस् भागात् यदवशिष्टमक्षरं अर्थात् मराम औ प्रभृति तस्य स्थाने प्रकृत पदस्य व-म पर्य्यन्त भागस्य त्यागात् अवशिष्टं यदामादि रूपं तद्विधीयते-इति निर्गलितार्थ:। सारामो-वमावित्यर्थ:। एवं निरारामाविति ॥७६॥

मन्यते खश्-णिनी आत्ममनने ॥७७॥

कृष्णसेवी । जातौ तु विप्रसेवः । अजातौ व्रते-हरिनिर्म्माल्यभोजी । जातौ-तुलसी सेवी । कृष्ण इव गायति-कृष्णगायी । कृष्णेगोपस्नेही ।

वैष्णवमात्मानं मन्यते-वैष्णवम्मन्यः, वैष्णवमानी ।

आत्मविषय में मान लेने पर कर्त्तरि वाच्य में जाति एवं जाति व्यतीत शब्द पूर्व्वपद में होने से 'मन्यते' मनु बोधने धातु के उत्तर में खश णिनी प्रत्यय होते हैं । कृष्णसेवी-तत् स्वभाव इत्यर्थः, विप्रसेव इति अत्र ताच्छील्यं गम्यते, अजाति व्रत का उदाहरण-हरिनिर्म्माल्यभोजी, जाति में तुलसीसेवी; व्रत एवं आभीक्ष्ण का उदाहरण-तुलसीमेव सेवते, पुनः पुनः तुलसीं सेवते ।

कृष्णगायी-आतोयुक् । कृष्णे गोपस्नेही स्निह प्रीतौ, कृष्णे गोप इव स्निह्यतीत्यर्थः । वैष्णवमात्मानं मन्यते-वैष्णवम्मन्यः, सर्व्वेश्वरान्तेत्यादिना मुम्, णिनी पक्षे-वैष्णवमानी ॥७७॥

सुकर्म्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु कर्म्मसु डुकृञः क्विप् ॥७८॥

सुकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृदित्यादि । शास्त्रकृच्च ।

सु-कर्म्म-पाप-मन्त्र-पुण्य कर्म्म होकर पूर्व्वपद में रहने से डुकृञ् धातु के उत्तर क्विप् प्रत्यय होता है । सुकृत्-सुष्ठु कृतवानित्यर्थः एवं कर्म्मकृत्, पाप कृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्-इति सु प्रभृतिष्वेव कृञः क्विप् ॥७८॥

कर्म्मणि दृशेः क्वनिवेव ॥७९॥

श्रीकृष्णदृश्वा । राजयुद्धा साधु ।

कर्म्म पूर्व्वपदे में रहने से अतीत काल में दृश धातु के उत्तर में क्वनिप् होता है । श्रीकृष्णदृश्वा इति श्रीकृष्णं दृष्टवानित्यर्थः । राजयुद्धा-राजानं योधितवानित्यर्थे निपातात् क्वनिप् गोविन्द णि वृत्तिश्च णे हरः । इस प्रकार राजकृत्व-सहयुद्ध-सहकृत्वेति सहकृतवानित्यर्थे निपातात् क्वनिप् ॥७९॥

अलंकृञ-निराकृञ-प्रजन-उत्पत-उत्पच-उन्मद-रुच-अपत्रप-वृतु-वृधु-सह-चर इत्येभ्य इष्णुः ॥८१॥

कृष्णमलङ्करिष्णुः निराकरिष्णुः, प्रजनिष्णुरित्यादि ।

अलंपूर्व्वं डुकृञ करणे निराङ पूर्व्वं-डुकृञ, प्रपूर्व्वं जनी प्रादुर्भावे, उतपूर्व डुपचप पाके, उतपूर्व्वं पतलृ गतौ, उतपूर्व्वं मदी हर्षे रुच दीप्तौ, अपपूर्व्व त्रपू लज्जायां वृतु वर्त्तने, वृधु वृद्धौ, सहमर्षणे, चरगतौ, इन सबके उत्तर में तच्छीलादिष्वर्थेषु इष्णु भवति । कृष्णमलङ्करिष्णुः, अच्युताभेत्यदिना षष्ठी निषेधः, एवं निराकरिष्णुः, प्रजनिष्णुः ॥८१॥

जि-भूभ्यां स्नुक् ॥८२॥

जिष्णुः, भूष्णुः ।

जि जये, भूसत्तायाम् दोनों के उत्तर में तच्छीलादि अर्थ में में स्नुक् होता है । क् इत् जिष्णुः, भूष्णुः ॥८२॥

ग्ला स्थाभ्यां स्नुः ॥८३॥

ग्लास्नुः, स्थास्नुः ।

तच्छीलादि अर्थ में ग्लै हर्षक्षये, ष्ठा गति निवृत्तौ, के उत्तर में स्नु होगा । स्थास्नुः स्थिरतरः । स्थास्नुः स्थिरतरः स्थेयानित्यमरः ॥८३॥

क्रोध भूषार्थेभ्यश्चानः ॥८४॥

क्रोधनः, कोपनः, भूषणः, मण्डनः । उकण-लाषुकः घातुकः । आकट्-जल्पाकः ।

क्रोधार्थं, भूषार्थ के उत्तर में अन होगा । क्रोधनः, क्रुध रोषे कोपनः, कोप-रोषे, भूषणः, भूष अलङ्कारे, मण्डनः, मडिव भूषायाम् । उकण प्रत्यय लष हन पत पद स्था भू वृष कम गस शृ स्य उकण् ।

लष कान्तौ, हन हिंसागत्योः, पतलृ गतौ, पद गतौ, ष्ठा गति निवृत्यौ भू सत्तायां, वृषु सेचने, कमु कान्तौ, गमलृ गतौ, शृ हिंसायां, के उत्तर में उकण् प्रत्यय होगा। ण इत्, लाषुकः, घातुकः जल्प भिक्ष कुट्ट लुण्ठ वृङ आकट्। जल्पाकः, भिक्षाकः, कुट्टाकः, लुण्ठाकः, वरांकः ॥८४॥

स्पृहि-गृहि-पति-कृपि-दयि-निद्रा-तन्द्रा-श्रद्धा-शीभ्य आलुः॥८५

स्पृहयालुः, गृहयालुः, पतयालुः, कृपालु, दयालुः। क्वरप्-इत्वरः, लक्ष्म्यामीप्-इत्वरी, नश्वरी। ऊकः-जागरूकः यायजूकः, जञ्जपूकः, दन्दशूकः, वावदूकः। रः-नम्रः उः-हरिभक्ति चिकीर्षुः।

स्पृह प्रभृति के उत्तर उसी अर्थ में आलु प्रत्यय होगा। स्पृह ईप्सायाम्। स्पृहयालुः, पतयालुः, पतगतौ। दयालुः दय दान गति हिंसादानेषु च। द्रा कुत्सायाम्-निपूर्व्व निद्रालुः। शीङ् स्वप्ने शयालुः। कृपालुः कृपलृ धातु। इन् गतौ, नश अदर्शने, जिजये, सृ गतौ, धातु के उत्तर में क्वरप् होगा। क्वपावितौ, इत्वरः- वामनात्तुक्। लक्ष्मीलिङ्ग में ईप् होने से इत्वरी, नश्वरी पद होगा। यज-जप-दनश-वदिभ्यो यङन्तेभ्य ऊकः याजजूकः, जागरूकः, जञ्जपूकः, दन्दशूकः, वावदूकः। नमि-कम्पि-स्मि-कमि-हिंसि दीपादिभ्य रः। नम्रः सनन्त-शस-भिक्षिभ्य उः-हरिभक्ति चिकीर्षुः ॥८५॥

डुरामेतः क्त्रिमः क्रिया निर्वृत्तेः ॥८६॥

कृत्रिमम्, पक्त्रिमम्।

क्रिया के द्वारा निष्पन्न होना सूचित होने पर डुराम इत् युक्त धातु के उत्तर में क्त्रिम प्रत्यय होता है, क इत् होता है। क्रिया धात्वर्थः करणेन निर्वृत्तं कृत्रिमम् एवं पाकेन निर्वृत्तं-पक्त्रिमम् ॥८६॥

दुरामेतोऽथुर्भावे पुंसि ।।८७।।

वेपथुः, श्वयथुः ।

भाव वाच्य में दुराम इत युक्त धातु के उत्तर में पुरुषोत्तम लिङ्ग में 'अथु' प्रत्यय होता है । टु वेपृ-चलने वेपथुः-कम्पः । श्वयथुः, टु ओश्विगतिवृद्धयोः, श्वयथुः-शोथः ।।८७।।

क्ति लक्ष्म्यां भावे ।।८८।।

कृतिः, भूतिः, प्रह्लत्तिः, घट्टिः, अपचितिः, वतिः, दरिद्रातिः, कण्डूवतिः, एवं हन्तिः, वन्तिः, तन्ति, भणितिः, निपठितिः, निगृहीतिः, प्रथितिरित्यादि ।

भाव वाच्य में धातु के उत्तर में लक्ष्मी लिङ्ग में क्ति प्रत्यय होता है। कृतिः, डुकृञ् करणे, नेड् वनतीत्यनेन भूतिरित्यत्र इड् निषेधः। प्रह्लत्तिः, ह्लादो सुखी, घट्टिः-घटचेष्टायाम् । अपचितिः-पूजा, चायृ पूजानिशामनयाः, स्याने चिभवति, वन व्यापृतौ बन्धणे प्रीतौ सम्भक्तौ, भ्वादे वतिः साधुः । वतिरिति निपाताद्धरि वेणुहरः । दरिद्रा दुर्गतौ, दरिद्राते दरिद्रातिः कण्डूयतेः कण्डूतिः, बध्यात्-हन्तिः, वन्यात् वन्तिः, तन्यात् तन्तिः, भणादेस्तु भणितिः, निपठितिः निगृहीतिः, प्रथितिः-प्रथ-प्रख्याने ।।८८।।

क्तेर्निः ।।८९।।

कीर्णिः, लूनिः, ग्लानिः, इत्यादि ।

कृ विक्षेपे-कीर्णिः, लूञ् छेदने-लूनिः, ग्लै-हर्षक्षये-ग्लानिः ।।८९।।

सम्पदादेः क्विप्-क्तौ भावे लक्ष्म्याम् ।।९०।।

सम्पत्, विपत्, प्रतिपत् इत्यादि ।

भाव वाच्य में सम्पदादि शब्द के उत्तर में लक्ष्मीलिङ्ग में क्विप्क्ती प्रत्यय होते हैं । सम्पत्, विपत् प्रतिपत् पक्षे-सम्पत्तिरित्यादि, आकृतिगणोऽयम् ।।९०।।

भावे लक्ष्म्यां ङाप्, नतु क्तिः ॥९१॥

ईहा, ऊहा, इन्दा, शिक्षा, व्यतीहा इत्यादि।

भाव वाच्य में लक्ष्मी लिङ्ग में ङाप् होता है। किन्तु क्ति प्रत्यय नहीं होता है। ईह चेष्टायाम्-ईहा, ऊह वितर्के ऊहा, इदि परमेश्वर्य्ये इन्दा, शिक्ष विद्योपादाने, शिक्षा, व्यतीहा व्यतीक्षेपि ॥९१

जागृ-शुभ-जॄ षां गोविन्दश्च ॥९२॥

जागरा, शोभा, जरा, भिदा, छिदा, तृषा, पीड़ा, चिन्ता, पूजा, कथा, अर्च्चा, चर्च्चा इत्यादि।

जागृ निद्राक्षये, शुभ दीप्तौ, जॄ ष वयोहानौ इन सब धातु के उत्तर में भाव वाच्य में लक्ष्मीलिङ्ग में ङाप् एवं गोविन्द होता है। जागरा, शोभा, जरा, भिदा, छिदा, तृषा, पीड़ा, चिन्ता, पूजा, कथा अर्च्चा, चर्च्चा अर्च्च पूजायाम्-चुरादिः, चर्च्चा अध्ययने चुरादि ॥९२॥

सोपेन्द्रारामाच्च ॥९३॥

उपधा, श्रद्धा, अन्तर्द्धा, अवस्था, संस्था, व्यवस्था इत्यादि।

उपेन्द्र एव आराम के उत्तर में भाव वाच्य में लक्ष्मी लिङ्ग में ङाप् होता है। उपधा-डुधाञ् धारणपोषणयोः। श्रद्धा-श्रदित्यव्यम्, अन्तर्द्धा अवस्था-ष्ठा गति निवृत्तौ एवं व्यवस्थोत्यादि ॥९३॥

ण्यन्तादासः श्रन्थादेश्चानो भावे लक्ष्म्यां, नतु कृतेः ॥९४॥

कारणा, भावना, घट्टना, मार्गणा, आसना, देवना, वेदना, अन्वेषणा, पर्य्येर्षणा, एषणा इत्यादि।

ण्यन्त के उत्तर आस धातु के उत्तर में एवं श्रन्थादि के उत्तर में भाव वाच्य में लक्ष्मी लिङ्ग में अन प्रत्यय होता है। किन्तु कृ धातु के उत्तर अन नहीं होगा। कृष्णदाप् लक्ष्म्यां' तद्धित प्रकरणोक्तं सूत्रम्। कारणा-ण्यन्तात् कृधातोरनः। भावनेति ण्यन्ताद् भूधातोरनः। घट्टना-घट्ट चलने-भ्वादिः चुरादिः, ण्यन्तादना। अन्वेषणा इष गतौ, पर्य्येषणेति, एषणेत्यादि ॥९४॥

अनो भावे ।।६५।।

ज्ञानं, भवनं, कीर्त्तनं, लिखनं, लेखनम् नित्यं लेखनी, मिलनं, मेलनम् ।

भाव वाच्य में धातु के उत्तर में अन होगा। ज्ञा अवबोधने ज्ञानं, भू-भवनं, कृ संशब्दने कीर्त्तनं, लिख लिखने-लिखनं, लेखनम् नित्यम् लेखनी, मिलनं-मेलनम् ।।६५।।

टनः करणाधिकरणयोः ।।६६।।

व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते, अर्थपर्य्यवसानाः क्रियन्ते शब्दा अनेनेति-व्याकरणं, शब्दानुशासनं शास्त्रम् । अधिकरणे टनः गोदोहनी, शयनी, रमणी ।

करण एवं अधिकरण वाच्य में धातु के उत्तर में टन होगा। दैत्य व्रश्चनमिति ओव्रश्चू छेदने, दैत्यान्, वृश्चत्यनेनेति करणे टनः। व्याक्रियन्ते-अर्थात् व्युत्पाद्यन्ते अर्थात् अर्थ पर्य्यवसानाः क्रियन्ते। अर्थ पर्य्यवसाना इति प्रकटितार्थाः। व्याकरणमिति-वि-आङ् पूर्व डु कृञ् करणे, व्याकरण पदस्यार्थं कथनं-शब्दानुशासनं शास्त्रम् । गोदोहनी, दुह प्रपूरणे, गां दोग्धि अस्यामित्यधिकरणे टनः, शयनीति शीङ् स्वप्ने शेतेऽस्यामित्यधिकरणे टनः। शयनीति शीङ् स्वप्ने शेतेऽस्यामित्यधिकरणे टनः ।।६६।।

टनः कर्म्मादौ च ।।६७।।

कृष्णेन भुज्यन्ते-कृष्ण भोजनाः शालयः ।

कर्म्मादि वाच्य में धातु के उत्तर में टन होगा। कृष्णभोजनाः, भुज पालन व्यवहारयोः कर्म्मणि टनः। शालयः-धान्यविशेषः ।।६७।।

अम्बष्ठादयः ॥९८॥

अथात्र षत्वानि, षत्वेन साधवः अम्बष्ठः, भूमिष्ठः, सव्येष्ठः, परमेष्ठि इत्यादि ।

अम्बष्ठः-अम्बायां तिष्ठति, अम्बायां स्थीयते इति वा वाक्ये स्थोभावः, भूमौ तिष्ठति-भूमिष्ठः, कः, निपातात् षत्वम्, सव्येष्ठः, सव्ये तिष्ठतीति कः निपातात् षत्वं, समासे ङे नं महाहरः । वामं शरीरे सव्यं स्यादित्यमरः । परमेष्ठीति-परमे तिष्ठतीति, परमे पूर्व्वपदे तिष्ठतेर्ङिन्, आरामहरः, निपातात् षत्वम् परमेष्ठी ब्रह्मा ॥९८॥

इति संक्षेप–श्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णव व्याकरणे पञ्चमं कृदन्त प्रकरणं समाप्तम् ॥५॥



[षष्ठम्]

अथ समास-प्रकरणम्

कृष्णस्य विग्रहे भाति समासेनाखिलं पदम् ।
इतीव स्मारकं वक्ष्ये समास-पदविग्रहम् ।।१।।

समासो बहुलम् (१)

तत्र श्यामराम-कर्म्मधारयौ, त्रिरामी-द्विगू, कृष्ण पुरुष
तत् पुरुषौ, पीताम्बर-बहुव्रीही, रामकृष्ण-द्वन्द्वौ
समानार्थौ ज्ञेयौ, अव्ययीभावस्तु षष्ठः ।।२।।

समासवाक्यं विग्रहः ।।३।।

विशेषणं तुल्याधिकरणेन ।।४।।

तुल्याधिकरणेन सह विशेषणं समस्यते । जाति गुण क्रिया द्वारा यस्य विशेषः कथ्यते, तद् विशेष्यम् । येन तस्य विशेषः कथ्यते, तद् विशेषणम् । यथा—गोपः कृष्णः, गोपी राधा, विहारि गोकुलं विशेष्यम्, अव्यय विशेषणं ब्रह्म, यथा महत् स्वः केचिच्छब्दा विशेषणत्वेऽपि स्वलिङ्गं न त्यजन्ति, प्रधानं-कृष्णः । प्रधानं राधा । अत्र श्यामराम संज्ञोऽयम् । कर्मधारय इति प्राञ्चः । श्याम श्चासौ रामश्चेति रामश्चासौ श्यामश्चेति वा विग्रहौ ।।४।।

अन्तरङ्ग स्वादे र्महाहर एकपदत्वारम्भे ।
नामान्तरत्वप्राप्त्या समस्तात् पुनः स्वादयः
स्ततोऽवान्तरानेक-पदत्वेऽपि एकपदत्वम् । श्यामरामः ।।५।।

समास प्रकरण नामक षष्ठ प्रकरण आरम्भ में मङ्गलाचरण प्रसङ्ग में श्लेष अलङ्कार के द्वारा कहते हैं, समास पद विग्रह कृष्ण में अखिल स्थान समूह हैं, इसके स्मारक रूप में समास पद का

विग्रह वाक्य को मैं कहता हूँ। अर्थात् संक्षेप में समस्त स्थान जिन श्रीकृष्ण के शरीर में विद्यमान हैं, उन श्रीकृष्ण का कीर्त्तन मैं करता हूँ। इवेति वाक्यालङ्कारे द्योतकार्थे च। ग्रन्थ पक्ष में कृष्णस्य विग्रहे कृष्ण सम्बन्धिनि समास वाक्ये, समासेन तत् पदेन उपलक्षितं अखिल सर्व्वं पद भाति विराजते, इतीव स्मारकं तदिव चिन्तनेन निष्पादयितु समास पद विग्रहं वक्ष्ये (१)

स बहुव्रीहि-द्विगुता-मात्रे लुब्धोऽस्मि सद्वन्द्वः।
तत् पुरुषः–कर्म्मधारय–भक्त्येनाव्ययीभावः॥

बहुल लक्षणाक्रान्त समास प्रकरण है। यह वासुदेव नामक अधिकार है। उक्त षड् विध समास के मध्य में कर्म्मधारय समास का नाम श्यामराम है, द्विगु-त्रिरामी, तत् पुरुष-कृष्णपुरुष, बहुव्रीही-पीताम्बर, द्वन्द्व-रामकृष्ण, एवं षष्ठ समास का नाम अव्ययी भाव है। नास्ति व्ययीभावो यस्मादिति विग्रहे अव्ययीभाव शब्दो भगवद्वाची है। अतः संज्ञान्तर की कल्पना इसमें नही हुई है।।१-२।। मध्य में भिन्न पद होने पर भी एकनाम रूप में योग करने का नाम समास है। समसनमित्यर्थे सपूर्व्वं असु क्षेपणे घण् समसनं पदानामेकीकरणं समासः। यह समास परस्पर सम्बन्धान्वित पदों का ही होगा। समास के वाक्य को विग्रह वाक्य कहते हैं।।३।।

विशेष समास का प्रकरण कहते हैं। तुल्याधिकरण विशेषण के सहित तुल्याधिकरण विशेषण का समास होगा। जाति गुण क्रिया द्वारा यस्य विशेष कथ्यते तद्विशेष्यं, येन तस्य विशेषः कथ्यते तद्विशेषणम्। उदाहरण-गोपः कृष्णः, गोपी राधा, विहारि गोकुलम् विशेष्यम्। अव्यय का विशेषण का ब्रह्मलिङ्ग होता है। यथा-महत्-स्वः, कतिपय शब्द विशेषण होने पर भी निज लिङ्ग को परित्याग नहीं करते हैं। यथा-प्रधानं-कृष्णः, प्रधानं-राधा,

अनन्तर श्यामराम समास को कहते हैं। प्राचीनगण इसको कर्म्मधारय कहते हैं। श्यामश्चासौ रामश्चेति श्यामरामः, इस प्रकार रामश्चासौ श्यामश्चेति श्यामरामः ॥४॥

अन्तरङ्गस्वादे र्महाहर एकपदत्वारम्भे ।

नामान्तरत्व-प्राप्त्या समस्तात् पुनः स्वादयस्ततोऽवान्तरानेक पदत्वेऽप्येकपदत्वम् श्यामरामः।

'प्रकृत्याश्रितं प्रकृतावपि पूर्व्वं पूर्व्वमन्तरङ्गम्' इस नियम से समास वाक्य स्थित स्वादि का महाहर होगा, किन्तु समास होने के पश्चात् विहित स्वादि का महाहर नहीं होगा। समासबद्ध पद का नामान्तरत्व होने के कारण इसके उत्तर स्वादि विष्णुभक्ति होती है, अवान्तर अनेक पद होने पर भी एक पद होता है, 'श्यामरामः' हुआ। समस्त श्यामराम शब्द का नामान्तरत्व होने के कारण पुनर्वार स्वादि होते हैं। यहाँ श्याम पद विशेषण है, वर्णान्तर राम को पृथक् करके बोध कराना है। जहाँ श्यामत्व है, वहाँ राम संज्ञत्व है, यह तुल्याधिकरण है। किन्तु कृष्णस्य पुरुषः स्थल में कृष्ण शब्द पुरुष का विशेषण तो है, किन्तु यह व्यधिकरण है, तुल्याधिकरण नहीं है। यदुक्तं–भिन्न प्रवृत्तिनिमित्तयोरेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम् ॥५॥

उपमानमुभयस्थ धर्म्म-वचनैः ॥६॥

मेघ इव श्यामः, मेघश्यामः। मृगीव चाला-मृग चपला।

उभय धर्म्म वचन के सहित उपमान का समास होता है। मेघ इव श्यामः मेघश्यामः। यहाँ श्याम शब्द उपमानोपमेयस्थ धर्म्म वचन है, मेघ उपमान है, एवं कृष्ण उपमेय है। मृग चपला, वाच्य लिङ्ग लक्ष्मी स्तुल्याधिकरण लक्ष्म्यामित्यनेन पुरुषोत्तमवत्त्वम्, चपलाशब्दः, उपमानोपमेयस्थ धर्म्म वचनः। अत्र मृग्या उपमानत्वं गोप्या उपमेयत्वम् ॥६॥

उपमेयं व्याघ्रादिभिरुपमानैः ॥७॥

पुरुषो व्याघ्र इव पुरुष व्याघ्रः।

व्याघ्रादि उपमान के सहित उपमेय का समास होता है। पुरुषो व्याघ्र इव। उपमेय का पूर्व्व निपात हुआ है। इस प्रकार पुरुष सिंहः, पुरुष कुञ्जरः, मुखपद्मम, मुखकमलम्, मुखचन्द्रः, प्रभृति होते हैं ॥७॥

कुप्रादयो मध्यपद-लोपश्च ॥८॥

कुत्सितश्चासौ पुरुषश्चेति कुपुरुषः।
गोवर्द्धन नामागिरिः, गोवर्द्धनगिरिः।

स्वादि विष्णुभक्ति युक्त के सहित कुप्रादि का समास होता है, एवं मध्यपद लोप भी होता है। कुपुरुषः, यहाँ कु शब्द, पापार्थ नहीं है, किन्तु असुन्दरार्थ है। योग विभाग से गोवर्द्धननामागिरिः, गोवर्द्धनगिरिः। योग विभाग से कुप्रादिभिन्न का भी स्वाद्यन्त के सहित समास होता है, मध्य पद लोप भी होता है ॥८॥

इवेन नित्यं समासो विष्णुभक्त्यलोपश्च ॥९॥

मेघ इव।

इव शब्द के सहित नित्य समास होता है, विष्णुभक्ति का लोप भी नहीं होता है। उदाहरण-मेघ इव। या इच्छा यहच्छा ॥९॥

समाहारे त्रिराम्यामेकत्वं ब्रह्मत्वञ्च ॥१०॥

पञ्चानां गोपीनां समाहारः पञ्चगोपि। समं हरति समाहारः।

समाहार वाच्य में त्रिरामी में एकत्व एवं ब्रह्मत्व होता है। समाहृति को समाहार कहते हैं। पञ्चगोपिः, पञ्चानां गोपीनां समाहारः इति विग्रहे पञ्चगोपि ॥१०॥

त्रिराम्या ईप् ॥११॥

त्रिरामी, पञ्चाध्यायी ।

अरामान्ता त्रिरामी लक्ष्मीः, आवन्ता वा त्रिराम्या ईप् । त्रयोरामाः समाहृता इति त्रयाणां रामाणां समाहारः । पञ्चानां अध्यायानां आनयनं गम्यते ।।११।।

कृष्णपुरुषेण नञ् समस्यते ।।१२।।

ञराम इत् । न वैष्णवोऽवैष्णवः । सर्व्वेश्वरे तु नुट् च समासे अनवैष्णवः ।

स्वाद्यन्त के सहित नञ् का समास होगा, ञ् राम इत् होता है । न वैष्णवः इति बिग्रहे नञोऽराम शेषः, इति अवैष्णवः, न अवैष्णवः, अनवैष्णवः । नञ् कृष्णपुरुषोऽयम्, सर्व्वेश्वरेतु नुट् च समासे इत्यनेन नञोऽरामशेषे नुट् च ।।१२।।

प्राप्तापन्ने द्वितीयया ।।१३।।

प्राप्तः सखायं-प्राप्तसखः ।

प्राप्तापन्ने द्वितीयया सह समस्येते द्वितोययेति द्वितीयान्तेनेत्यर्थः, प्राप्त सख इति राजाहः सखिभ्य इत्यनेन केशवाराम: अ इ द्वयस्य हर इत्यनेन इरामहरः ।।१३।।

द्वितीया श्रितादिभिः ।।१४।।

कृष्णंश्रितः, कृष्णश्रितः, संसारातीतः, वैकुण्ठगतः इत्यादि ।

आदि ग्रहणात् खट्वारूढ़ः ।

द्वितीयान्त विष्णुपद का समास श्रितादि शब्द के सहित होगा । कृष्णंश्रितः कृष्णश्रितः कर्त्तरि क्तः । संसारातीत इति संसारमतीत इति विग्रहः, वैकुण्ठं गतः वैकुण्ठ गतः । आदि ग्रहणात् दुर्म्मानिनि वाच्ये खट्वारूढ़ इति भवति । दुर्म्मानी निन्द्यः, तस्मात् केनापि प्रकारेण निन्द्यत्वे गम्ये आरूढ़ादीनां श्रितादित्वमिति भावः, खट्वारूढ़ो मूर्खादिः ।।१४।।

तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थादिभिश्च ॥१५॥

चक्रेण कृतः खण्डः चक्रखण्डः। कृष्णेनार्थः, कृष्णार्थः।

कृष्णसदृशः इत्यादि।

तृतीयान्तार्थ कृत श्चासो गुण वचनश्चेति, तेन अर्थादिभिश्च सह तृतीयान्तं समस्यते। गुणवचनस्य लक्षणमाह गुणमुक्त्वा यो गुणिनि वर्त्तते स गुणवचनः, चक्रेण कृतः खण्डः, चक्रखण्डः। अत्र तृतीयान्तार्थश्चक्रास्त्रमस्त्र, तेनकृतो गुणः खण्डितत्वं, तदुक्त्वा गुणिनि वर्त्तमानः खण्ड इति। कृष्णेनार्थः, कृष्णार्थः भक्तिपूर्व्वः, कृष्णसदृशः, इत्यादि ॥१५॥

कर्त्तृ करणे कृता ॥१६॥

कृष्णहतः, चक्रछिन्नः।

कृदन्त के सहित तृतीयान्त पद का समास होगा। कृष्णहतः कृष्णेन हत इति विग्रहः, अत्र तृतीयान्तस्य कर्त्तृत्वम्। चक्रछिन्न इति–चक्रेणच्छिन्न इति विग्रहः, अत्र तृतीयान्तस्य करणत्वम् ॥१६॥

अथ मध्यपदलोपिनः ॥१७॥

पूरणद्रव्यं पात्रेण ॥१८॥

गङ्गाजलेन पूर्णो घटः गङ्गाजलघटः। अन्यत्रापि-श्रिया युक्तः कृष्णः

श्रीकृष्णः।

मध्यपद लोपिनः, यह अधिकार सूत्र है। प्रभु नामक अधिकार है, पात्र के सहित तृतीयान्त शब्द पूरण द्रव्य का समास होगा। मध्यपद का लोप भी होगा। गङ्गाजलेन पूर्णः घटः, अन्यत्रापि स्वाद्यन्तेन समं तृतीयान्तं समस्यते, मध्यपदलोपश्च भवति। अन्यत्रापि दृश्यते, श्रिया युक्तः कृष्ण श्रीकृष्णः ॥१७-१८॥

चतुर्थी प्रकृत्या ॥१९॥

हरिमन्दिराय इष्टकाः—हरिमन्दिरेष्टकाः।

प्रकृत्या सह चतुर्थ्यन्ता विकृतिः समस्यते। विकृतिरिति अर्थाल्लब्धमिति ज्ञेयम्। हरिमन्दिराय इष्टकाः—हरिमन्दिरेष्टकाः। यदर्थमन्यत्तस्माच्चतुर्थी, इत्यनेन चतुर्थी। अत्र हरिमन्दिरस्य विकृतत्वं, इष्टकानां प्रकृतित्वमिति ॥१९॥

कृता यथाभिधानम् ॥२०॥

कृष्णाय देयम्—कृष्णदेयम्।

यथाभिधानं कृदन्तेन सह चतुर्थ्यन्तं विष्णुपदं समस्यते। यथाभिधानं—अभिधानमनतिक्रम्येत्यर्थः। कृष्णदेयम्—कृष्णाय देयमिति ॥२०॥

पञ्चमी भय-भीत-भीभिरानीतादिभिश्च ॥२१॥

कृष्णात् भयम्—कृष्णभयम्। वृन्दावनात् आनीतः वृन्दावनानीतः। भय-भीत-भीति-भीभिः आनीतादिभिश्च सह पञ्चम्यन्तं विष्णुपदं समस्यते। कृष्णभयमिति कृष्णाद्भयमिति विग्रहः। एवं कृष्णभीतः, कृष्णभीतिः कृष्णभीभिरिति।

वृन्दावनानीतमिति वृन्दावनादानीतमिति विग्रहः ॥२१॥

षष्ठी परपदेन ॥२२॥

तव प्रभुः, त्वत् प्रभुः। परपदेन सह षष्ठ्यन्तं समस्यते। तव-प्रभुः त्वत्प्रभुः, युष्मादस्मदावुत्तरपद प्रत्यययोरेकत्व इत्यनेन त्वदादेशः कृष्णस्य पुरुषः कृष्णपुरुषः ॥२२॥

तरान्त गुणेन तरलोपश्च ॥२३॥

सर्व्वेषां मध्ये कृष्णतरः, सर्व्वकृष्णः।

तरान्त गुणेन सह षष्ठ्यन्तं विष्णुपदं समस्यते। तरलोपश्च भवति। सर्व्वेषामिति निर्द्धारणे षष्ठी इति सूचयितुं मध्य

इत्युक्तम् । कृष्ण तर इति गुणप्रकर्षे तरस्तद्धितः ॥२३॥

सप्तमी शौण्डादिभिः ॥२४॥

भक्तौ शौण्डः भक्तिशौण्डः । भक्तौ प्रवीणः भक्तिप्रवीणः, तीर्थे काक इव तीर्थकाकः ॥२४॥ इति मध्यपदलोपिनः ।

इति कृष्णपुरुषप्रकरणमुद्दिष्टम् ।

शौण्डादिभिः सह सप्तम्यन्तं विष्णुपदं समस्यते, भक्तिशौण्डः—भक्तौ शौण्ड इति विग्रहः । शौण्डः—प्रगल्भः । भक्तौ प्रवीणः भक्तिप्रवीणः, तीर्थे काक इव तीर्थकाकः, तद्वदनवस्थित इत्यर्थः ॥२४

अथ पीताम्बर समासः ।

अनेकमन्यपदार्थे पीताम्बरः ॥२५॥

पीतं अम्बरं यस्य स पीताम्बरः ।

पीतं सूक्ष्मं चाम्बरं यस्य स पीतसूक्ष्माम्बरः । उज्ज्वलपीतसूक्ष्माम्बरः । प्राप्तः कृष्णं यत्र प्राप्तकृष्णं गोकुलम् । कृष्णं प्राप्तो येन स प्राप्तकृष्णो वैष्णवः । प्राप्तः कृष्णो यया सा प्राप्तकृष्णाभक्तिः । दत्तं सर्वस्वं यस्मै स दत्तसर्वस्वः कृष्णः । प्राप्तो वरो यस्मात् स प्राप्तवरः कृष्णः । न्यस्तं मनो यस्मिन् स न्यस्तमनाः कृष्णः इत्यादि ॥२५॥

अनेक नामपद अन्य पदार्थ वाचक में परस्पर सम्बन्धान्वित होते हैं, इसको पीताम्बर समास कहते हैं । प्राचीन के मतमें बहुव्रीहि समास है । अन्यपदार्थ के समान लिङ्ग होता है । अन्य पदार्थ का उल्लेख यत् शब्द एवं इदं शब्द के द्वारा होता है । इसमें दो, तीन, चार शब्द मिलित होकर समास होता है । उदाहरण—पीतं अम्बरं यस्य सः—पीताम्बरः । पीतं सूक्ष्मं अम्बरं यस्य सः—पीतसूक्ष्माम्बरः । एवं

उज्ज्वलपीतसूक्ष्माम्बरः। प्राप्तः कृष्णो यत्तत् प्राप्तकृष्णं गोकुलम्, कृष्णः प्राप्तो येन स प्राप्तकृष्णो वैष्णवः। प्राप्तः कृष्णो यया सा प्राप्तकृष्णाभक्तिः। दत्तं सर्व्वस्वं यस्मै स दत्तसर्व्वस्वः कृष्णः। प्राप्तो वरो यस्मात् स प्राप्तवरः कृष्णः। न्यस्तं मनो यस्मिन् स न्यस्तमनाः कृष्ण इत्यादयः ॥२५॥

सहशब्दस्तृतीयान्तेनैकक्रियायोगे ॥२६॥

रामेण सह सहरामो वर्त्तते गच्छति वा कृष्णः। अत्र सहस्य स भावो वक्ष्यते। स रामः। एकक्रियायोगाभावे तु सह शिशुना दधि मथ्नाति यशोदा। एकक्रियायोगे सति तृतीयान्तेन सह सहशब्दः समस्यते। स च पीताम्बर संज्ञः। रामेण सहेति विग्रहः। सह रामः वर्त्तते गच्छति वा कृष्णः—इति। अत्र एकक्रियायां कृष्णस्य रामस्य च योगः। सह शब्दस्य स्थाने स भावो वक्ष्यते पीताम्बर समासे। एकक्रियायोगाभावे सति पीताम्बरसमासो न भवति। उदाहरणं—सह शिशुना दधि मथ्नाति यशोदा। विद्यमानार्थोऽत्र सहशब्दः, ततश्च सह शिशुनेति शिशौ विद्यमाने सति यशोदा दधि मथ्नाति इत्यर्थः ॥२६॥

इति पीताम्बरसमासः।

—SSS × SSS—

अथ रामकृष्ण-समासः

इतरेतरयोग-समाहारयो रामकृष्णः।

तयोर्गम्ययोः पदद्वयस्य पदानां वा समासो वाच्य, स च रामकृष्ण संज्ञः। द्वन्द्व इति प्राञ्चः। तत्रेतरेतरयोगे प्रायः परवदेव लिङ्गम्। रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ। एवं बहुद्वन्द्वे

राम-कृष्ण-श्रीदामानः। च शब्दस्य समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोग-समाहररूपार्थाश्चत्वारः। तेषूद्भूतावयवसंख्य इतरेतरयोगः। तिरोहितावयवसंख्य संहतिप्रधानः समाहारः। तयोर्गम्ययोः पदद्वयस्य पदानां वा समासो वाच्यः, स च रामकृष्णसंज्ञः। द्वन्द्व इति प्राञ्चः। तत्रेतरेतरयोगे प्रायः परवदेव लिङ्गम्। तत्र रामश्च कृष्णश्चेति विग्रहे रामकृष्ण इति द्वाविति च शब्दार्थः, रामकृष्णौ। एवं बहुत्वे रामकृष्णश्रीदामानः। समुच्चये तु रामश्च भुङ्क्ते कृष्णश्च वा, रामः कृष्णः प्रत्येकमित्यर्थः। अन्वाचये—तद्वदर्थत्वेऽपि अनिमस्यानाग्रहविषयत्वमिति भेदः। कृष्णमनुगच्छ बलञ्च पश्य इति वत्। रामञ्च कृष्णञ्च पश्य—इत्यादौ सापेक्षत्वात् न समासः। किञ्च, द्वन्द्वात् परः पूर्व्वो वा श्रूयमाणः शब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, रामकृष्ण-सौन्दर्य्यं। अ-इद्वयम् ॥२७॥

समाहारे ब्रह्मत्वमेकत्वञ्च।

यजुर्विहित-ससोमकयागानामक्लीवानाम् ॥२८॥

अर्कश्च अश्वमेधश्च अर्काश्वमेधम्। क्लीवे तु राजसूय वाजपेये इत्यादि।

समाहार होने पर ब्रह्मत्व एवं एकत्व होगा ॥२८॥ ब्रह्मलिङ्ग व्यतीत यजुर्विहित स-सोमक याग का समाहार होना है। स सोमकश्च ते यागाश्चेति ससोमकयागाः, यजुर्विहिताश्च ते ससोमकयागाश्चेति विग्रहः। ससोमका इति सोमपानोपलक्षिता इत्यर्थः। अर्काश्वमेधम्। अर्कश्च अश्वमेधश्चेति यागविशेषस्य अर्कस्य अश्वमेधस्य च यजुर्विहितत्वं ससोमकत्वञ्चास्ति। राजसूय-वाजपेये यजुर्विहितत्वं ससोमकत्वञ्चास्ति, किन्तु क्लीवत्वात् न समाहारः ॥२९

गवाश्वादीनाम् ॥३०॥

गौश्च अश्वश्च गवाश्वम्। कुब्जवामनम्, भागवती-

भागवतमित्यादि। गवाश्वादिका समाहार होगा। गौश्च अश्वश्च गवाश्वं, गवाविकमिति—अविको मेषः। कुब्जश्च वामनश्च कुब्जवामनम्। भागवती च भागवतश्च भागवतीभागवतम्। लक्ष्म्या सहोक्तौ पुरुषोत्तमस्य तन्मात्रं चेद्विशेष इत्यनेन एकशेषो न भवतीति ज्ञेयम् ॥३०॥

वृक्ष-मृग-शकुनि-तृण-धान्यविशेषाणाञ्च वा बहुत्वे ॥३१॥

प्लक्षवटः, प्लक्षवटा वा। हंसचक्रवाकम्, कुशकाशं, व्रीहियवम्। एवं दधिघृतमित्यादि। पक्षे दधिघृता वा इत्यादि।

वृक्ष प्रभृति शब्दों का बहुवचन विषय में समाहार समास विकल्प में होगा। प्लक्षाश्च वटाश्च प्लक्षवटम्, पक्षे प्लक्षवटाः। प्लक्षः पर्कटी। हंसचक्रवाकम्—शकन्युदाहरणम्। शकुनि शब्द पक्षिवाचकः। कुशकाशमिति, तृणोदाहरणम्। व्रीहियवमिति धान्यविशेषोदाहरणम्। व्यञ्जनवाचिनां समाहारो वा भवति। दधिघृतमित्यादि, पक्षे—दधिघृता वा ॥३१॥

उत्तरपदवल्लिङ्गं रामकृष्ण-कृष्णपुरुषयोः ॥३२॥

राधाकृष्णाविमौ कृष्णराधे इमे। कृष्णपुरुषे तु अर्द्धामलकी, कृष्णभार्या मुखचन्द्रः। रामकृष्णे कृष्णपुरुषे च उत्तरपदवल्लिङ्गं भवति। राधाकृष्णाविति। अत्र उभयपदार्थप्रधानत्वेऽपि उत्तरपदवदेव लिङ्गं भवति। एवं कृष्णराधे—इति।

कृष्णपुरुष समास में—अर्द्धा आमलक्याः इति विग्रहे अर्द्धामलकी, कृष्णस्य भार्य्या कृष्णभार्या, मुख चन्द्रः इव इति विग्रहे मुखचन्द्रः। उपमेयं व्याघ्रादिभिरुपमानैरित्यनेन। श्यामरामः ॥३२॥

अशालार्था च ॥३३॥

गोपीनां सभा समूहः—गोपीसभम्।

शाला भिन्न अर्थवाचि शब्दसमूह का समाहार समास होगा। गोपीनां सभा समूहः गोपीसभम्। स्त्रीणां सभा स्त्रीसभम् ॥३३॥

इति रामकृष्ण-समास-निर्णयः।

—:+:—

अथ अव्ययीभावः।

अव्ययं सप्तम्याद्यर्थेषु नित्यम् ॥३४॥

हरिमधिकृत्य प्रवृत्तेति अधिहरि कथा प्रवर्त्तते। अव्ययीभाव-समासस्य अव्ययत्वं ब्रह्मत्वञ्च भवति।

सप्तमी प्रभृति अर्थ प्रतीत होने पर नामपद के सहित नित्य अव्यय का समास होता है। नित्यसमासानां स्वपद विग्रहो नास्ति। हरिमधिकृत्य प्रवृत्तेति विग्रहे हरिमधीति स्थिते—सूत्रे तृतीयान्तेन प्रथमान्तं निपात्यते। नियम से प्रथमान्त पद का पूर्व्व निपात होने से अधिहरि कथा प्रवर्त्तते ॥३४॥

तत्र समीपे, कृष्णस्य समीपमिति विग्रहे—

अरामान्तादव्ययीभावान्न स्वादेर्महाहरः किन्त्वम्, स च पञ्चमी वर्ज्जम् ॥३५॥

उपकृष्णम्। पञ्चम्यान्तु उपकृष्णात्।

अरामान्तादव्ययीभावादुत्तरस्य स्वादेर्महाहरो न भवति। किन्तु तस्य स्थाने अम् भवति। सच अम् पञ्चमी वर्ज्जं भवति, तस्मात् पञ्चम्या स्थाने अम् न भवतीत्यर्थः। अव्ययीभावस्य अव्ययत्वात् अव्ययात् स्वादेर्महाहर इत्यनेन स्वादेर्महाहरः स्यादिति स्वादेर्महाहरो निषिद्धः। कृष्णस्य समीपमिति विग्रहे—उपकृष्णम्। पञ्चम्यान्तु उपकृष्णात् ॥३५॥

तृतीया सप्तम्योस्तु वा ॥३६॥

उपकृष्णेन, उपकृष्णम्, उपकृष्णे, उपकृष्णम्, उपकृष्णे, उपकृष्णम्। समृद्धौ तु—माथुराणां समृद्धिः सुमाथुरम्।

अरामान्त अव्ययीभाव के उत्तर तृतीया सप्तमी के स्थान में विकल्प में अम् होता है। एवं समृद्धयादि अर्थमें भी अव्ययीभाव समास होता है। उपकृष्णेन, उपकृष्णम्, उपकृष्णे, उपकृष्णम्, समृद्धि अर्थमें माथुराणां समृद्धिः—सुमाथुरम्। सप्तम्या नित्यमम्भाव इति बाहुल्यादिति शेषः ॥३६॥

अनतिक्रमे ॥३७॥

उक्तिमनतिक्रम्य यथोक्ति।

अनतिक्रम अर्थमें अव्ययीभाव समास होगा। यथा—शब्दस्य अनतिक्रमे उक्तिमनतिक्रम्य यथोक्ति, शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति, एवमन्येऽपि—ये ये वृद्धा यथावृद्धम्। ये ये तथाभुता यथातथामित्यादयः ॥३७॥

इति अव्ययीभावः।

—SSS × SSS—

अथ समासकार्य्यविशेषाः

तत्र पूर्व्वनिपातः—

राजादीनां दन्तादिभ्यः ॥३८॥

दन्तानां राजा राजदन्तः। राजविद्या, राजगुह्यम्, अधोभुवम्, ऋणे अधमः अधमर्णः, इत्यादि। व्यभिचरति च नरनारायणौ। इति पूर्व्वनिपाताः।

पूर्व्वनिपात होगा। षष्ठयन्त का पूर्व्वनिपात होगा। दन्तानां राजा, राजदन्तः, विद्यानां राजा—राजविद्या, गुह्यानां राजा, राजगुह्यम्। भुवनस्य अधः, अधो भुवनम्। ऋणे अधमः— अधमर्णः, नरनारायणौ, अत्र पूजितत्वात नारायणस्यैव पूर्व्वनिपातः स्यात्, अतः उक्तं—व्यभिचरति च ॥३८॥

एकस्य शेषो रामकृष्णे ॥३९॥

तुल्यशब्दानां भिन्नार्थानामपि एकस्य शेषः स्यात् ॥४०॥

गोपी च गोपी च गोप्यौ, विशेषतस्तु गोपाश्च गोप्यश्च गोपाः। कृष्णश्च अर्ज्जुनश्च तौ कृष्णौ। एवं गोपश्च गोपश्च गोपश्च गोपाः। स च वैष्णवश्च तौ। यश्च कश्च कौ। स च त्वञ्च युवाम्। स च त्वञ्च अहञ्च वयम्। इत्येकशेषः। इति समासकार्य्याणि।

रामकृष्ण समास में एकशेष समास होगा। एकार्थ एवं भिन्नार्थ तुल्यार्थ शब्दसमूह का एकशेष समास होगा। गोपी च गोप्यो च गोप्यौ। गोप्यौ अवशिष्ट शब्द से गोपीद्वय का बोध होता है। एवं गोपश्च गोपश्च गोपौ, सर्वत्रावशिष्ट एव लुप्तस्य शक्त्यारोपो दृश्यते। कृष्णश्च अर्ज्जुनश्च तौ कृष्णौ। एवं गोपश्च गोपश्च गोपश्च गोपाः। स च वैष्णवश्च तौ। यश्च कश्च कौ। स च त्वञ्च युवाम्। स च त्वञ्च अहञ्च वयम्। अन्यैः सहोक्तौ तदादेस्तदादिभिस्तु परपरस्य ॥३९-४०॥

इति समासकार्य्याणि।

अथ द्विरुक्ति-प्रकरणम्

सर्व्वस्य द्विरुक्तिः ॥४१॥

आभीक्ष्ण्य-वीप्सयोः ॥४२॥

द्विरुक्ति प्रकरण आरम्भ करते हैं। यथायोग्य सब की द्विरुक्ति होती है। सर्व्व पद से धातु धातु विष्णुपद को नाम विष्णुपद को द्विरुक्ति विषय में जानना होगा ॥४१॥

आभीक्ष्णस्य निरन्तरस्य भाव आभीक्ष्ण्यम्। व्याप्तुमिच्छा वीप्सा। आभीक्ष्ण्य-वीप्सयोरर्थयोः सर्व्वस्य द्विरुक्तिर्भवति। अत्र आभीक्ष्ण्ये प्रथमं दर्शयति। भजति भजति—पुनः पुनः, भजतीति। नैरन्तर्य्यं यथा—पुनः पुनः नत्वा स्तौतीति नत्वा नत्वा स्तौतीति, नामं नामं स्तौतीति वा। वीप्सायामिति गृहं गृहं प्रवेशमास्ते हरिरिति। गृहे गृहे वैष्णवाः। वैष्णवो वै रमणीयः। इत्यत्र पूर्व्ववत् सर्व्वे वैष्णवा रमणीय-गुणेन युगपद्व्याप्तयाभिता इति द्विरुक्तिः ॥४२॥

उपर्य्यध्यधसां सामीप्ये ॥४३॥

उपर्य्युपरि, अध्यधि, अधोऽधो गोवर्द्धनम्। यर्हि सामीप्ये न स्यात्, तर्हि किम्? सर्व्वस्योपरि कृष्णः ॥४३॥

सामीप्ये विवक्षितेऽर्थे वर्त्तमानानामुपर्य्यध्यधसां द्विरुक्तिर्भवति। सामीप्यं प्रत्यासन्नं तच्च देशकृतं कालकृतं वा गृह्यते। उपर्य्युपर्य्यादित्रयाणां गोवर्द्धनेनान्वयः। उपरि उपरि, अधि अधि, अधो अधो। सामीप्ये किं किमर्थं यर्हि न स्यात्। सर्व्वस्योपरि कृष्ण इति सर्व्वस्य मूर्द्धनि कृष्णो वर्त्तते इत्यर्थः ॥४३॥

आधिक्ये तु ॥४४॥

अहो भाग्यं भाग्यम्। "अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप

व्रजौकसाम् ।" (श्रीमद्भागवतम् १०।१४।३२)

आधिक्यं—अतिशयितं, तस्मिन्नर्थे वर्त्तमानस्य तु पदस्य द्विरुक्तिर्भवति। अहो आश्चर्य्यं भाग्यभाग्यमिति—भाग्यस्यातिशयित्व मित्यर्थः। अहो भाग्यमित्यस्य यन्मित्र परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनमिति। अत्र द्विर्वचने भाग्यस्याधिक्यं प्रतीयते इत्यन्वयः ॥४४

चापले यावद्बोधम् ॥४५॥

कृष्णः, कृष्णः, कृष्णः, पश्य पश्य पश्य। यावद्बोधमिति—बोधमनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावसिद्धम्। चापलं चाञ्चल्यं, तस्मिन् गम्ये, यावद्बोधं जायते, तावत् चापलबोधकस्य पदस्य द्विर्भवति। कृष्ण इत्यादित्रयस्य पश्येत्यादित्रयेन यथासंख्यमन्वयः ॥४५॥

इति संक्षेप-श्रीहरिनामामृताख्ये वैष्णव-व्याकरणे

समासादिप्रकरणं षष्ठं समाप्तम् ॥६॥

…०:※:०…

[सप्तमम्]

अथ तद्धित-प्रकरणम्

अर्द्धर्च्चादिप्रयोगाश्च यन्निमित्तमिहोदिताः ।
इयं मे तद्धित-व्याख्या तद्धितत्वाय कल्पताम् ॥१॥

अर्द्धर्च्चेति—ऋचः अर्द्धमर्द्धमर्द्धर्च्चः, स च आदिर्येषां तेऽर्द्धर्च्चादयः, ते च प्रयोगाश्चेति अर्द्धर्च्चादिप्रयोगा इति प्रथमोऽर्द्धर्च्चेत्यत्र वेदाक्षरस्य ऋचः प्रदर्शनादस्मिन् ग्रन्थे वेदाक्षरस्यैव प्राधान्यम् । अतएव तदादिप्रयोगानुशीलकानां वेदार्थानुशीलनफलवत्त्वात् हरिनामभिर्वैष्णवानां कालक्षेपनमुचितमित्यस्य न व्यभिचारः, संज्ञा शब्दानां यथाकथञ्चिदित्युक्तदिशा तस्मै हितस्तद्धित इति सञ्ज्ञाशब्दस्य व्याख्या ।

इह सप्तमे पादे यन्निमित्तं लक्षणया यस्य सन्तोषार्थं मे मया अर्द्धर्च्चादय एव प्रयोगा उदिताः कथितुमारब्धाः, इयं मे मम च सम्बन्धिनी मत्कर्त्तृका वा तद्धितव्याख्या तद्धितैरुपलक्षिता व्याख्या तद्धितत्वाय कल्पतां, तद्धारितत्वेन परिणमतामित्यन्वयः । उदिता इत्यारम्भे क्तः । आरम्भार्थे क्तस्य वर्त्तमान् प्रयोगित्वाद्वर्त्तमाने भावे च क्तस्य योगे कर्त्तरि षष्ठी वेत्यनेन मे इत्यस्मिन् कर्त्तरि षष्ठी । पक्षे सम्बन्ध षष्ठी च । प्रयोगाश्चेत्यत्र चार्थस्य प्रयोजनाभावत्वात् पुनरर्थत्वेन मे इति सम्बन्धषष्ठ्यन्तेन सम्बन्धः । केवलं तद्धितानां व्याख्या तद्धितत्वेन कल्पते, अपितु तद्धितास्तद्व्याच, अतएव तद्धितोपलक्षिता तद्धितसहितेत्यर्थः । ममोक्त तद्धितव्याख्या सर्व्वेषां निरपेक्ष-हितकारिणस्तस्य हितत्वेन परिणाम-कल्पना नोचितेति तद्धारितत्वेन तस्मिन् समर्पितत्वेनेत्यर्थः । तद्धितत्वायेत्यत्र

च डुधाञ् धारणपोषणयोरित्यस्माद् भावे क्तः। दधातेर्हिरित्यनेन हिः। तस्मादनेन भगवत्यर्पितत्वेन ग्रन्थकृता परममङ्गलमाचरितम्। एवं सर्व्वोऽयं ग्रन्थो मङ्गलरूपः—इति च विज्ञापितमिति। एवं मत्कृतमङ्गलाचरणस्यापि।

व्याकरणपक्षे तु—इह तद्धितपादे यन्निमित्तं येभ्यश्छात्रेभ्यो निमित्तं अर्द्धर्चादि तद्धितप्रयोगा मयोदिताः कथयितुं प्रस्तुताः मम इय तद्धितव्याख्या च तद्धितत्वाय तेषां छात्राणां नानार्थबोधक-द्वारा परमपारितोषिकत्वेन कल्पतां समर्था भवतु, पोषणरूप-धात्वर्थस्य पारितोषफलत्वात।

इस अन्तिम सप्तम पादमें जिनके सन्तोषार्थ मैंने अर्द्धर्चादि प्रयोग को कहना प्रारम्भ किया, यह तद्धित व्याख्या उनकी प्रसन्नता के हेतु हो।

व्याकरण पक्षमें—जिन छात्रों के निमित्त यह अर्द्धर्चादि प्रयोग प्रकरण मैंने आरम्भ किया, यह प्रकरण उन सबके बोध हेतु हो (१)

आदिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे ॥१॥

गार्ग्यः। इण्—दाक्षिः। औपगवः। ईयश्च—प्रालेयं, कैकेयः। देविकादिः, आरामरूप एव वृष्णीन्द्रः, अण् दाविकम्, शांशपम्, दार्घसत्रम्, श्रायसम्।

गर्ग—यण् अ-इद्वयस्य हरः। गार्ग्यः। दक्ष इण् दाक्षिः। उपगु अण् उद्वयस्य गोविन्दः, औपगवः। प्रालेयादीनां यादेरीयश्च। अण्—प्रालेयम्, कैकेयः। देविका-शिंशपा-दीर्घसत्र-श्रेयसारामः। एषामारामः। एषामारामरूप एव वृष्णीन्द्रः। अण् दाविकं, शांशपं, दार्घसत्रं, श्रायसम् ॥१॥

वृष्णीन्द्रस्थान-चतुःसनादेश-विष्णुपदान्तयोर्द्वारादिस्थयोश्च वृष्णीन्द्रं निषिध्य य-वरामयोरै-यौ-वौ, न तु स्वागतादेः।

अणि—व्याकरणमधीते वेद वेति व्याकरणस्येति इत्यत्र यरामस्यैयादेशे—वैयाकरणः। इणि—स्वश्वस्यापत्यं पुमानिति सौवश्विः। वृष्णीन्द्रे कृते—सौवाश्विः।

वृष्णीन्द्रस्य स्थानं वृष्णीन्द्रस्थानञ्च तच्चतुःसनश्चेति वृष्णीन्द्रस्थानचतुःसनः। आदेशश्च आदेशश्च आदेशौ विष्णुपदान्तश्च विष्णुपदान्तश्च विष्णुपदान्तौ आदेशौ च तौ विष्णुपदान्तौ चेति आदेशविष्णुपदान्तौ, वृष्णीन्द्रस्थान-चतुःसनस्य आदेशविष्णुपदान्तौ वृष्णीन्द्रस्थानचतुःसनादेशविष्णुपदान्तौ तयोर्यरामयोः। द्वार आदिर्यस्य स द्वारादिस्तस्मिन् स्थीयेते इति द्वारादिस्थौ तयोश्च यवरामयोः। स्वागत आदिर्यस्य स स्वागतादेर्यवरामयोस्तु नेति द्रष्टव्यम्। सूत्रे वृष्णीद्रस्थानेत्युक्तत्वात् वृष्णीन्द्रहेतौ प्रत्यये इत्यर्थाद् गम्यते। अत्र नृसिंह परे इति ज्ञेयम्। अणिति रूपं दर्श्यते—व्याकरणमधीते वेद वेति व्याकरणस्य वा इत्यत्र यरामस्यैयादेशे वैयाकरणमिति।

स्वश्वस्यापत्यं पुमानिति सौवाश्विः। यदा वृष्णीन्द्रः स्यात्तदा सौवाश्विरिति स्यात् ॥२॥

न्यग्रोधश्च, श्वापदो वा ॥३॥

नैयग्रोधम्। नेह न्याग्रोधमूला वैष्णवाः। शौवापदम्। स्वागतिकम्, व्यवहारिकः। इणि—व्याड़स्यापत्यं पुमानिति व्याड़िः। अत्र द्वारादौ केवलो न्यग्रधो वटस्तस्य विकारोऽवयवो वा फलमित्यर्थे नैयग्रोधम्। अत्र न्यग्रोदस्य विकारोऽवयवो वा फलमिति महाहर-विषये लक्षादित्वात् केशव-णः। न्यग्रोधो बहुपाद् वट

इत्यमरः। नेहेति सूत्रे केवलशब्दोपादानादिति शेषः। न्यग्रोधस्य मूलं न्यग्रोधमूलं तत्र स्थिता अमी इत्यर्थे न्यग्रोधमूला इति केशवान्तम्। श्वापदो वा। श्वापदो द्वारादिर्वा भवति। श्वापदस्येति श्वापदादिद्वयम्। श्वापदं, शौवापदम्। स्वागतास्देस्तु। शोभनमागतं स्वागतं तदर्हतीति स्वागतिकः। तथा व्यवहारिकः। अत्र तदर्हतीत्यर्थे माधव-ठः। व्याड़स्यापत्यं पुमानिति व्याड़िः। अराम वाहृवेत्यनेनात्र इ नृंसिंहः। व्याड़िः पण्डितविशेषः ॥३॥

उत्तरपदस्य ॥४॥

गुरुलाघवं, पितृपैतामहम्। वातपित्तयोः, शमनं कोपनं वेति वातपैत्तिकम्। पूर्व्व वर्षासु भवः पूर्व्ववार्षिकः। सर्व्वं शौरसेनकः, द्विसाम्वत्सरिकः, द्विवार्षिकः। द्विनैष्किकम्।

आदिसर्व्वेश्वरस्येति—अनुवर्त्तन एव। गुरुलघ्वादेः। उत्तर पद का वृष्णीन्द्र होता है। नृसिंह परे रहने से गुरु लघु शब्द के उत्तर पद के आदि सर्व्वेश्वर का वृष्णीन्द्र होता है। गुरुलघ्वोरिदं गुरुलाघवम्। पितृ-पितामहयोरिदं—पितृपैतामहम्, तस्येदमित्यनेन केशव-णः। वातपित्तयोः शमनं कोपनं वेत्यर्थे वातपैत्तिकम्। एवं वातश्लैष्मिकम्। अवयवादृतोः। पूर्व्ववर्षासु भवः पूर्व्ववार्षिकः, वर्षाणां पूर्व्वभागे जात इत्यर्थः। सुसर्व्वार्द्धेभ्यो देशनाम्नः। सुशौरसेनकः, सुशूरसेनेषु जातादिरित्यर्थे सुशौरसेनकः। एवं सर्व्वशूरसेनेषु जातः सर्व्वशौरसेनकः, अर्द्धशौरसेनकः। संख्यातः संवत्सर-संख्ययोः।

सख्या वाचक शब्द के उत्तर संवत्सर संख्या वाचक शब्द के आदि सर्व्वेश्वर का वृष्णीन्द्र होता है। द्विसांवत्सरिकः, द्वाभ्यां संवत्सराभ्यां निवृत्तः, द्विवार्षिकः। द्वौ वर्षावधीष्टः। संख्यायाः परिमाणस्याणस्य, द्विनैष्किकम्। द्वौ निष्कौ परिमाणमस्येति द्विनैष्किकम् ॥४॥

उभयोः पदयोः ॥५॥

सौहार्द्दं, सौभाग्यम्, आनुशातिकम् । उभयपदवृद्धिः— पौण्ड्रनागरः, कौरजाङ्गलः, आर्द्धद्रौणिकम् ।

नृसिंह परे रहने से उभयपद का वृष्णीन्द्र होता है। हृद्भगसिन्ध्वन्तानां, हृद् भगसिन्धवः अन्ते येषां ते हृद्भगसिन्ध्वन्ता स्तेषां हृद्भगसिन्ध्वन्तानामुभयपदयोरादिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रः स्यान्नृसिंहो द्वन्द्वात् परः पूर्व्वो वेत्युक्तादन्तशब्देन सह सर्व्वेषामन्वयः। सुहृदः इदं–सौहार्द्दम् । सुहृन्मित्रे इत्यनेन शोभनं हृदयमस्येति पीताम्बरे निपातात् सुहृच्छब्दात् तस्येदमित्यनेन केशव-णः। तथा सुहृदयशब्दादपि सुहृदयस्य भाव इत्यर्थे केशव-णे कृते हृदयस्य हृल्लेखलाशयोर्याणोश्चेत्यनेन हृदादेशे च कृते सौहार्द्दमिति च। हृदय-समानार्थो यो हृच्छब्दस्तदन्तस्याप्येवं भवति । हृदिति सामान्यग्रहणात्। सुभगस्य भाव इत्यर्थे सौभाग्यमित्यत्र ब्राह्मणादे-राकृतिगणत्वात् नृसिंह-यः । अनुशतमादिर्येषां ते अनुशतादयः, तेषामनुशतादीनां नृसिंहे पदे पूर्व्वपदस्योत्तरपदस्य चादिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रो भवति । आनुशातिकमिति शतेन क्रीत इत्यर्थे शताद् ठराम-वशतात्मके इत्यनेन शतात् ठरामः, शतिकः, पश्चात् अनुगतः शतिको येन सोऽनुशतिकः तस्मात् तस्येदमित्यनेन केशव-णः। उभयपदवृद्धि। पौण्ड्रनागरः, कौरुजाङ्गलः, आर्द्धद्रौणिकम् ॥५॥

अशुच्यादीनां पीताम्बर-सिद्धानामपि वा ॥६॥

आशौचम् अशौचं वा । आनैश्वर्य्यम्, अनैश्वर्य्यं वा, आयाथातथ्यम्, अयथातथ्यं वा ॥६॥

इति वृष्णीन्द्रो निवृत्तः।

नञ् शुचीश्वर-क्षेत्रज्ञ-कुशल-निपुणादीनां पूर्व्वस्य तु वा। उत्तरपदस्य वृद्धिरेव। आशौचं अशौचं। आकौशलं अकौशलम् ।

आनैपुणम् अनैपुणम् । अनीश्वराक्षेत्रज्ञौ तत्पुरुषावेव ब्राह्मणादित्वाद् भाव य-णन्तौ । आनैश्वर्य्यम अनैश्वर्य्यम् । नञ् उत्तरेषां शुच्यादि पञ्चानामादिसर्व्वेश्वरस्य वृष्णीन्द्रो नृसिंहे पूर्व्वस्य तु नञो वा स्यात् । अशौचमिति—अशुचेरिदमित्यर्थे तस्येमित्यनेन केशव-णः । एवम-कुशलस्येदम्, अनिपुणस्येदमिति । न ईश्वरः अनीश्वरस्तस्य भाव इत्यर्थे आनैश्वर्य्यादिद्वयमिति । तथा अक्षेत्रज्ञस्य भावः आक्षैत्रज्ञम् । अनयोरेवकारेण तत्पुरुषेऽववारणात् अशुच्यादीनां पीताम्बर-सिद्धानामपि आशौचमित्यादिकं स्यात् । न विद्यते शुचिर्यस्य सोऽशुचिस्तस्येदमित्यादि तु पूर्व्ववत् । भावे तु त्व त्वापौ ब्रह्म-लक्ष्म्यामित्यनेन अशुचित्वमशुचिता इत्यादि स्यात् । नञो यथातथ-यथापुरयोः पर्य्यायेण ।

नृसिंहे परे नञः परयोर्यथातथ-यथापुरयोरादिसर्व्वेश्वरस्य नञश्च पर्य्यायेण क्रमेण वृष्णीन्द्रो भवति । अयथातथा भावः अयथातथ्यम् । भावविहितनृसिंह ये कृते आयाथातथ्यम्, आयाथा-पुर्य्यमिति सिध्यत्येव ॥६॥

इति वृष्णीन्द्र-प्रकरणं समाप्तम् ।

कृष्णादाप् ॥७॥

रमयतीति रमा, परमा । लक्ष्मीलिङ्गविषये नाम्न उत्तरे यथास्वं वक्ष्यमाणा आवीवाबूङ् च भवति । यद्यदीयं प्रकरणं प्राचीनैरत्र न पठ्यते, तथाप्युपयुक्तत्वात् अस्माभिः पठनीयम् । लक्ष्म्यां कृष्णात् कृष्णसंज्ञकात् आप् भवति । नाम्न इत्यस्याधिकार-त्वेन विधायकत्वाभावाद् विधिरम् । अरामान्त-कृष्णसंज्ञ इत्युक्तम् । पाणिनीयानां मतेराप् भवति । रमा शब्दस्य साध्यार्थं वाक्यं स्वयं दर्शयति—रमयतीति रमा, ततः आप्, अ-द्वयस्येत्यरामहरः । रमा लक्ष्मी, राधाविष्णुजनाभ्यामीपश्च त्रिविक्रमात् सोऽहरः । एव

राधसाध-संसिद्धौ राध्नोतीति पचाद्यात् पश्चादाप् राधा, कृष्ण-प्रेयसीनां मुख्या । परं परमेश्वरं मातीति मा माने इत्यस्मात् कर्म्मण्यनुपेन्द्रादारामात् क इति कः, आरामहरः कंसारीत्यनेनाराम-हरः। पश्चादाप् परमा लक्ष्मी शोभा वा ॥७॥

ऋरामाच्चतुर्भुजानुबन्धादीप् ॥८॥

कर्त्री । मनं मातृपचादींश्च वर्जयित्वा ऋरामान्तात् चतुर्भुजानुबन्धात् न-रामान्तात् अञ्चते वाहश्चोत्तरः लक्ष्म्यामीप् भवति । करोति येति कृ-धातोः शतृ तत ईप् कर्त्रीति ॥८॥

इ-रामान्तादक्त्यर्थाद्वा ईप् ॥९॥

रात्रिः, रात्री । क्तेरर्थ इव अर्थो यस्य स क्त्यर्थः, न विद्यते क्त्यर्थो यत्र सोऽक्त्यर्थस्तस्मात् । लक्ष्म्यमेवाक्त्यर्थात् इरामात् इरामान्तादीप् वा स्यात् । अर्थान्तराभावात् स्वार्थ एव प्रत्ययस्तेन रात्रिरेव रात्री रात्रिरिति । रात्रेस्त्रिरिति राधातोरौणादिकस्त्रि-प्रत्ययो रात्रिरित्यस्यैव रात्रीति द्वयमित्यन्ये ॥९॥

व्यासादेरकिण् सच चित् ॥१०॥

वैयासकिः। व्यासस्यापत्यं वैयासकिः । तस्यापत्यमित्यर्थे व्यासादेरुत्तरोऽकिण् स्यात्, स चाकिण् चिच्च स्यात् । व्यासस्यापत्यं पुमान् चित् करणात् संसारस्य हरश्चितीति संसारहरः, वैयासकिरिति ॥१०॥

तस्य समूहे ब्रह्मण्यण् ॥११॥

दैवम् । तस्य समूहो ब्रह्मणि—अत्रार्थे क्लीवे यथाविहितं स्यात् । देवानां समूहो दैवम् ॥११॥

तददूरभवे च ॥१२॥

यामुनः । तददूरभवश्च । तस्यादूरभवश्चेत्यर्थे एस्मिन्

तन्मर्द

...थास्वं प्रत्ययः स्यात्। एष्वर्थेषु सर्व्वत्र सामान्यतः केशव-...संख्य...त्। यमुनाया अदूरभवो यामुनः ॥१२॥

तदपत्ये ॥१३॥

वार्षभानवी। अत्रार्थे यथास्वं प्रत्ययाः स्युः। वृषभानोः अपत्यं स्त्री वार्षभानवी ॥१३॥

आदिवृष्णीन्द्राच्छरामः, नामधेयाद्वा ॥१४॥

वैष्णवीयः तदीय... आदिवृष्णीन्द्रात् छ-रामो भवेति, छ ईय। एवं नामधेयात् उत्तरे विकल्पेन छ-रामो भवति। उदाहरणम्—वैष्णवीयः, तदीयः ॥१४॥

परजनदेवराजस्य कीयः ॥१५॥

पर-जन-देव-राजशब्दादुत्तरे कीय-प्रत्ययो भवति। परकीयः जनकीयः, देवकीयः, राजकीयः ॥१५॥

तस्य भावस्त्वतापौ ब्रह्मलक्ष्म्योः ॥१६॥

परत्वं, परता। शब्दप्रवृत्तिनिमित्तं जात्यादिवस्तुधर्मः। तस्य भाव इत्यर्थे त्वतापौ स्याताम्। जातौ गोत्वं, गोता, गुणे—शुक्लत्वं, शुक्लता, रूपत्वं रूपता, रसत्वं रसता, क्रियायाम्—क्रियात्वं, क्रियाता। समास-कृत्तद्धितेषु सम्बन्ध एव प्रवृत्तिनिमित्तम्। कृष्णपुरुषत्वं, कृष्णपुरुषता, पूजकत्वं पूजकता, अनुग्राह्यत्वं अनुग्राह्यता, यादवत्वं यादवता, भागवतत्वं, भागवता। तस्य भाव इत्यर्थे नामस्त्वतापौ भवन्तौ यथासंख्यं ब्रह्मलक्ष्म्योर्वर्त्तेते। परत्वं परता ॥१६॥

वर्णाद् दृढादेश्च नृसिंह-य इमनिश्च ॥१७॥

माधुर्य्यं, मधुरिमा, सौन्दर्य्यं, लावण्यम्। वर्णाद्—शौक्लं शुक्लिमा, कार्ष्ण्यं, कृष्णिमा, दृढादेः—दार्ढ्यं द्रढिमा, वैमल्य

विमलिमा, त्वतापौ सर्व्वत्रोदाहार्य्यौ। इह गुणवच्च राधा, कृष्ण ये सिद्धे वर्णग्रहणमिमन्यर्थम्। वधिर-कृश-शीत-उष्णेते हृतादीनां दृढ़ादौ पाठः। पक्षे, इमनिर्यथा स्यात् कर्म्मणि च नृसिंह-यो माभूत् ॥१७॥

तदस्य सञ्जाते तारकादेरितः ॥१८॥

पुष्पितम्, बाधितः। तारका सञ्जातास्य तारकितं नमः, पुष्पितो वृक्षः। तारका, पुष्प, सुख, दुःख फल, मूल, कुसुम, स्तवक, तन्द्रा, बुभुक्षा, पिपासा, भर, वेत, रोग, व्याधि, उत्कण्ठा, गर्भोऽप्राणिनीति। तदस्य सञ्जातमित्यर्थे तच्छब्दनिर्दिष्टात्नाम्नो यथास्वं प्रत्ययः स्यात् ॥१८॥

मात्रट् प्रमाणमात्रे ॥१९॥

तन्मात्रम्, यन्मात्रम्। तदस्येत्यर्थे प्रमाणमात्रे वाच्ये तु नाम्नो मात्रट् स्यात्। तदेव प्रमाणमस्य तन्मात्रम्, तावदेव प्रमाणमस्य तावन्मात्रम् ॥१९॥

प्रशंसायां रूपः ॥२०॥

वैष्णवरूपः, तद्रूपम्। प्रशंसा–स्तुतिः। प्रकृतिविशेषणञ्चैतत्। तेन प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्तमानान्नाम्नो रूपः स्यात्। अगृहीतार्थविशेषाः प्रत्ययाः प्रकृत्यर्थं विशेषयन्तीत्यतः प्रकृत्यर्थस्यैव ये लिङ्गवचने ते विशेषणस्यापि भवति इतिः। प्रशस्तः वैष्णवः, वैष्णवरूप इति। एवं प्रशस्तः पण्डितः, पण्डितरूपः इत्यादि ॥२०॥

अत्यर्थे तरतमौ ॥२१॥

वैष्णवतरः, वैष्णवतमः, पूर्णतरः, पूर्णतमः। अतिशयार्थे नाम्न. तर-तमौ प्रत्ययौ भवतः। वैष्णवयोर्मध्ये अयं अतिशयवैष्णवः वैष्णवतरः, वैष्णवेषु मध्ये अयं अतिशयवैष्णवः–वैष्णवतम। एवं पूर्णतरः, पूर्णतमः ॥२१॥

रूपविकारयोर्मयट् ॥२२॥

तन्मयी, तन्मयम्। स्वरूपविकारार्थयोर्गम्यमानयो-
तन्मयः, तन्मयी, तन्मयम्—पुरुषोत्तमलक्ष्मीब्रह्म-
ख्यमन्वयः ॥२२

संज्ञायां कः ॥२३॥

वेणुकः, वंशकः। संज्ञायां वर्त्तमानान्नाम्नः कः स्यात्—वेणुनामा कश्चित् वेणुकः, एवं वंशकः ॥२३॥

तदस्यास्त्य[illegible] वा मतुः ॥२४॥

मतोर्मो वः—कृष्णवान्, भगवान्। तदस्यास्ति तस्मिन् वा अस्तीत्यर्थे नाम्नो मतुः स्यात्। अर्थद्वयस्य क्रमेणोदाहरणम्—गावोऽस्य सन्ति गोमान्–व्रजनाथः। कृष्णोऽस्त्यस्मिन्, मतोर्मो वः, कृष्णवान्। अद्वयमाभ्यां तदुद्भवाभ्यां विष्णुदासाच्च [illegible]र्मो वः। कृष्णवानित्यस्य गोवर्द्धनः, इति वाच्य पदं द्रष्टव्यम्।

भूमा-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्ति विवक्षायां मतुमुख्या भवन्ति ते॥

भूमा–प्रचुरः, अतिशायनः–अतिशयः। मतुर्मुख्य आदिर्येषां ते मतुमुख्याः। भूमादिष्वर्थेषु गम्यमानेषु तदस्यास्त्यस्मिन् वेत्यर्थे [illegible] प्रसिद्धा वक्ष्यमाणा मतुप्रभृतयो भवन्तीत्यर्थः। गोमान् इत्यत्र गावोऽस्य सन्त्यस्मिन् वेति गोशब्दस्य बहुवचनान्त-भूमत्वं गम्यते। दैत्यवान् कंसः, इत्यत्र दैत्योऽस्यास्त्यस्मिन् [illegible]त्यशब्दस्य निन्द्यत्वेन निन्दा गम्यते। यथार्थतः प्रशंसादि [illegible]सङ्गच्छते, इति तत्रैव प्रशंसादि गमयन्नुदाहणान्याह—[illegible]दाविति। रूपवानित्यत्र रूपमस्यास्त्यस्मिन् वेति निरपेक्ष-प्रशंसात्वेन प्रशंसागम्यते, भगवानिति। ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य [illegible] यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चेति षण्णां भगमितीङ्गना॥

इत्यनेन भगशब्दः षड़ैश्वर्य्यवाची सोऽस्यास्त्यस्मिन् ... शब्दस्यात्रैव नित्ययोगो गम्यतेऽन्यत्र तु कल्पितः ... राधा, कृष्णः। शार्ङ्गीति—शृङ्गेण निर्म्मितं शार्ङ्गं धनुस्त ... वेति शार्ङ्गस्यातिशायनत्वमत्रैव गम्यतेऽन्यत्र तु का ... नृसिंह-यो दण्डीति दण्डमत्र लगुड़स्तदस्यास्त्यस्मिन् वेति दण्डस्यात्र गम्यते। अस्तीति अस्ति विवक्षायान्त्वनियमत्वात् यस ... यास्मिन् वा क्रियास्ति स क्रियावानिति। शार्ङ्गी दण्डीत्यत्र अरामादिनि ठरामावित्यनेन इनिः स्यादित्याह— ... यते ॥२४॥

इति संक्षेप श्रीहरिनामामृते व्याकरणे
तद्धित-प्रकरणं सप्तमं समाप्तम् ॥७

माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां गुरुवासरे।
माधवस्य प्रसादेन ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥
रुद्रे ग्रहे विधौ शाके वृन्दारण्ये शुभास्पदे।
सज्जनानां हितार्थाय हरिदासेन मुद्रितः॥

इति श्रीहरिदासशास्त्रि-कृत सरलार्थसमन्वितं संक्षेप
श्रीहरिनामामृत-व्याकरणं समाप्तम्।

—SSS × SSS—

स्यरणम्

ाप् राधा,

ाने ादीनां

नृसिंह-यो

यास्मन्

ख, दु

मामृतेम्